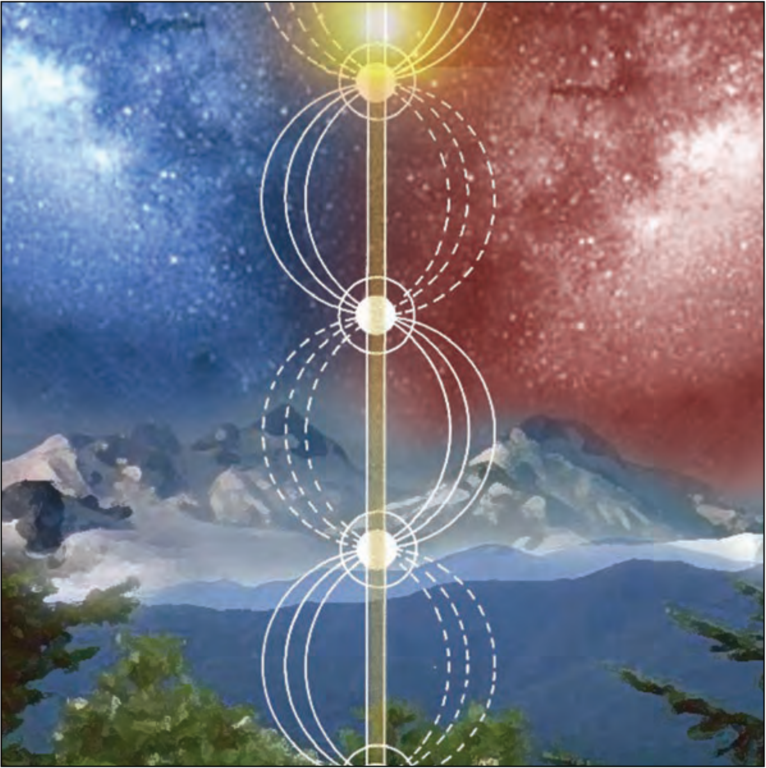
स्वर्ण जयन्ती प्रकाशन 2013

BIHAR YOGA

प्राण एवं प्राणायाम

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

प्राण एवं प्राणायाम



WORLD YOGA CONVENTION 2013
GANGA DARSHAN, MUNGER, BIHAR, INDIA
23rd–27th October 2013

प्राण एवं प्राणायाम

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती



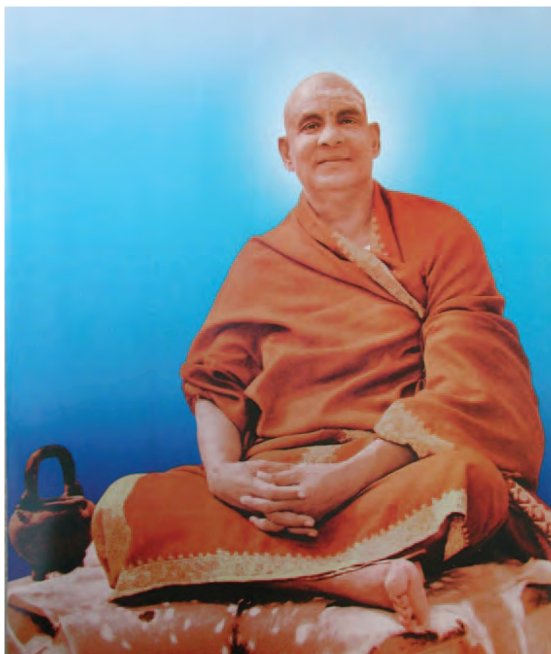
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा प्रथम प्रकाशन 2012

ISBN: 978-93-81620-34-2

प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,
मुंगेर, बिहार, भारत
मुद्रक—थॉमसन प्रेस (इंडिया) लिमिटेड,
नई दिल्ली

वेबसाइट : www.biharyoga.net
www.rikhiapeeth.net



सविनय समर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी



नमो नारायण

योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन-पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दुःखी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
रिखियापीठ, 2005

विषय सूची

प्राणायाम के अभ्यास
II: शास्त्रीय प्राणायाम

परिशिष्ट

प्रस्तावना

प्राणायाम के प्राचीन योगाभ्यासों की जानकारी भारत में 4000 वर्षों से भी पहले से रही है। महाभारत काल के एक अद्वितीय ग्रन्थ, भगवद्गीता में प्राणायाम का उल्लेख (4:29) यह सूचित करता है कि उस काल में प्राणायाम के अभ्यास उतने ही प्रचलित थे जितने कि यज्ञ। बुद्ध-पूर्व के काल में लिखे गये अनेक उपनिषदों में भी प्राणायाम की विधियों का उल्लेख किया गया है। तथापि छठी से पंद्रहवीं शताब्दी के बीच लिखे गये हठ योग के ग्रन्थों, जैसे, हठयोग प्रदीपिका, घेरण्ड संहिता एवं हठरत्नावली में इन अभ्यासों का विस्तृत विवरण मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय मौखिक परम्परा के माध्यम से हस्तान्तरित किये जा रहे उन अभ्यासों को पुनरुज्जीवित और सुव्यवस्थित करने की आवश्यकता अनुभव हुई। बौद्ध धर्म के उदय के साथ ही वैदिक संस्कृति का ह्रास होने लगा और अनेक यौगिक अभ्यास या तो विलुप्त हो गये या अभ्यासियों द्वारा उनका दुष्प्रयोग होने लगा। अत: उन ग्रन्थों के ग्रन्थकारों ने अभ्यासों की शुद्धता और प्रामाणिकता को पुन: स्थापित करने का प्रयास किया।

इक्कीसवीं शताब्दी में इन अभ्यासों के उद्देश्य और ज्ञान को पुन: स्थापित करने की आवश्यकता को फिर से अनुभव किया जा रहा है। पिछले कुछ दशकों में हुए योग के पुनर्जागरण ने आसन और प्राणायाम को घरेलू शब्दावली का हिस्सा बना दिया है। किन्तु अधिकतर साधक न तो अभ्यासों के सार को समझ पाये हैं और न ही उनकी गहराई तक जा पाये हैं।

सिद्ध ऋषियों के ज्ञान को वर्तमान युग हेतु उपयुक्त भाषा एवं पद्धति में योग साधकों के बीच लाना सत्यानन्द योग का उद्देश्य तो रहा ही है, इस क्षेत्र में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान भी रहा है। यह हमारे गुरुओं, स्वामी शिवानन्द एवं स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का उपहार और आशीर्वाद भी है।

प्राणायाम विज्ञान शास्त्रों में जिस प्रकार वर्णित है तथा जैसा कि बिहार योग विद्यालय द्वारा सत्यानन्द योग परम्परा के अन्तर्गत सिखाया जाता है, यह पुस्तक ठीक उसी प्रकार का पूर्ण वर्णन प्रदान करती है। प्राण एवं प्राणायाम पर दर्शन, शरीर क्रियाविज्ञान और अभ्यास के क्षेत्रों में शोध किये जा रहे हैं। शास्त्रों में प्राण की धारणा के समनुरूप शब्दों का इस प्रकार प्रयोग किया गया है कि उनके माध्यम से आधुनिक पाठक अभ्यास के आवश्यक तत्त्वों को समझ पाये। इसके अतिरिक्त उस धारणा की वैज्ञानिक रूपरेखा की भी व्याख्या की गयी है। अभ्यासों को क्रमबद्ध कर वर्गीकृत किया गया है ताकि उन्हें क्रमिक ढंग से सिद्ध करने के लिए यौगिक परामर्श को समझ कर उनका अभ्यास किया जा सके।

यह पुस्तक तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग प्राण के सिद्धान्त और उससे सम्बद्ध यौगिक धारणाओं, जैसे, कोश, चक्र, नाड़ी एवं मंत्र की व्याख्या करता है। द्वितीय भाग में यौगिक और प्राणिक क्रियाओं को समझने के लिए प्रासंगिक श्वसन क्रियाओं का, प्राणायाम की प्रक्रिया और प्राणायाम तथा सम्बद्ध विषयों पर विज्ञान द्वारा किये गये अनुसंधानों का वर्णन है। तृतीय भाग में प्राणायाम के अभ्यासों के लिए मार्गदर्शन दिया गया है और प्रारम्भिक तथा शास्त्रीय प्राणायाम के अभ्यासों का सचित्र वर्णन है। प्राणायाम के सम्पूरक के रूप में नेति, अग्निसार क्रिया, आसन, प्राणायाम, मुद्रा एवं बन्ध जैसे यौगिक अभ्यासों का वर्णन करने वाले चार परिशिष्ट भी दिये गये हैं। हठ योग प्रदीपिका से लिए गये प्राणायाम सूत्रों का एक अनुलग्नक भी दिया गया है।

प्राण

उपनिषदों में एक कथा कही गयी है, जो इस प्रकार है–

एक बार शरीर के अंदर वास करने वाले सभी देवताओं–वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, आकाश, वाणी तथा मन–में वाद-विवाद छिड़ गया। यह घोषणा करते हुए कि मैं ही इस नाशवान शरीर को जीवित रखता हूँ, प्रत्येक ने स्वयं के सर्वश्रेष्ठ होने का दावा किया। प्राण उनकी इस बहस को सुन रहा था। उसने अंत में उन सब से कहा, "आप स्वयं को भ्रम में न रखें। मैं ही स्वयं को पाँच भागों में विभक्त कर इस शरीर को जीवित रखता हूँ।" देवताओं को उस पर विश्वास नहीं हुआ। प्राण ने शरीर से स्वयं को खींचना आरंभ कर दिया। अन्य देवताओं ने स्वयं को भी तत्काल निष्कासित हुआ अनुभव किया। जब प्राण ने पुनः शरीर में प्रवेश किया, तब देवताओं ने पाया कि वे भी अपनी-

अपनी जगहों पर पहुँच गये हैं। प्राण की श्रेष्ठता को स्वीकार कर लेने के बाद वे उसके सम्मुख नतमस्तक हो गये।

प्राण न केवल शरीर को जीवित रखने वाली जीवनी शक्ति है, बल्कि यह प्रत्येक स्तर पर सृजन भी करता है। भारत के मनीषियों ने हमेशा यह जाना और समझा है कि आधुनिक विज्ञान आदिशक्ति के अस्तित्व, उसके स्वभाव, उसकी सम्भावनाओं तथा उसे साधने के तरीकों को समझने के प्रयास करता रहा है। प्रत्येक योग विज्ञान–मंत्र, यज्ञ, तप, एकाग्रता एवं ध्यान के विभिन्न अभ्यासों का उद्देश्य होता है–प्रत्येक व्यक्ति के अंदर या व्यापक ब्रह्माण्ड में स्थित उस प्राणशक्ति को जाग्रत करना और उसका विस्तार करना।

संस्कृत शब्द 'प्राण' दो ध्वनियों 'प्रा' एवं 'ण' से बना है, जिसका अर्थ होता है नैरन्तर्य, वह शक्ति जो निरंतर गतिमान हो। प्राण सभी सचेतन प्राणियों में ऊर्जा के रूप में उनकी प्रत्येक ऐच्छिक और अनैच्छिक क्रिया, प्रत्येक विचार, मन और शरीर के प्रत्येक स्तर पर विद्यमान होता है। वैज्ञानिक शोध प्राण का वर्णन एक बहुआयामी जटिल ऊर्जा के रूप में करते हैं जो विद्युत्, चुम्बकीय, विद्युत् चुम्बकीय, प्रकाशकीय, दृश्य, ऊष्मीय तथा मानसिक ऊर्जा का सम्मिश्रण है।

प्राण अचेतन जगत् में भी विद्यमान रहता है; इस स्तर पर यह गति, वृद्धि और क्षय का कारण बनता है। वास्तव में प्राण व्यक्त जगत् का आधार है। यह शक्ति आदि चेतना की सृजन करने की 'आद्य इच्छा' के रूप में प्रकट हुई है। छान्दोग्य उपनिषद् (1:11:5) में कहा गया है–

सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि।
प्राणमेवाभिसंविशंति प्राणमभ्युज्जिहते ॥

प्रलय काल में सभी चल एवं अचल/चेतन एवं जड़ प्राण में विलीन हो जाते हैं और सृजन काल में उत्पन्न होते हैं।

प्रत्येक प्राणी के सम्पूर्ण शरीर में प्राण जिस प्रकार व्याप्त रहता है उसे योगी भौतिक शरीर से सूक्ष्म अस्तित्व वाला प्राणमय कोश कहते हैं। इस प्राणिक क्षेत्र के अस्तित्व को आधुनिक विज्ञान ने भी प्रमाणित किया है। विशेषतया किर्लियन फोटोग्राफी की अति संवेदनशील पद्धति द्वारा मनुष्य के अतिरिक्त वस्तुओं के चारों ओर भी एक प्रभामण्डल के अस्तित्व को

देखा गया है। इसने यह भी पाया कि प्राणी की दशा के अनुसार प्रभामण्डल में परिवर्तन हुआ। इस प्राणिक क्षेत्र को कभी-कभी साईप्लाज़्मा भी कहा जाता है, क्योंकि इसकी तुलना प्लाज़्मा-भौतिकशास्त्र में वर्णित प्लाज़्मा (आवेशित गैस) से की जाती है। इसका वर्णन ऐसे आवेशित वाष्प कणों के रूप में किया जाता है जो आंतरिक रूप से मन और बाह्य रूप से विद्युत, चुम्बकीय या विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्रों द्वारा प्रभावित होते हों।

प्राणिक शरीर में प्राण ऊर्जा का वहन करने वाली नाड़ियों के माध्यम से प्रवाहित होता है, और ऊर्जा के भँवररूपी चक्रों में संचित रहता है। कुछ शोधकर्ताओं के अनुसार प्राण की विद्युत् चुम्बकीय ऊर्जा विकिरण उत्पन्न करती है, जिसमें विद्युत् एवं चुम्बकीय ऊर्जाएँ एक-दूसरे के साथ समकोण पर होती हैं, जो फलस्वरूप सर्पिलाकार दिखती हैं। वास्तव में चक्रों के चारों ओर सर्पिलाकार या कुण्डलित संरचना का अलग-अलग वर्णन और चित्रण विश्व के सभी भागों के ऋषियों तथा विद्वानों द्वारा किया जा चुका है।

प्राणियों में प्राण जन्मजात होता है। हम प्राण की एक निश्चित मात्रा के साथ जन्म लेते हैं और इसे कायम रखते हैं, बढ़ाते या कम करते हैं उस वायु के माध्यम से जिसे हम श्वास में ग्रहण करते हैं, उस भोजन के द्वारा जो हम खाते हैं, उन विचारों के द्वारा जिन्हें हम सोचते हैं, उन क्रियाओं के द्वारा जो हम करते हैं और उस जीवनशैली से जिसे हम जीते हैं। जब हमारी मृत्यु होती है तब संचित प्राण शरीर को छोड़ जाता है।

प्राणायाम

प्राणायाम के विज्ञान का विकास सिद्धि के शिखर पर पहुँचे योगियों द्वारा अपने अंतर्ज्ञान और प्राण के विषय में अपनी अनुभवजन्य समझ और मानवीय प्रक्रियाओं के विभिन्न स्तरों पर उसके प्रभाव के आधार पर किया गया है। श्वसन क्रिया का उपयोग प्राणिक क्षेत्र में जाने के लिए, शारीरिक संतुलन प्राप्त करने के लिए और मन को नियंत्रित करने के लिए किया गया। उन अभ्यासों के द्वारा शरीर और मन रूपी उपकरण को चेतना की उच्च अवस्थाओं तक पहुँचने योग्य बनाया गया ताकि अंततोगत्वा परमात्म तत्त्व के साथ एकात्म होने की अनुभूति प्राप्त हो सके।

चूँकि श्वास प्राणायाम का माध्यम है, इसलिए इसकी विधि श्वसन की तीन अवस्थाओं पर आधारित है–पूरक (श्वास लेना), कुम्भक (श्वास

रोकना) और रेचक (श्वास छोड़ना)। इन अवस्थाओं के क्रमपरिवर्तन तथा नियंत्रण के द्वारा प्राणायाम के विभिन्न अभ्यास बनते हैं। तकनीकी अर्थ में कहा जाये तो वास्तव में प्राणायाम केवल कुम्भक है। महर्षि पतंजलि के योगसूत्रों में कहा गया है (2:49)–

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद: प्राणायाम:।

श्वास-प्रश्वास की गति को अवरुद्ध कर उसे सुदृढ़ करना ही प्राणायाम है।

पूरक और रेचक की विधियाँ कुम्भक को प्रवृत्त करती हैं। कुम्भक करना ही महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यही प्राण को आत्मसात् करने के लिए लम्बी अवधि होती है, इसी प्रक्रिया में कोशिकाओं के अंदर ऑक्सीजन और कार्बन डायक्साइड को आदान-प्रदान का अधिक समय मिल पाता है। चूँकि श्वास का शरीर की विविध क्रियाओं और उसके अंगों के अतिरिक्त मन से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए श्वास को नियन्त्रित कर हम इन सभी आयामों को प्रभावित कर सकते हैं।

प्राणायाम के प्रारम्भिक अभ्यास प्राणिक स्तर पर शरीर के अंदर स्थित नाड़ियों को स्वच्छ करते हैं। शास्त्रों में बताया गया है कि प्राणिक शरीर में 72,000 नाड़ियाँ और छ: प्रमुख चक्र हैं। हालाँकि एक सामान्य व्यक्ति की अनेक नाड़ियाँ अवरुद्ध रहती हैं और चक्रों से आंशिक ऊर्जा ही निर्मुक्त होती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि हम ऊर्जा, मन और चेतना से सम्बन्धित अपनी अंत:शक्तियों का पूरा उपयोग नहीं करते हैं। शारीरिक या मानसिक स्तर पर हम जिन नकारात्मक स्थितियों का अनुभव करते हैं, वे ही अवरोधों के कारण भी हैं और उनके परिणाम भी। हमारी नाड़ियों एवं चक्रों की दशा हमारे संस्कारों के अतिरिक्त पुरुषार्थ तथा अनुग्रह से निर्धारित होती है। प्राणायाम के अभ्यास से नाड़ियाँ धीरे-धीरे मुक्त होती हैं और उनमें प्राण का निर्बाध प्रवाह होने लगता है।

अभ्यास के उच्च स्तरों पर प्राण के प्रवाह की दिशा प्रभावित होती है और चक्रों से अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा निर्मुक्त होती है। जब ये प्रक्रियायें सक्रिय हो जाती हैं तब अनेक नयी अनुभूतियाँ होने लगती हैं। अभ्यासियों को इन अवस्थाओं से होकर आगे ले जाने के लिए कुशल मार्गदर्शन नितांत आवश्यक है।

स्मरण रहे कि प्राणायाम यूँ ही किया जाने वाला योग का अभ्यास नहीं है। अष्टांग योग पद्धति में यम एवं नियम, षट्कर्म एवं आसनों के लम्बे अभ्यास के बाद इसे किया जाता है और इसके बाद प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास होता है। स्थूल से सूक्ष्म, अन्नमय कोश से आनन्दमय कोश की ओर संतुलित और क्रमिक गति ही इसका उद्देश्य है। हठयोग प्रदीपिका (1:67) में कहा गया है–

पीठानि कुंभकाश्चित्रा दिव्यानि करणानि च।
सर्वाण्यपि हठाभ्यासे राजयोगफलावधिः॥

राजयोग में सफलता प्राप्त होने तक हठयोग पद्धति के आसन, विभिन्न प्रकार के कुम्भक (प्राणायाम) और प्रबोधित करने वाली अन्य विधियों का अभ्यास करते रहना चाहिए।

इस संदर्भ में प्रणायाम का उद्देश्य है, प्रत्याहार में पूर्णता प्राप्त करना। पारम्परिक ग्रन्थों में इसका वर्णन केवल इंद्रियों के प्रत्याहार के रूप में नहीं, बल्कि उस अवस्था के लिए किया गया है जहाँ प्रत्येक संवेदी निवेश को हम परमात्मा की अभिव्यक्ति के रूप में देखते हैं और अपनी प्राणिक क्षमता को इतना विस्तृत कर चुके होते हैं कि हम अपनी श्वास को तीन घंटों तक रोक सकते हैं। शिव संहिता (3:57) में कहा गया है–

याममात्रं यदा धर्तुं समर्थः स्यात्तदाद्भुतः।
प्रत्याहारस्तदैव स्यान्नांतरा भवति ध्रुवम् ॥

जब कोई श्वास को तीन घंटों तक रोक सकता है, तब निश्चित रूप से बिना किसी त्रुटि के प्रत्याहार की अद्भुत अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है।

वस्तुतः योग का अभ्यास तब आरम्भ होता है जब हम प्राणायाम की श्रृंखला में प्रवेश करते हैं। आसनों के अभ्यास के साथ हम शरीर को नियंत्रित करने वाली ऊर्जाओं को सम्हालने योग्य हो जाते हैं। श्वास के माध्यम से प्राणायाम के द्वारा शरीर के अंदर हम सूक्ष्म शक्ति की सजगता का विकास करते हैं, और मन को सूक्ष्म क्रियाओं के प्रति सजग होने का निर्देश देना ही योग की शुरुआत है।

प्राण एवं प्राणायाम
का सिद्धान्त

प्राण क्या है?

कोई भी गति कैसे सम्भव होती है – आँखों का झपकना, फूलों का खिलना, अणुओं का विघटन या उल्कापात? हजारों वर्ष पूर्व हिमालय की कंदराओं में रहने वाले योगियों ने सृष्टि की अंतर्भूत विशेषता, गति को समझा और उसे प्राण का नाम दिया। प्राण शब्द में 'जीवन्तता' के लक्षण अन्तर्निहित हैं। योग के दृष्टिकोण से सारा ब्रह्माण्ड जीवित है और प्राण से स्पंदित है।

प्राण सृष्टि के हर पक्ष में सदा उपस्थित रहता है। यह प्रत्येक सृजित वस्तु को अस्तित्व और भौतिक आकार देता है, चाहे ग्रह हो, उपग्रह हो, घास का तिनका हो या पेड़ हो। यदि प्राण नहीं होता तो कहीं कोई जीवन नहीं होता। यदि प्राण को ब्रह्माण्ड से वापस ले लिया जाये तो पूर्ण विघटन हो जायेगा। सजीव हो या निर्जीव, सभी प्राणी प्राण के कारण ही जीवित हैं। सृष्टि की हर एक अभिव्यक्ति ऊर्जा कणों के एक अनन्त जालक का ही अंग है, जिसमें ऊर्जा-कण भिन्न-भिन्न घनत्व, संयोजन और प्रकारान्तर के साथ व्यवस्थित हैं। प्राण का सार्वभौम सिद्धांत स्थैतिक या गत्यात्मक, किसी भी अवस्था के लिए हो सकता है, लेकिन यह उच्चतम से लेकर निम्नतम जीवों के अस्तित्व के हर स्तर का आधार होता है।

प्राण सबसे सरल होते हुए भी द्रष्टाओं द्वारा प्रस्तुत की गयी सबसे गूढ़ अवधारणा है। निष्ठापूर्वक पूजे गये एक पत्थर की प्राण-ऊर्जा, पूरी छलांग लगाये हुए एक तेंदुए की प्राण-ऊर्जा से अधिक सूक्ष्म हो सकती है। वह मूर्त शक्ति जो हाथों को हिलाने में मदद करती है, प्राण है और यज्ञ द्वारा जिस अमूर्त शक्ति का आवाहन किया जाता है, वह भी प्राण ही है। प्राण के कारण ही हवा बहती है और नदी प्रवाहित होती है। हवाईजहाज, रेलगाड़ी और मोटरगाड़ियाँ प्राण के कारण ही गतिमान होती हैं; लेजर किरणें एवं

रेडियो तरंगें भी प्राण से ही संचारित होती हैं। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु प्राण के विशाल, सर्वव्यापी सागर में तैर रही है और उसी में से अपने लिए आवश्यक तत्त्वों को प्राप्त कर लेती है। कठोपनिषद् (2:3:2) में लिखा गया है –

यदिदं किं च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम् ।

सम्पूर्ण जगत् में जो कुछ भी है, वह प्राण से उत्पन्न होकर स्पंदित होता है।

यह ब्रह्माण्डीय प्राण, जिसे महाप्राण भी कहा जाता है, सृजन के समय अस्तित्व में आया। इस प्रकार, प्राण को पूरी तरह समझने के लिए सृष्टि की रचना के आरम्भ में जाना होगा।

सार्वभौम प्राण

प्रारम्भ में कुछ नहीं था, यहाँ तक कि सृष्टि भी नहीं थी। जिसका अस्तित्व था, वह थी एक सर्वव्यापी, अव्यक्त चेतना, जिसे शास्त्रों ने परब्रह्म के रूप में जाना है। इसके अंदर सृजन करने के सभी आवश्यक गुण और तत्त्व अंतर्निहित थे। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इसमें एक अति घनीभूत शक्ति के रूप में पड़ा हुआ था; प्राण इसमें इस तरह निमग्न था, मानो दोनों एक-दूसरे के साथ प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध हों। यह पूर्ण संतुलन एवं सामंजस्य की स्थिति थी।

इस पूर्ण निश्चलता में भी एक गति है। तांत्रिक एवं वैदिक साहित्यों में कहा गया है कि परम तत्त्व के भीतर एक इच्छा जगी – *'एकोऽहं बहुस्यामः'* – 'मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊँ।' यह अभिलाषा ही प्रथम सृजनात्मक प्रेरणा है, जो 'कामना' में परिणत होती है। अव्यक्त चेतना की कामना प्रथम स्पंदन को जन्म देती है और तब ऊर्जा निःसृत होती है। यह पहली गति है – अस्तित्व में आने का प्रथम क्षण, प्राण का प्रथम आविर्भाव।

इस आद्याशक्ति को महाप्राण कहा जाता है और अनेक नामों से जाना जाता है, जैसे महालक्ष्मी, महामाया, जगत् जननी। प्राण कभी चेतना से पृथक् नहीं था; यह सदा चेतना में अन्तःशक्ति के रूप में स्थित रहा, लेकिन अब इसने अपना अस्तित्व ग्रहण कर लिया। इस प्रकार ऊर्जा और चेतना ने पारस्परिक क्रिया आरम्भ कर दी। दोनों की लीला से सृष्टि का निर्माण हुआ। महाप्राण का जागरण निस्सीम चेतना के 'अहम्' का प्रक्षेपण था – अविकारी, अपरिवर्ती चेतना प्राण की गति के माध्यम से स्वयं का अनुभव

कर सकती थी। समय के साथ चेतना एवं ऊर्जा की अवस्थाओं में रूपान्तर होते गये और हर रूपान्तर के साथ भिन्न स्तर की रचना अस्तित्व में आयी। विभिन्न स्तरों की सत्ता प्रकट हुई – प्राणी और पदार्थ, तत्त्व और ऊर्जा, प्रकाश और अन्धकार, सकारात्मक और नकारात्मक, सजीव और निर्जीव, नर और मादा। चेतना और ऊर्जा ने एक साथ मिलकर ब्रह्माण्ड का निर्माण किया और हर युग के अन्त में ब्रह्माण्ड को स्वयं में समेटते हुए इसका विघटन किया।

प्राण और चित्त की अनेक सूक्ष्मताएँ ही आध्यात्मिक अभ्यासों के सोपान हैं, अन्तिम चरण अन्तर्वलय की अवस्था है, जहाँ केवल शुद्ध चेतना का निवास होता है। यह उद्‌गम तक वापस लौटने की प्रक्रिया है।

प्राण और चित्त की क्रीड़ा

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत् ।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत् ॥

प्राण के चलायमान होने पर चित्त भी चंचल होता है। प्राण के निश्चल हो जाने पर चित्त भी स्थिर हो जाता है। इस (प्राणों की स्थिरता) से योगी स्थिरता को प्राप्त करता है, अत: उसे वायु पर नियंत्रण रखना चाहिए।

–हठयोग प्रदीपिका (2:2)

जीवन के अस्तित्व के लिए प्राण एवं चेतना, दोनों का होना आवश्यक है। चेतन अनुभूति ही चित्त है; जो चेतन अनुभूति के निकट ले जाता है वह प्राण है और जो प्राण को प्रेरित करती है वह वासना है। इसलिए प्राण और वासना चित्त के दो आधार हैं। सजीव को प्राणी कहा जाता है, अर्थात् वह जिसमें प्राण और चेतना हो। ऐसा नहीं कि चेतना अस्तित्व का कारण हो और प्राण उसका परिणाम; न ही प्राण कारण या चेतना परिणाम है। ये अस्तित्व के दो पक्ष हैं, जो प्रत्येक वस्तु का स्वभाव निर्धारित करते हैं।

चेतना सजगता है, ज्ञान है; प्राण गति के माध्यम से प्रकटीकरण है। चेतना निष्क्रिय अनुभूति है, जबकि प्राण अभिव्यक्त ऊर्जा का सक्रिय तत्त्व है। ये दोनों अपरिवर्तनीय मूल तत्त्व हैं, जो ब्रह्माण्ड एवं लघु ब्रह्माण्ड के आधार हैं। हर वस्तु प्राण एवं चित्त का सम्मिश्रण है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, सृष्टि तथा

सत्ता चित्त एवं प्राण की क्रीड़ा हैं। यद्यपि जीवन शक्ति और मानसिक शक्ति ब्रह्माण्ड के प्रत्येक अणु और कोशिका में व्याप्त हैं तथापि दोनों के बीच निश्चित दूरियाँ बनी रहती हैं।

वैयक्तिक प्राण

शिव स्वरोदय में देवी शिव से पूछती हैं – "इस विश्व में मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र कौन है?" शिव उत्तर देते हैं (श्लोक 219) –

प्राण एव परं मित्रं प्राण एव पर: सखा ।
प्राणतुल्य: परो बन्धुर्नास्ति नास्ति वरानने ॥

प्राण परम मित्र है, प्राण परम सखा है। हे सुमुखी! प्राण से अधिक घनिष्ठ मित्र इस विश्व में कोई नहीं है।

सभी प्राणी प्राण से युक्त हैं, जो उन्हें जीवन और अस्तित्व प्रदान करता है। हर व्यक्ति में प्राण की मात्रा उसके व्यक्तित्व की शक्ति से निदर्शित होती है, जो प्राण को नियंत्रित करने की उसकी स्वाभाविक क्षमता को प्रतिबिम्बित करती है। कुछ लोग अपने प्राण के स्तर के कारण दूसरों की अपेक्षा अधिक सफल, प्रभावशाली और मोहक होते हैं। प्रश्नोपनिषद् में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है कि प्राण आत्मा से उत्पन्न हुआ है और यह आत्मा उसी प्रकार अविच्छेद्य है, जैसे किसी वस्तु से उसकी छाया।

प्राय: प्राण शब्द का प्रयोग श्वास के रूप में होता है। हालाँकि प्राण ऑक्सीजन या वायु नहीं है जिसे श्वास द्वारा लिया जाता है। योगियों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि लम्बे समय तक श्वसन को रोकने के बाद भी व्यक्ति जीवित रह सकता है। ऋषिकेश के स्वामी शिवानन्द सरस्वती के शिष्य स्वामी नादब्रह्मानन्द पर अमेरिका के मेनिंजर फाउन्डेशन द्वारा एक प्रयोग किया गया था। स्वामी नादब्रह्मानन्द ने नादब्रह्म में पूर्णता प्राप्त कर ली थी। लम्बे समय तक बिना श्वसन किये आरामपूर्वक रह पाने के उनके दावे की प्रामाणिकता को जाँचना उस प्रयोग का उद्देश्य था। उन्हें वायुरुद्ध कक्ष में रखा गया। उसी प्रकार के विभिन्न कक्षों में एक जलती हुई मोमबत्ती और एक जीवित बन्दर को रखा गया। उनके हृदय, मस्तिष्क और शरीर के अन्य अंगों से इलेक्ट्रोडों को जोड़ दिया गया और उन्हें तबला बजाने के लिए कहा गया। इसके साथ ही

उपकरणों द्वारा उनके पैरामीटर को मापा गया। उनके नाक-कानों को बन्द कर दिया गया और पूरे शरीर पर मोम का लेप लगा दिया गया ताकि रोम-छिद्रों से हवा शरीर के अन्दर प्रवेश नहीं करे।

तीन मिनटों के बाद मोमबत्ती बुझ गयी और पन्द्रह मिनटों के बाद बन्दर मूर्च्छित हो गया। लेकिन स्वामी नादब्रह्मानन्द ने चालीस मिनटों से अधिक समय तक तबला बजाना जारी रखा। इस अवधि में वे श्वास नहीं ले रहे थे और जब एक सिक्के को उनके मुण्डित सिर पर रखा गया तब वह ऊपर-नीचे कूदने लगा। जब एक माइक्रोफोन को उनके शरीर के किसी भाग के पास रखा गया तब उसमें पानी के झरने की लगातार तेज ध्वनि सुनायी पड़ने लगी। उन्होंने समझाया कि यह प्राण के संचलन की ध्वनि थी। उन्होंने यह भी बताया कि व्यक्ति तब तक जीवित रह सकता है जब तक प्राण सक्रिय है, भले ही वह श्वास लेना बन्द कर दे। हठयोग प्रदीपिका (2:3) में उनका यह कथन प्रतिध्वनित होता है –

यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते ।
मरणं तस्य निष्क्रांतिस्ततो वायुं निरोधयेत् ॥

जब तक शरीर में वायु (प्राण) है तब तक जीवन है। शरीर से वायु के निकल जाने पर मृत्यु हो जाती है, अतः वायु को रोक कर रखो।

प्राण को ग्रहण करना

प्राण प्रत्येक वस्तु के अन्दर का गतिशील तत्त्व है। हर प्राणी प्राण की एक निश्चित मात्रा के साथ उत्पन्न होता है, लेकिन उसकी मात्रा और गुण में आजीवन निरंतर परिवर्तन आते रहते हैं। सकारात्मक विचार, उच्चतर भावनाएँ एवं यौगिक अभ्यास उच्चतर स्तर के प्राण उत्पन्न करते हैं। जब यौन ऊर्जा का उदात्तीकरण या रूपान्तरण हो जाता है तब पर्याप्त मात्रा में प्राण शरीर में सुरक्षित हो जाता है और ऊर्जा के एक सूक्ष्म रूप, ओजस में परिवर्तित हो जाता है। यह ऊर्जा मस्तिष्क में संचित हो जाती है और रचनात्मक एवं आध्यात्मिक विकास के उपयोग में लायी जाती है। एक योगी अपने अन्दर प्रचुर मात्रा में प्राण को संचित रखता है, बिल्कुल वैसे ही जैसे बैटरी में विद्युत। उसके प्राण ऊर्जा सामर्थ्य, स्वास्थ्य एवं ओज के रूप में उसके चारों ओर विकीर्ण होती रहती है। उसमें ऊर्जा का ऐसा भण्डार होता है

जिससे उसके सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति प्राण से ऊर्जित हो जाता है। स्वामी शिवानन्द कहते हैं, "जिस प्रकार जल एक पात्र से दूसरे पात्र की ओर प्रवाहित होता है, उसी प्रकार एक सिद्ध योगी का प्राण निरंतर दुर्बल व्यक्तियों की ओर प्रवाहित होता रहता है।"

भौतिक स्तर पर भी मनुष्य वातावरण, भोजन, जल, सूर्य और वायु से प्राण ग्रहण करता रहता है। सभी तत्त्व प्राण से निर्मित हैं। अत: प्रत्येक व्यक्ति में प्राण की मात्रा उन तत्त्वों के गुणों पर निर्भर रहती है जिनके सम्पर्क में वह आता है और अपने भोजन के रूप में प्रतिदिन वह जो ग्रहण करता है।

भोजन का प्राणिक महत्त्व – भगवद्गीता (17:8 – 10) में विभिन्न भोज्य पदार्थों में प्राण के गुणों को सात्त्विक, राजसिक और तामसिक श्रेणियों में विभक्त करने का उल्लेख है। आधुनिक समय में फ्रांस के आन्द्रे सिमोनेतन द्वारा भोजन के प्राणिक महत्त्व का आकलन करने की पद्धति विकसित की गयी थी। उसने धागे से बँधे एक सामान्य लोलक का प्रयोग इस काम के लिए ठीक उसी प्रकार किया जिस प्रकार शकुनक दण्ड का प्रयोग जल का पता लगाने वाले करते हैं। कार्बनिक पदार्थों से एक सूक्ष्म विकिरण होता है जो लोलक की गति को प्रभावित करते हुए उसे झुलाता है। लोलक के चाप की दूरी और उसके घूर्णन की गति को माप कर सिमोनेतन उन विशिष्ट तरंगदैर्ध्यों को मापने में सक्षम हुए जो विभिन्न भोज्य पदार्थों के स्थायित्व और उनके आपेक्षिक ताजापन का संकेत देते हैं। उन्होंने अपने शोधपत्र '*रेडियेशन दे एलमेन्त्स, औंदे ह्युमेन्स एत साँते*' को प्रकाशित करवाया था।

अपने अध्ययन के आधार पर सिमोनेतन ने भोजन को चार सामान्य वर्गों में विभक्त किया। शून्य से 10,000 ऐन्स्ट्रॉम (ऐन्स्ट्रॉम = एक सेंटीमीटर का सौ करोड़वाँ हिस्सा) के पैमाने पर उन्होंने मनुष्य की तरंगदैर्ध्य लगभग 6.5 हजार पायी। उन्होंने इसके और 10,000 ऐन्स्ट्रॉम के बीच के तरंगदैर्ध्य के भोजन को उत्तम कोटि का माना। उच्चतम कोटि में फल, ताजी सब्जियाँ, बिना टूटे हुए अनाज, जैतून का तेल, समुद्री मछलियाँ और शंख जैसे कवच वाले प्राणी आते हैं। अगली श्रेणी 6.5 हजार से 3,000 ऐन्स्ट्रॉम तक के विकिरण की है जिसमें अण्डे, मूंगफली का तेल, उबली हुई सब्जियाँ, ईख और पकी हुई मछलियाँ आते हैं। 3,000 ऐन्स्ट्रॉम से कम विकिरण वाली तीसरी श्रेणी में पका हुआ मांस, सॉसेज, कॉफी, चाय, चॉकलेट, जैम, संसाधित पनीर और सफेद पावरोटी आते हैं। चौथी श्रेणी के अंतर्गत, जिसमें

वस्तुतः ऊर्जा की उपस्थिति के संकेत नहीं मिलते हैं, मारजरीन, संरक्षित रखे गये पदार्थ, मादक द्रव, शोधित श्वेत शक्कर और रासायनिक पद्धति से परिशोधित आटा आते हैं।

सिमोनेतन ने यह भी पाया कि 8,000 से 10,000 ऐन्स्ट्रॉम की ऊर्जा के विकिरण वाले भोज्य पदार्थों से लोलक की अद्भुत गति 80 मिलीमीटर के घेरे में 4 – 500 घूर्णन प्रति मिनट थी। 6,000 से 8,000 ऐन्स्ट्रॉम में 60 मिलीमीटर के घेरे में 3 – 400 घूर्णन प्रति मिनट थी। जबकि मांस, पाश्चरीकृत दूध और अत्यधिक पकायी गयी सब्जियाँ, जिनका विकिरण मान 2,000 से कम है, उनमें ऊर्जा इतनी कम होती है कि वे लोलक को बिल्कुल घुमा नहीं पाते हैं। यह भोजन की शुद्धता बनाये रखने के लिए, विशेष रूप से प्राणायाम के अभ्यास के दौरान, यौगिक परामर्श को सही सिद्ध करता है।

वायु का प्राणिक महत्त्व – जीवन और स्वास्थ्य के लिए शुद्ध वायु की आवश्यकता केवल आवश्यक मात्रा में ऑक्सीजन की पूर्ति के लिए नहीं, बल्कि प्राण की आपूर्ति के लिए भी होती है। श्वसन में ली गयी वायु की शुद्धता का स्तर ऊर्जा के स्तर को सीधे प्रभावित करता है। किसी झरने के पास या ऊँचे पर्वतों के बीच आनन्द और ऊर्जस्विता का अनुभव उन स्थानों पर प्राण की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा के कारण होता है। जबकि दूसरी ओर, प्रदूषित वातावरण में ऊर्जा का स्तर तुरंत गिरने लगता है। विज्ञान ने इस प्रक्रिया की आयन के रूप में इस प्रकार व्याख्या की है – जब एक इलेक्ट्रॉन का निक्षेप करने के लिए पर्याप्त ऊर्जा गैस के एक अणु पर क्रिया करती है, तब वायु में आवेशित कणों का निर्माण होता है। आयन धनात्मक या ऋणात्मक हो सकते हैं। जब एक विस्थापित हुआ इलेक्ट्रॉन अपने बगल के अणु के साथ संयुक्त हो जाता है, तब यह एक ऋणात्मक आयन बन जाता है। मूल अणु तब एक धनात्मक आयन बन जाता है।

ये धनात्मक एवं ऋणात्मक आयन श्वास में ली जाने वाली वायु के संघटक अवयव होते हैं। जब कोई ऋणात्मक आयनों को श्वास के द्वारा ग्रहण करता है, तब वे व्यक्ति के शरीर में प्राण के स्तर को बढ़ा देते हैं। धनात्मक आयनों को श्वास द्वारा अन्दर लेने पर इसके विपरीत प्रभाव का अनुभव होता है। किसी भी आधुनिक शहर के एक बन्द कमरे के प्रति वर्ग फुट में 50 से कम ऋणात्मक आयन होंगे और पर्वतों पर लगभग 5,000 होंगे। अब यह वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित हो चुका है कि ऋणात्मक आयनों की कमी बेचैनी,

दुर्बलता, शिथिलता और कुछ हद तक मानसिक एवं शारीरिक अयोग्यता का कारण होती है। ऋणात्मक आयन अंशत: आरोग्यकर होते हैं, क्योंकि वे रोगाणुओं का नाश करते हैं। कोशिकाओं एवं ऊतकों में रक्त के साथ ऑक्सीजन पहुँचाने की गति को तीव्र करते हुए ये मनुष्यों में ऑक्सीजन के शोषण की क्षमता को प्रभावित करते हैं। ऋणात्मक आयन प्राण नहीं हैं, लेकिन जब उन्हें श्वास द्वारा ग्रहण किया जाता है, तब शरीर में प्राण का स्तर बढ़ जाता है। इस संदर्भ में यह रोचक तथ्य है कि ऋणात्मक आयन तभी कार्य करता है जब उन्हें श्वास द्वारा अन्दर लिया जाता है। यह भी पाया गया है कि प्राणायाम जैसे यौगिक अभ्यासों के क्रम में ऋणात्मक आयन को आत्मसात् करने की क्षमता बढ़ जाती है।

प्राण की क्रियाशीलता

प्राण केवल बाहरी स्रोतों से ग्रहण नहीं किया जाता; इसे स्वयं भी उत्पन्न किया जाता है और इसकी गुणवत्ता को परिष्कृत एवं निर्दिष्ट भी किया जा सकता है। व्यक्ति अपने प्राण को प्रभावित कर इसका उपयोग अपनी ऊर्जस्विता, इच्छाशक्ति और सामर्थ्य को बढ़ाने, रोगों के उपचार, योग्यता एवं क्षमता में वृद्धि और उच्चतर चेतना के विकास के लिए कर सकता है। वस्तुत: जीवन के किसी भी अनुभव में पूर्णता लाने के लिए मनुष्य को अपनी प्राण शक्ति के साथ तालमेल बैठाना चाहिए।

श्वास प्राण की बाह्य अभिव्यक्ति है। योगी कहते हैं कि प्राण को धारण किया जाता है और श्वास छोड़ते समय निकाली गयी वायु के विस्तार को सोच-समझकर कम करते हुए जीवन की अवधि को बढ़ाया जा सकता है। इस तथ्य के आधार पर उन लोगों ने विभिन्न क्रियाओं के दौरान प्राण में होने वाले विस्तार को मापने की विधि का आविष्कार किया। उन्होंने बताया कि विभिन्न क्रियाओं के क्रम में होने वाले बहिर्श्वसन की लम्बाई का अवलोकन कर प्राण के बहिर्गमन को मापा जा सकता है। वायु प्रवाह जितना लम्बा होगा, प्राण का उतना अधिक उपयोग होगा। बहिर्श्वसन की वायु की औसत लम्बाई बारह अंगुल (नौ इंच) की होती है। गाते समय इसकी लम्बाई सोलह अंगुल (एक फुट) होती है, जबकि खाते समय यह बीस अंगुल (पन्द्रह इंच) की, सोते समय तीस अंगुल (बाइस इंच), मैथुन के समय छत्तीस अंगुल (सत्ताइस इंच) और शारीरिक कार्य करते समय इससे कहीं अधिक हो जाती है।

प्राण का सर्वाधिक उपयोग मस्तिष्क द्वारा किया जाता है। यदि मस्तिष्क को पर्याप्त प्राण की आपूर्ति नहीं हो पाती है, तो मन व्याकुल और क्षुब्ध हो जाता है, और निरंतर नकारात्मक विचारों में डूबने लगता है। यह इस तथ्य से प्रकट होता है कि जब हम भूखे या बीमार होते हैं, तब हममें चिड़चिड़ा होने की प्रवृत्ति आ जाती है। शरीर में प्राण की मात्रा कम हो जाती है और मस्तिष्क की तंत्रिकाएँ उस कमी का विरोध करती हैं।

यद्यपि श्वास स्थूल होती है और प्राण सूक्ष्म, फिर भी दोनों तात्त्विक रूप से परस्पर संयुक्त रहते हैं। मनुष्य श्वास की सहायता से प्राण शक्ति के स्तर को प्रभावित कर सकता है। जब श्वास के रूपान्तर के द्वारा प्राण प्रभावित होता है, तब शरीर, मस्तिष्क, मन और चेतना की सभी क्रियायें भी प्रभावित होती हैं। प्राणायाम के अभ्यास श्वसन को प्रभावित कर प्राण के स्तर को बढ़ाते हैं जो प्राण विद्या, अर्थात् आंतरिक ज्ञान या प्राण की अनुभूति की ओर अग्रसर करता है। प्राणिक सजगता का महत्त्वपूर्ण परिणाम यह होता है कि व्यक्ति अपने मन को नियंत्रित करने में सक्षम हो जाता है।

जब प्राण गतिमान् होता है, तब मन विचार कर पाता है और इंद्रियों को अपने-अपने विषयों का बोध होता है। प्राण की सूक्ष्मग्राहिता को विकसित करने पर व्यक्ति मन की उन सूक्ष्म शक्तियों के प्रति सजग हो जाता है जो विचारों, भावों, भावनाओं, प्रतिक्रियाओं, प्रभावों, प्रतीकों एवं ज्ञान से उत्पन्न होती हैं। प्राण मन की अपेक्षा अधिक स्थूल होता है, इसलिए इसे नियंत्रित करना अपेक्षाकृत सरल है। अत: यदि प्राण को पकड़ लिया जाये, तो चंचल मन को भी पकड़ा जा सकता है। हठयोग प्रदीपिका (2:42) में कहा गया है –

मारुते मध्यसंचारे मन:स्थैर्यं प्रजायते ।
यो मन:सुस्थिरीभाव: सैवावस्था मनोन्मनी ॥

प्राण की मध्यवर्ती गति मन को स्थिर करती है। मन की स्थिरता मनोन्मनी (विचारशून्यता) की स्थिति है।

जब मनुष्य का प्राण के साथ सामंजस्य होता है, और इसकी मात्रा तथा गुणवत्ता में वृद्धि होती है, तब मस्तिष्क की सुप्त क्षमताएँ जाग उठती हैं। सामान्यत: मानव मस्तिष्क का केवल दसवाँ हिस्सा सक्रिय रहता है और नौ भाग निष्क्रिय रहते हैं, क्योंकि सम्पूर्ण मस्तिष्क को एक साथ क्रियाशील

होने के लिए उच्च स्तर की ऊर्जा की आवश्यकता होती है। योगाभ्यास उतनी मात्रा में ऊर्जा की आपूर्ति कर एक औसत व्यक्ति की प्रतिभा को जाग्रत करने में सक्षम होते हैं। हालाँकि शीघ्रता से किये गये प्राणायाम के कुछ चक्रों के द्वारा ऐसी उपलब्धि नहीं हो सकती है। गहन एकाग्रता, तीव्र सजगता और दृढ़ विश्वास के साथ दीर्घकालीन अभ्यास एक योगी की अपेक्षित आवश्यकताएँ हैं।

ब्रह्माण्डव्यापी प्राण की अनुभूति

प्रत्येक प्राणी के अंदर का वैयक्तिक प्राण महाप्राण के ब्रह्माण्डव्यापी सागर का एक अंश होता है। लेकिन जब तक इस सत्य की अनुभूति नहीं हो जाती, तब तक मनुष्य स्वयं को शेष ब्रह्माण्ड से अलग ही मानता रहता है। प्राणायाम के अभ्यास वैयक्तिक प्राण को सक्रिय कर देते हैं और इसकी तीव्रता को बढ़ा देते हैं। वे पूरे शरीर में एक निश्चित मात्रा में ताप या सृजनात्मक शक्ति उत्पन्न कर देते हैं। यह पहले से विद्यमान प्राण की मात्रा को प्रभावित करता है, जिससे प्राण ऊपर आज्ञा चक्र की ओर उठने लगता है और तब इसे शरीर के विभिन्न क्षेत्रों में प्रेषित किया जा सकता है। यह प्रक्रिया प्राण विद्या का आधार है।

जब प्राण साधना अधिक ऊँचे स्तर की हो जाती है तब उत्पन्न हुआ ताप अत्यन्त तीक्ष्ण हो जाता है। इसके बाद आज्ञा चक्र मूलाधार चक्र को संदेश देता है। मूलाधार कुण्डलिनी का निवास स्थान है, जहाँ ब्रह्माण्डीय प्राण सुप्त स्थिति में रहता है। सृजन से प्रलय तक की अनुभूतियाँ कुण्डलिनी की परतों में दबी पड़ी रहती हैं, इसीलिए इसे आत्मशक्ति भी कहा जाता है। आज्ञा चक्र द्वारा प्रेषित संदेश इस शक्ति को झकझोर डालता है और तब महाप्राण का जागरण होता है। जब यह ऊर्जा अपनी पूरी क्षमता के साथ मुक्त होती है तब यह सुषुम्ना नाड़ी के माध्यम से आरोहण करती हुई ऊपर जाकर व्यक्ति को पूर्णत: रूपांतरित कर डालती है। ब्रह्माण्डीय प्राण एवं कुण्डलिनी पर्यायवाची शब्द हैं। कुण्डलिनी के जागरण का अर्थ है, ब्रह्माण्डीय प्राण के साथ एकाकार होना।

जागरण के समय प्राण एवं चित्त, ये दो शक्तियाँ व्यक्ति के अंदर पूर्ण संतुलन प्राप्त करती हैं और एक-दूसरे में समाहित होकर एकाकार हो जाती हैं। मन का विखण्डन होता है और इसके साथ ऊर्जा उत्पन्न होती है। सत्य एक

विस्फोट के रूप में प्रकट होता है जिससे सारी चीजें उद्भासित होने लगती हैं। व्यक्ति विश्व की प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक व्यक्ति, पत्ते और शिला में स्वयं को देखने लगता है। ब्रह्माण्डव्यापी प्राण की अनुभूति होती है और पृथकता का बोध समाप्त हो जाता है। जिन लोगों को इस एकत्व की अनुभूति हो चुकी है, उन्हें संत या मुक्त प्राणी कहा जाता है, क्योंकि उन्होंने अपने अंदर के सूक्ष्म ब्रह्माण्ड की असीम सार्वभौमिक ऊर्जा को नियंत्रित कर द्वैत के बोध को समाप्त कर दिया है। इस स्तर पर परम योग की अनुभूति होती है, जहाँ व्यक्ति को सत्-चित्-आनन्द की प्राप्ति होती है।

पंच कोश

योग के अनुसार मनुष्य अपने अस्तित्व के उन पाँच आयामों का अनुभव कर सकता है, जिन्हें पंच कोश कहा जाता है। ये ऐसे पाँच क्षेत्र हैं जिनमें मनुष्य हर क्षण रहता है और इनका विस्तार स्थूल से सूक्ष्म तक होता है। ये पंच कोश इस प्रकार हैं –

1. अन्नमय कोश
2. प्राणमय कोश
3. मनोमय कोश
4. विज्ञानमय कोश और
5. आनन्दमय कोश।

पहला कोश या अनुभूति का स्तर भौतिक शरीर या अन्नमय कोश है। अन्नमय का अर्थ है, अन्न से बना हुआ। यह अस्तित्व का स्थूल स्तर है और अन्न, जल एवं वायु पर इसकी निर्भरता के कारण इसका उल्लेख अन्नमय कोश के रूप में किया जाता है। यह कोश प्राण पर भी निर्भर रहता है। जहाँ भोजन के बिना छः सप्ताह, जल के बिना छः दिन और वायु के बिना छः मिनट जीवित रहा जा सकता है, वहीं प्राण के निकलते ही जीवन समाप्त हो जाता है।

दूसरा है, प्राणमय कोश, जो व्यक्ति का ऊर्जा क्षेत्र होता है। इसमें अनुभूति का स्तर भौतिक शरीर से अधिक सूक्ष्म होता है। यह शरीर में व्याप्त होकर उसका सम्भरण करता है। इस कोश का पोषण इससे अधिक सूक्ष्म कोश करते हैं। भौतिक एवं प्राणिक शरीर मिलकर मानव शरीर की रचना करते हैं जिसे आत्मपुरी; आत्मा की नगरी कहा जाता है। ये उच्चतर शरीरों की अनुभूति के लिए पात्र का निर्माण करते हैं।

प्राणमय कोश प्राणायाम एवं प्राणविद्या के अभ्यासों का आधार है। इसका वर्णन भौतिक शरीर के प्राणिक, सूक्ष्म एवं अतीन्द्रिय पक्ष के रूप में भी किया जाता है। इसका आकार और आयाम लगभग अपने हाड़-मांस के वाहन के समान ही होता है, हालाँकि इसमें विस्तरण तथा संकुचन की क्षमता होती है। तैत्तिरीय उपनिषद् की ब्रह्मानन्द वल्ली में कहा गया है –

तस्माद्वाएतस्मादन्नरसमयात् । अन्योऽन्तर आत्मा प्राणमय:।
तेनैष पूर्ण:। स वा एष पुरुषविध एव ।
तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविध:॥

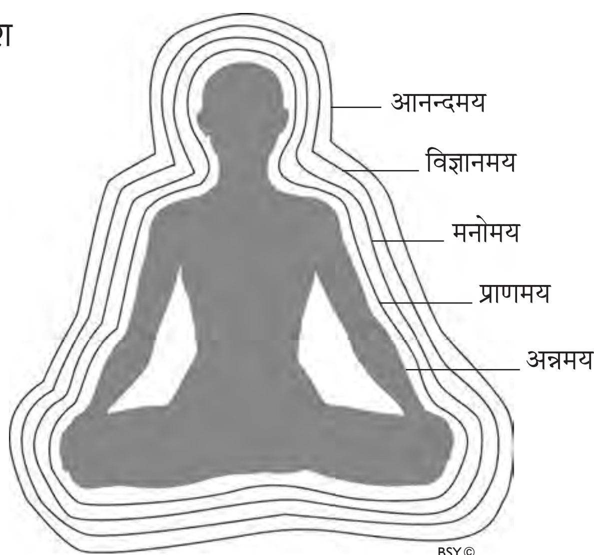
वस्तुत: भोजन के तत्त्व से बने इस भौतिक शरीर के अतिरिक्त एक अन्य स्वनिर्मित आंतरिक प्राण ऊर्जा है, जो इस भौतिक शरीर में व्याप्त है। जिस प्रकार मांसल शरीर का आकार एक व्यक्ति के समान होता है, ठीक उसी प्रकार इस प्राणिक शरीर का आकार भी एक व्यक्ति के समान होता है।

सूक्ष्मदर्शी प्राणिक शरीर को रंगीन, चमकीले बादल या आभा के समान शरीर के चारों ओर, भौतिक शरीर के अन्दर से उद्भासित होता हुआ उसी प्रकार देखते हैं जिस प्रकार निस्तेज होते हुए चन्द्रमा के पीछे से धधकता हुआ सूर्य दिखता है। उच्च वोल्टेज वाले किर्लियन के उपकरण द्वारा शोध करने वालों को फिल्म पर इसी के समान परिणाम मिले हैं। प्राणिक शरीर भौतिक शरीर से अधिक सूक्ष्म होता है और इसके विखण्डन में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है। इसीलिए काटे गये अंग के ऊर्जा क्षेत्र को कुछ देर बाद तक भी अनुभव किया जा सकता है। जैसा कि किर्लियन फोटोग्राफी के प्रयोगों द्वारा दर्शाया गया है, ऊर्जा का यह स्रोत क्षतिग्रस्त हुए अंगों को स्वस्थ होने के बाद अपने मूल आकार में वापस आने में मदद करता है।

तीसरा है मनोमय कोश, जो मानसिक आयाम है। इसकी अनुभूति का स्तर चेतन मन है जो दो स्थूल कोशों, अन्नमय एवं प्राणमय, को एक साथ एक इकाई के रूप में धारण करता है। यह बाह्य एवं आन्तरिक जगत् के बीच एक सेतु है। इसके माध्यम से बाह्य जगत् की अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ अन्तर्ज्ञात शरीर को, और कारण एवं अंतर्ज्ञात शरीर के प्रभाव स्थूल शरीर को प्रेषित होते हैं।

चौथा है विज्ञानमय कोश, जो चित्त के स्तर पर अवचेतन और अचेतन मन को जोड़ता है। यह मनोमय कोश में व्याप्त रहता है, लेकिन उससे सूक्ष्म है।

पंच कोश



विज्ञानमय कोश वैयक्तिक एवं सार्वभौमिक मन के बीच की कड़ी है। आन्तरिक ज्ञान इसी स्तर से चेतन मन में आता है। जब यह कोश जाग्रत हो जाता है तब व्यक्ति को जीवन के अनुभव अन्तर्ज्ञान के रूप में होने लगते हैं, उसे दृश्यजगत् के पीछे छिपे सत्य का बोध होने लगता है। इससे प्रज्ञा की जागृति होती है।

पाँचवाँ आनन्दमय कोश है, जो आनन्द का स्तर है। यह कारण या अतीन्द्रिय शरीर सूक्ष्मतम प्राण का निवास है।

प्राण एवं कोश

सभी पाँच कोशों में प्राण व्याप्त हैं। यही उनका भरण-पोषण करता तथा सबके बीच अपेक्षित सम्बन्ध बनाए रखता है। एक से दूसरे कोश में आवागमन भी प्राण की मदद से ही होता है। कोशों के बीच प्राण की कार्यविधि को गाड़ी में गियर परिवर्तन के उदाहरण से समझा जा सकता है। एक से दूसरे गियर में न्यूट्रल से होकर जाना होता है। गाड़ी को रोकने या पीछे करने के लिए पहले न्यूट्रल का प्रयोग किया जाता है। न्यूट्रल गियर नहीं है; पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा और रिवर्स गियर हैं। लेकिन बीच के न्यूट्रल के स्थान पर गये बिना एक से दूसरे गियर में नहीं जाया जा सकता है। यही सिद्धांत कोशों पर भी लागू होता है।

अन्नमय से मनोमय, मनोमय से विज्ञानमय, विज्ञानमय से आनन्दमय कोश में विचरण करने के लिए प्राणमय कोश न्यूट्रल का कार्य करता है। व्यक्ति को एक से दूसरी अवस्था में जाने के लिए प्राण शक्ति की क्षमता का उपयोग करना चाहिए। इस प्रकार गियर बॉक्स में न्यूट्रल का जो स्थान होता है वही स्थान व्यक्ति के जीवन में ऊर्जा के आयाम का है। प्राण के सक्रिय होने पर व्यक्ति की पहुँच भौतिक, मानसिक, आत्मिक और आध्यात्मिक आयामों तक हो जाती है।

कोशों के द्वारा आरोहण

योग साधक का उद्देश्य होता है; एक-एक कर कोशों का भेदन करते हुए चेतना के उच्चतर स्तरों तक पहुँचना। उदाहरण के लिए, षट्कर्म सीधे अन्नमय कोश को प्रभावित करते हैं और प्राण के प्रवाह को सुगम बनाते हुए चेतना को अगले स्तर, प्राणमय कोश में प्रवेश करने में मदद करते हैं। आसनों का भी समान प्रभाव पड़ता है; वे अन्नमय कोश के अवरोधों को दूर करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप प्राणमय कोश भी प्रभावित होता है। साधक आसनों के अभ्यास में ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाता है, उनका प्रभाव-क्षेत्र सूक्ष्मतर होता जाता है और प्राणमय कोश सीधे प्रभावित होने लगता है। प्राणायाम के अभ्यास प्राणमय कोश को प्रत्यक्ष रूप से और मनोमय कोश को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।

प्रथम तीन कोशों के शुद्धिकरण के पश्चात् चौथे कोश, विज्ञानमय कोश का द्वार खुल जाता है जो अंतर्ज्ञान का कोश है। आनन्दमय कोश का कैसे और कब भेदन होता है, यह एक रहस्य ही बना हुआ है। अतीन्द्रिय क्षेत्र में अभ्यासों के क्रम और उनके प्रभाव का सिद्धान्त लागू नहीं होता है। फिर भी पाँचों कोश परस्पर जुड़े हुए हैं और यदि एक में कुछ होता है तो उसका प्रभाव दूसरों पर पड़ता है। प्राणिक शक्ति के सक्रिय होने पर स्वस्थ होने की क्षमता विकसित होती है, जिससे इस ऊर्जा का उपयोग जीवन के घावों को भरने में किया जा सके। मनोमय कोश के शुद्धिकरण के फलस्वरूप विचारों में स्पष्टता आती है और भावनाओं एवं अहम् की अभिव्यक्ति हो जाती है। विभिन्न अवस्थाओं तथा परिस्थितियों को बेहतर ढंग से समझने की क्षमता विकसित होती है और बुद्धि एवं कर्म के क्षेत्र में अधिक सृजनात्मकता आ जाती है।

जब अन्नमय और प्राणमय शुद्ध हो जाते हैं तब उनके तथा मनोमय के बीच कोई बाधा नहीं रह जाती। मन, शरीर और ऊर्जा के सामंजस्य से विज्ञानमय कोश के आवरण को भेदा जा सकता है। जब इस आत्मिक कोश में प्रवेश होता है तब एकाग्रता तीव्र हो जाती है और मन के गहन विचार सतह पर आ जाते हैं। आत्मिक अनुभूतियाँ होने लगती हैं, अतिसंवेदी बोध उत्पन्न होते हैं तथा जड़ जमाये हुए संस्कारों का परिष्करण हो जाता है। ज्योंही विज्ञानमय कोश शुद्ध होता है, रचनात्मकता प्रेरित होती है तथा अंतर्ज्ञान के साथ स्पष्टता अनायास ही आ जाती है। इस अवस्था में मन वास्तव में रिक्त होकर आनन्दमय कोश की अनुभूति के लिए तैयार हो जाता है।

कोशों के द्वारा क्रमिक आरोहण की इस प्रक्रिया को कुछ विरले योगी, जिन्हें ईश्वर अनुग्रह प्राप्त है, उलट भी सकते हैं। ऐसी स्थिति में आनन्दमय कोश का अनुभव अन्य सभी स्तरों का शुद्धिकरण करता है।

कोश चेतना

योगाभ्यासों का चयन प्रमुख कोश के आधार पर होना चाहिए, जहाँ चेतना स्थित होती है। कोश चेतना के जिन विभिन्न स्तरों का प्रतिनिधित्व करते हैं, वे इस प्रकार हैं – 1) शरीर, 2) जीवन, 3) मन, 4) चित्त और 5) आत्मा। प्रत्येक साधक विकास क्रम में अपनी स्थिति के आधार पर चेतना के इन पाँच स्तरों में से मुख्यत: किसी एक में स्थित होता है। यदि चेतना मुख्यत: अन्नमय कोश में है तो व्यक्ति की स्थिति निश्चित रूप से शरीर में ही होगी, जिस प्रकार अनेक भोगवादी एवं सुखवादी जीते हैं। यदि चेतना प्राणमय कोश में है तो व्यक्ति खिलाड़ियों की तरह शक्ति और ऊर्जा से सम्बन्ध जोड़ेगा। चेतना यदि मनोमय कोश में है तो विश्लेषणात्मक मन के साथ व्यक्ति का तादात्म्य होगा।

जब चेतना का विकास विज्ञानमय कोश तक हो जाता है, जहाँ तामसिक और राजसिक प्रवृत्तियाँ कम हो चुकी होती हैं, तब विवेक बुद्धि के आधार पर ज्ञान में स्पष्टता आती है। यहाँ सभी अनुभूतियों को चित्त के प्रकाश में देखा जाता है और उनका महत्त्व प्रत्यक्ष की अपेक्षा गूढ़तर हो जाता है। इस आयाम में व्यक्ति उच्च चेतना की सूक्ष्म, अर्थपूर्ण प्रकृति का अनुभव करने लगता है। जो आनन्दमय कोश से तादात्म्य स्थापित कर लेता है वह योगी है। वह अध्यात्म के क्षेत्र में विकसित हो चुका है, उसकी सभी अनुभूतियाँ आध्यात्मिक होती हैं।

साधक के जीवन की अनुभूतियाँ उसकी चेतना के विस्तार की द्योतक होती हैं; इससे उसके विकास की परिधि का पता चलता है। चेतना के किसी एक कोश में स्थित होने पर भी अन्य कोशों में अवरोध विद्यमान रहते हैं। इसी कारण समन्वय योग के अभ्यास का परामर्श दिया जाता है। योग के प्रत्येक अंग पर कितना समय व्यतीत किया गया जाए, यह समय सीमा हर व्यक्ति के लिए भिन्न होती है और उसके विकास के स्तर एवं अवरोधों पर निर्भर रहती है। प्रत्येक कोश के लिए सही अभ्यासों का निर्धारण करने के लिए योग्य निर्देशन अनिवार्य है, चूँकि ये अभ्यास क्रमश: अन्य कोशों को भी प्रभावित करेंगे।

विभिन्न कोशों में प्राण का बोध

प्राणायाम एवं प्राणविद्या पर ध्यान केन्द्रित करने वाले साधक का उद्देश्य प्राणमय कोश में तब तक कार्यरत रहना है जब तक प्राण की सक्रियता और उसका बोध पर्याप्त रूप से सूक्ष्म होकर अन्य कोशों का भेदन करने योग्य न हो जाये। प्राणविद्या की विधियाँ साधक को सूक्ष्मता के विभिन्न स्तरों पर सीधे प्राण को समझना और उसका अनुभव करना सिखाती हैं। प्राण के जाग्रत होने के बाद इसके प्रवाह, रूप, रंग और गुण का अनुभव सभी स्तरों पर होता है।

अन्नमय कोश के स्तर पर प्राण की अनुभूति स्नायु ऊर्जा के रूप में होती है। अन्य कोशों में प्राण शक्ति की सजगता प्रत्याहार के द्वारा, स्थूल शरीर तथा बाह्य वातावरण से परे जाकर विकसित होती है। मनोमय कोश में प्राण के बोध की तुलना उस घर से की जा सकती है जो रात्रि के समय प्रकाशित हो। उस प्रकाश का गुण और उसकी चमक मन की शुद्धता पर निर्भर रहती है। कुछ लोगों को मनोमय कोश का अनुभव रूप और आकार वाले प्रकाश कोश जैसा होता है, जबकि दूसरों को वह एक केन्द्रीय स्रोत से प्रकट होते हुए चक्राकार प्रकाश जैसा लगता है।

सुव्यवस्थित ढंग से दीर्घ समय तक मनोमय कोश के स्तर पर किये गये अभ्यास विज्ञानमय कोश के द्वार खोल देते हैं। गहन ध्यान की अवस्था में अंतर्दर्शन, गंध, ध्वनि एवं दृश्य की अनुभूति विज्ञानमय कोश में प्राण के आविर्भाव का संकेत देती है। यद्यपि इस प्रकार की पहली अनुभूति से यह नहीं मान लेना चाहिए कि अभ्यास सफल हुए हैं, इसलिए अब इसे छोड़ देना

चाहिए। चूँकि कोश अत्यंत सुसंगति के साथ कार्य करने लगते हैं, इसलिए एक छोटा-सा प्रयास भी थोड़ी अनुभूति दिला सकता है। अत: साधक को अपने अभ्यास में दृढ़ता से लगे रहना चाहिए, जब तक समग्र उपलब्धि प्राप्त न हो जाये। वस्तुत: एक बार जब विज्ञानमय कोश का द्वार खुल जाता है तब साधक को सर्वाधिक प्रयास करने और एकाग्र होने की आवश्यकता होती है, क्योंकि उसका क्षेत्र इतना विशाल, मनमोहक और चित्ताकर्षक होता है कि वह उसमें अनन्तकाल तक भटक सकता है।

चूँकि विज्ञानमय कोश दीर्घ अभ्यासों के द्वारा धीरे-धीरे शुद्ध हो जाता है, इसलिए साधक को आनन्दमय कोश की झलक मिल सकती है – ऐसे क्षणों में सब कुछ प्रकाशमान दिखायी देता है। साधक एक प्रकाशमान शिवलिंगम् या ऐसी ही किसी वस्तु की झलक पाकर अभिभूत हो सकता है। यद्यपि यह भी एक सापेक्ष अनुभूति है, क्योंकि साधक आनन्दानुभूति में केवल तभी स्थित हो सकता है, जब उसका सम्पूर्ण मन परिष्कृत हो गया हो। इस स्तर पर अभ्यासों का उद्देश्य स्लेट (मन) को पूर्णत: स्वच्छ करना है। एक बार स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ने कहा था – "सम्भव है कि एक योगाभ्यासी का विज्ञानमय कोश विकसित हो गया हो, लेकिन जिसने योग के परिणाम प्राप्त कर लिए हैं, वह आनन्दमय कोश में स्थित रहता है।"

वास्तव में एक प्रबुद्ध योगी छठे कोश – आत्ममय कोश का अनुभव भी कर सकता है। यह ऐसी अवस्था है जहाँ आत्मा से ऐक्य की अनुभूति होती है और साधक को सम्पूर्ण जगत् सौन्दर्य, संतोष, आनन्द एवं सत्य से उत्पन्न हुआ प्रतीत होने लगता है। आत्ममय कोश में स्थित व्यक्ति को सिद्ध के रूप में जाना जाता है।

चक्र – ऊर्जा स्त्रोत

प्राणिक शरीर को चक्रों से ऊर्जा प्राप्त होती है। ये चक्र शरीर के अन्दर ऊर्जा के सूक्ष्म किन्तु शक्तिशाली स्त्रोत होते हैं। ये ब्रह्माण्डीय प्राण को ग्रहण कर उसे संरक्षित रखते और एक ट्रांसफॉर्मर की भाँति ऊर्जा के स्तर को कम कर देते हैं ताकि शरीर के विभिन्न अवयव एवं भाग उसका उपयोग कर सकें। ये चेतना की उच्च क्षमताओं और आयामों को प्रकाशित करने के लिए स्विच की तरह कार्य करते हैं। चक्रों की खोज भारत और विश्व के योगियों, ऋषियों तथा विभिन्न परम्पराओं के संतों द्वारा की गयी है। इन्हें शरीर को भौतिक रूप से चीर कर नहीं, बल्कि आत्मदर्शन के द्वारा देखा गया है। इन केन्द्रों के ज्ञान द्वारा कुण्डलिनी योग के अद्भुत विज्ञान का विकास हुआ, जो चक्रों के जागरण से सम्बद्ध है।

मेरुदण्ड में स्थित छः मुख्य चक्र इस प्रकार हैं – मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि एवं आज्ञा। यद्यपि ये चक्र सूक्ष्म शरीर में स्थित होते हैं, फिर भी ये स्थूल शरीर के स्नायु जालों के समरूप होते हैं। इन छः केन्द्रों के अतिरिक्त जागरण के दो अन्य केन्द्र भी होते हैं – बिन्दु और सहस्त्रार, जिनका बोध चेतना की पर्याप्त रूप से विकसित अवस्था में ही होता है।

प्रत्येक चक्र एक विशेष गति एवं वेग से स्पन्दित होता है। ऊर्जा परिपथ में निम्नतम बिन्दु पर स्थित चक्र निम्न आवृत्ति के साथ कार्य करते हैं। वे स्थूल होते हैं और सजगता की स्थूल अवस्था उत्पन्न करते हैं। परिपथ के शीर्ष पर स्थित चक्र उच्च आवृत्ति पर कार्य करते हैं और वे मेधा एवं सजगता की सूक्ष्म अवस्था के लिए उत्तरदायी होते हैं। योग, विशेषकर हठयोग एवं क्रियायोग की विभिन्न पद्धतियाँ, चक्रों को एक-एक कर समग्र रूप से शुद्ध, पुनर्सन्तुलित एवं जाग्रत करती हैं। जब ऐसे अभ्यासों के द्वारा चक्रों को सही

ढंग से तैयार कर दिया जाता है तब प्राणिक स्तर उच्च एवं अपेक्षाकृत स्थिर हो जाता है, साथ ही प्राण के जागरण और संचरण की अनुभूति में कम कठिनाई होती है।

मूलाधार चक्र

मूलाधार मूल चक्र है और आदि शक्ति, कुण्डलिनी का निवास है। दर्शन शास्त्र की भाषा में मूलाधार का अभिप्राय मूल प्रकृति से है, जो भौतिक प्रकृति का अतीन्द्रिय आधार है। इस ब्रह्माण्ड की सभी वस्तुओं एवं आकृतियों का निश्चित आधार होता है, जहाँ से उनका विकास होता है और विखण्डन के बाद वे उसी में विलीन हो जाती हैं। यह आधार ही मूल प्रकृति कहलाता है जो सारे विकास का मूल स्रोत है। इस प्रकार मूल प्रकृति के रूप में मूलाधार इस जगत् में नाम-रूप के साथ उत्पन्न हुई हर वस्तु के लिए उत्तरदायी होता है।

प्राणिक विज्ञान में मूलाधार प्राण की उत्पत्ति का स्रोत है। प्राण का जागरण मूलाधार में होता है और पिंगला नाड़ी के द्वारा मेरुदण्ड में आरोहण करता है। पिंगला केवल एक मार्ग है; ऊर्जा मूलाधार से आती है। यह चक्र आज्ञा चक्र को जाग्रत करने का स्विच भी है। मूलाधार में प्राण के जागरण के बिना आज्ञा में तदनुरूप जागरण नहीं हो सकता। अत: मूलाधार एवं आज्ञा में सम्बन्ध होना आवश्यक है। मूलाधार उत्पादक और आज्ञा वितरक है।

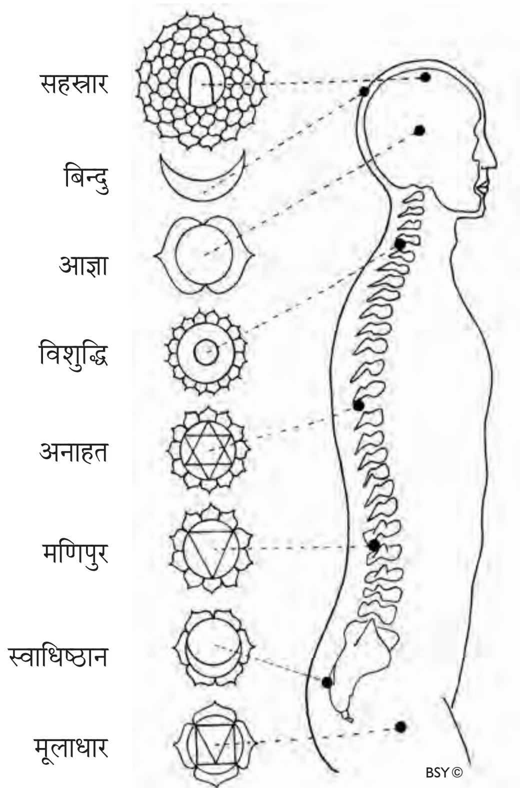
पुरुषों में मूलाधार की स्थिति जननांग और गुदा के बीच लगभग दो सेन्टीमीटर अन्दर की ओर होती है। स्त्रियों में यह गर्भाशय ग्रीवा के पीछे, योनि एवं गर्भाशय के बीच स्थित होता है। मूलाधार ही ब्रह्म ग्रंथि का स्थान है। जब तक यह ग्रंथि यथावत् रहती है तब तक इस क्षेत्र में स्थित ऊर्जा अवरुद्ध रहती है। जिस क्षण यह ग्रंथि खुल जाती है, प्राणशक्ति जाग उठती है। असीम ऊर्जा और आध्यात्मिक अनुभूतियाँ मूलाधार से उत्पन्न होने लगती हैं।

मूलाधार अन्नमय कोश एवं पृथ्वी तत्त्व से सम्बद्ध है। मनोविज्ञान की भाषा में मूलाधार अचेतन मन से सम्बद्ध होता है जहाँ आदिम तथा जड़ जमाई हुई सहज वृत्तियाँ और भय स्थित होते हैं। इस प्रकार यह एक साथ ही नरक और स्वर्ग; निम्न एवं उच्च जीवन का द्वार है।

ध्यान की स्थिति में मूलाधार चक्र को चार पंखुड़ियों वाले गहरे लाल कमल के रूप में देखा जा सकता है। इस क्षेत्र में विद्युत स्फुलिंग से प्रकाश कणों के उत्सर्जित होने के कारण ध्यान में लाल पंखुड़ियाँ दिखती हैं। कमल

की चार पंखुड़ियों की आकृति उत्सर्जन की सापेक्ष निकटता के कारण बनती है। इस प्रकार चक्रों को कमलों के नाम से भी जाना जाता है। प्रत्येक चक्र में पंखुड़ियों की संख्या भिन्न होती है, जो उस क्षेत्र विशेष में प्राणिक तीव्रता के स्तर की द्योतक होती है। मूलाधार का बीज मंत्र 'लं' है।

चक्रों की स्थिति



स्वाधिष्ठान चक्र

स्वाधिष्ठान का अर्थ होता है 'स्वयं का आवास'। यह मूलाधार के अत्यन्त निकट, अनुत्रिक पर स्थित होता है और प्राणशक्ति के जागरण के लिए उत्तरदायी होता है। इसमें सभी संस्कार एवं स्मृतियाँ संगृहीत रहती हैं, जिन्हें मानव अस्तित्व का आधार माना जाता है। इसलिए इसके कारण कार्मिक

अवरोध उत्पन्न हो जाता है, जिससे जाग्रत प्राण को इस क्षेत्र के पार जाने में कठिनाई होती है।

मनोविज्ञान के अनुसार स्वाधिष्ठान अवचेतन मन से सम्बद्ध होता है और उनींदेपन एवं नींद को प्रभावित करता है। इसका सम्बन्ध जननांगों और स्वाद की अनुभूति से भी होता है। जब यह चक्र सक्रिय हो जाता है तब भोजन एवं यौन सुख की चाह बढ़ जाती है। इन इच्छाओं के कारण इस स्तर पर प्राण का जागरण अवरुद्ध हो सकता है। इस चक्र के पार जाने के लिए इच्छाशक्ति को विकसित करना आवश्यक है।

तीन गुणों के संदर्भ में मूलाधार और स्वाधिष्ठान मुख्यतया तमस, मन्दता एवं अज्ञान से प्रभावित रहते हैं। स्वाधिष्ठान का सम्बन्ध प्राणमय कोश एवं जल तत्त्व से रहता है। छः सिंदूरी पंखुड़ियों वाला कमल का फूल इसका प्रतीक है। इस चक्र का बीज मंत्र 'वं' है।

मणिपुर

मणिपुर का शाब्दिक अर्थ 'रत्नों की पुरी' होता है। यह नाभि के पीछे मेरुदण्ड में स्थित होता है। चूँकि यह प्राण का भण्डार होता है इसलिए प्राणविद्या में सफलता के लिए इसका जागरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस चक्र का सम्बन्ध ऊष्मा, जीवनी शक्ति, गतिशीलता, उत्पादन एवं परिरक्षण से होता है। प्रायः इसकी तुलना चमकते हुए सूर्य के गोले से की जाती है, जिसके बिना जीवन सम्भव ही नहीं है। जिस प्रकार सूर्य प्रकाश और ऊर्जा का विकिरण करता रहता है, उसी प्रकार मणिपुर समस्त शरीर में प्राणिक ऊर्जा का विकिरण तथा वितरण कर जीवन की प्रक्रियाओं को नियमित और अनुप्राणित करता रहता है।

मणिपुर मुख्यतः रजस, अर्थात् क्रियाशीलता, गतिशीलता, सामर्थ्य एवं इच्छाशक्ति से प्रभावित होता है। इसका सम्बन्ध प्राणमय कोश से है और इसका तत्त्व अग्नि है। इसका प्रतीक दस पंखुड़ियों वाला चटकीला पीला कमल है। इसका बीज मंत्र 'रं' है।

अनाहत चक्र

अनाहत का अर्थ होता है, जो आघात से उत्पन्न न हुआ हो। यह अनहद नाद केवल ध्यान की उच्च अवस्था में ही सुनाई देता है। यह अनहद ध्वनि है, क्योंकि यह किसी बाह्य घर्षण से उत्पन्न नहीं होती है, न तो इसे कान सुन

सकते हैं, न ही मन या आत्मा। यह अतीन्द्रिय ध्वनि है, जिसकी अनुभूति केवल विशुद्ध चेतना को होती है।

अनाहत हृदय केन्द्र है। यह शुद्ध भावनाओं को जगाता है। जिसका अनाहत विकसित होता है, वह सामान्यत: दूसरों की भावनाओं के प्रति अत्यन्त संवेदनशील होता है। इस चक्र का सम्बन्ध स्पर्शानुभूति से होता है और इसके जाग्रत होने पर दूसरों को या तो स्पर्श से या ऊर्जा के विकिरण द्वारा स्वस्थ किया जा सकता है। जो व्यक्ति आश्चर्यजनक ढंग से दूसरों को रोगमुक्त करते हैं, वे अनाहत चक्र के माध्यम से ही ऐसा कर पाते हैं।

हृदय-केन्द्र दिव्य प्रेम का आसन होता है। यहीं पर भावनाओं का दिशान्तर भक्ति के रूप में होता है। विष्णु ग्रंथि, जो भावनात्मक आसक्ति की द्योतक है, यहीं स्थित होती है। जब यह ग्रंथि खुल जाती है तब व्यक्ति सभी स्वार्थपूर्ण, अहंकारपूर्ण और भावनात्मक आसक्तियों से मुक्त हो जाता है तथा उसे मानसिक एवं भावनात्मक नियन्त्रण, संतुलन और शांति प्राप्त होती है।

अनाहत का सम्बन्ध मन एवं भावनाओं को नियन्त्रित करने वाले मनोमय कोश से होता है। इस स्तर पर व्यक्ति प्रारब्ध से मुक्त होकर अपनी नियति को नियन्त्रित करने लगता है। अत: इच्छाओं की पूर्ति करने वाले कल्पतरु का प्रतीक भी इस चक्र पर मिलता है। जब यह वृक्ष फलने लगता है तब जो भी इच्छा की जाये वह पूरी होती है। अनाहत हृदय के पीछे मेरुदण्ड में स्थित होता है। इसका तत्त्व वायु है और प्रतीक बारह दल वाला नीला कमल है। इसका बीज मंत्र 'यं' है।

विशुद्धि चक्र

विशुद्धि शुद्धिकरण का केन्द्र है और इसे तरुणाई का स्रोत माना जाता है। तंत्र दर्शन के अनुसार इसी चक्र में बिन्दु से अमृत टपकता है, जिससे जीवनीशक्ति, स्वास्थ्य और दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है। योग साहित्यों में बताया गया है कि इस चक्र के जाग्रत होने पर सभी रोग दूर हो जाते हैं, यहाँ तक कि वृद्ध व्यक्ति पुन: युवा हो सकता है।

जब विशुद्धि चक्र सक्रिय हो जाता है तब गले में शीतल, अमृत की मधुर बूँदों के टपकने से नैसर्गिक आनन्द से परिपूर्ण मादकता का अनुभव होता है। आन्तरिक और बाह्य, दोनों प्रकार के विषों को निष्प्रभावी कर देने की क्षमता भी विशुद्धि में होती है। जीवन की सभी विषैली एवं नकारात्मक

अनुभूतियों का अवशोषण कर उन्हें आनन्द की अवस्था में परिणत कर देता है।

विशुद्धि का सम्बन्ध विज्ञानमय कोश से है, जहाँ उच्च मानसिक विकास की प्रक्रिया आरंभ होती है। यह ध्वनि तरंगों को ग्रहण करने का केन्द्र है और दूसरों के विचारों को, चाहे पास हों या दूर, ट्रांजिस्टर रेडियो की तरह ग्रहण करता है। जब विशुद्धि चक्र परिष्कृत हो जाता है तब न केवल कानों से, बल्कि मन के द्वारा सुनने की क्षमता भी अत्यन्त तीव्र हो जाती है।

विशुद्धि मेरुदण्ड में गले के पीछे स्थित होता है और थायरॉयड ग्रंथि से सम्बद्ध होता है। इसका तत्त्व आकाश है। विशुद्धि पर ध्यान करने पर मन विचारों से मुक्त होकर आकाश के समान शुद्ध और खाली हो जाता है। विशुद्धि को सोलह पंखुड़ियों वाले बैगनी कमल के रूप में देखा जाता है। इसका बीज मंत्र 'हं' है।

आज्ञा चक्र

आज्ञा प्रबोधक केन्द्र है। इसे गुरु चक्र के नाम से भी जाना जाता है। यह ऐसा संगम स्थल है, जहाँ तीन प्रमुख नाड़ियाँ इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना चेतना की एक धारा में समाहित होकर सहस्रार तक प्रवाहित होती हैं। गहन ध्यान में, जब सारी इन्द्रियों का प्रत्याहार हो जाता है, तब साधक शून्य के आयाम में प्रवेश करता है, जहाँ गुरु या उच्च चेतना साधक को आज्ञा से सहस्रार तक मार्गदर्शन करने के लिए इस चक्र के माध्यम से आदेश निर्गत करती है।

आज्ञा मन का केन्द्र है और सजगता के उच्च स्तर का प्रतिनिधित्व करता है। इसे शिव का नेत्र, तीसरा नेत्र या प्रज्ञा चक्षु भी कहते हैं, जो बाहर की अपेक्षा अंदर की ओर देखता है। इसे प्राय: दिव्य चक्षु या ज्ञान चक्षु भी कहा जाता है, क्योंकि इसी के द्वारा साधक को अपने अस्तित्व में अन्तर्निहित प्रकृति का बोध होता और अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है। आज्ञा ही वह प्रवेश-द्वार है जिससे होकर साधक आत्मिक या सूक्ष्म आयाम में जाता है। जब इस चक्र का विकास होता है तब साधक को अतीन्द्रिय शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। इसी स्तर पर मन से मन का सीधा सम्बन्ध स्थापित होता है।

आज्ञा में ही रुद्र ग्रंथि स्थित होती है। यह ग्रंथि आत्मिक व्यक्तित्व और आज्ञा चक्र के जागरण से प्राप्त हुई सिद्धियों के प्रति लगाव का प्रतीक होती है। जब तक अद्भुत आत्मिक घटनाओं के प्रति आसक्ति समाप्त नहीं होती और

यह ग्रंथि खुल नहीं जाती, तब तक यह साधक के आध्यात्मिक विकास को निश्चित रूप से अवरुद्ध रखती है। आज्ञा को प्रेरित करने वाला बिन्दु भ्रूमध्य में स्थित होता है। भ्रूमध्य ध्यान, एकाग्रता एवं मानस-दर्शन के अभ्यास के लिए महत्त्वपूर्ण बिन्दु है।

प्राण विद्या में सफलता के लिए आज्ञा का विकास होना अत्यन्त आवश्यक है। जब तक यह कुछ अंश तक विकसित नहीं हो जाता है तब तक प्रकाश के रूप में प्राण की अनुभूति नहीं हो सकती। प्रकाश का प्रथम दर्शन प्रायः आज्ञा या भ्रूमध्य, या चिदाकाश में ही होता है जो सीधे आज्ञा से जुड़ा होता है। प्राण विद्या के अभ्यास में प्राण के वितरण के लिए आज्ञा नियंत्रक केन्द्र का काम करता है। यदि आज्ञा चक्र पर प्रकाश का दर्शन पर्याप्त रूप से होने लगा हो, तो प्राण के उत्थान एवं पूरे शरीर में उसके संचरण के मानस-दर्शन में कोई कठिनाई नहीं होगी। अन्यथा, वास्तविक अनुभव के विकसित होने तक कल्पना का ही सहारा लेना पड़ेगा।

आज्ञा चक्र का सम्बन्ध विज्ञानमय कोश से होता है। यह मेरुदण्ड के शीर्ष पर मध्य-मस्तिष्क में स्थित होता है और पीनियल ग्रंथि के समरूप होता है। इसका तत्त्व मन है। इसी बिन्दु पर मन स्थूल से सूक्ष्म में और बहिर्मुख से अंतर्मुख रूप में परिवर्तित हो जाता है। दो दल वाला रजत कमल आज्ञा चक्र का प्रतीक है। इसका बीज मंत्र 'ॐ' है।

बिन्दु

यह सृजन का वह बिन्दु है जहाँ प्रथमतः एक अनेक में विभक्त होता है। यही वह परम स्रोत है जहाँ से सभी वस्तुएँ प्रकट होती हैं और पुनः इसी में विलीन भी हो जाती हैं। बिन्दु में ही ब्रह्माण्ड की असंख्य वस्तुओं के विकास की सम्भावना, सृष्टि की रूपरेखा छिपी रहती है। बिन्दु शून्य में प्रवेश करने का द्वार है। यह सिर के पीछे, उस स्थान पर स्थित होता है जहाँ ब्राह्मण शिखा रखते हैं।

बिन्दु का प्रतीक अर्द्धचन्द्र के मध्य अमृत की एक श्वेत बूँद है। तंत्र शास्त्रों में मस्तिष्क के उच्च केन्द्र में एक छोटे गर्त का वर्णन है जहाँ तरल पदार्थ का सूक्ष्म स्राव होता रहता है। उस सूक्ष्म स्राव के बीच एक छोटे बिन्दु जैसा उभार है, जो झील के बीच एक द्वीप जैसा प्रतीत होता है। मनो-शारीरिक रूपरेखा के अनुसार यही नन्हा आकार बिन्दु है।

बिन्दु का चन्द्रमा प्राणदायक अमृत उत्पन्न करता है और मणिपुर का सूर्य इसका उपभोग करता है। इसका तात्पर्य यह है कि सामान्य जीवन में बिन्दु से उत्पन्न होने वाले अमृत की बूँदें झरकर मणिपुर में जाती हैं, जहाँ अग्नि तत्त्व उसका भक्षण कर लेता है। इस प्रक्रिया के कारण मनुष्य जरा, रोग और मृत्यु, इन तीन व्याधियों से आक्रान्त होता है। योग एवं तंत्र ने ऐसी पद्धतियाँ बतायी हैं जिनके द्वारा मनुष्य इस प्रक्रिया को उलट सकता है, ताकि अमृत को विशुद्धि में ही रोक कर रखा जा सके, या मणिपुर से विशुद्धि में और फिर बिन्दु में वापस भेजा जा सके। इस विधि से सिद्ध योगियों ने अमरत्व प्राप्त किया है।

सृष्टि की प्रथम अभिव्यक्ति नाद या ध्वनि के रूप में हुई। बिन्दु से भी मूल नाद की उत्पत्ति होती है। बिन्दु का सम्बन्ध आनन्दमय कोश से है। जब बिन्दु जाग्रत होता है तब ॐ की अनुभवातीत ध्वनि सुनाई पड़ती है। प्राण विद्या एवं योग की उच्च क्रियाओं के लिए बिन्दु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

सहस्रार

सहस्रार सर्वोच्च चेतना का स्थान है। यह सिर के शीर्ष पर स्थित होता है। वास्तव में यह चक्र नहीं है, क्योंकि यह चित्त के क्षेत्र से परे है। सहस्रार मानव विकास की समग्रता एवं पूर्णता का सर्वोच्च शिखर है। यह ब्रह्माण्डीय चेतना के ब्रह्माण्डीय प्राण में विलय का परिणाम है। ब्रह्माण्डीय प्राण की अनुभूति करना ही प्राण विद्या का उद्देश्य है। एक बार महाप्राण की अनुभूति हो जाने के बाद अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। एक विचार, मुद्रा, शब्द या दृष्टिमात्र से ऊर्जा का संचरण स्वत: होने लगता है।

सहस्रार मूलाधार से आज्ञा तक के सभी चक्रों के जागरण को नियन्त्रित करने की मुख्य कुंजी है। अन्य चक्र तो केवल स्विच हैं – उनकी अंत:शक्ति तो सहस्रार में स्थित होती है। जब कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार में पहुँच जाती है तब आत्मज्ञान प्राप्त होता है, साधक समाधि की स्थिति में चला जाता है। इस क्षण वैयक्तिक चेतना समाप्त हो जाती है और ब्रह्माण्डीय चेतना का उदय होता है। सहस्रार का निस्सीम विस्तार एक विराट् कान्तिमय गुंबद के समान होता है। इसका दर्शन एक सहस्र दल कमल के रूप में होता है, जो सिर के शीर्ष से सभी दिशाओं से अनन्त की ओर प्रस्फुटित हो रहा है। सहस्रार का सम्बन्ध आनन्दमय कोश से होता है।

नाड़ियाँ – प्राण के मार्ग

उल्लास के क्षणों में शरीर में होने वाले ऊर्जा के वेगपूर्ण प्रवाह की अनुभूति की कल्पना करें। अब उन मार्गों का अनुभव करें जिनके द्वारा ऊर्जा इन अनुभूतियों के दौरान संचलन करती है। प्रारम्भ में यह अबोधगम्य प्रतीत हो सकता है, लेकिन जब एकाग्रता गहन हो जाती है तब उन प्रवाहों का पता लगाया जा सकता है। आधुनिक विज्ञान ने इस प्रक्रिया की व्याख्या स्नायु आवेगों के रूप में की है, लेकिन प्राचीन ऋषियों ने इसे शरीर के अंदर अतीन्द्रिय मार्गों से प्रवाहित होने वाली ऊर्जा एवं चेतना के रूप में देखा, जिन्हें नाड़ियों का नाम दिया गया। ये नाड़ियाँ ऊर्जा तंत्र का निर्माण करती हैं। इस अर्थ में नाड़ियाँ विद्युत, रेडियो तरंग और लेज़र बीम के सूक्ष्म प्रवाह के समान ही ऊर्जा का सूक्ष्म प्रवाह हैं। नाड़ियाँ प्राणमय शरीर से सम्बद्ध होती हैं। इन्हें भौतिक शरीर से सम्बद्ध स्नायु नहीं समझना चाहिए।

नाड़ियाँ प्राणिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक धाराओं की पथिकाएँ हैं, जो समस्त भौतिक शरीर में 'ऊर्जा-तंत्र' का निर्माण करती हैं। वे अपने विस्तृत तंत्र के द्वारा प्राण को हर दिशा में प्रत्येक कोशिका और अंग तक ले जाती हैं। नाड़ियाँ शरीर के अंदर भौतिक, परिमेय या विच्छेद्य संरचना नहीं हैं, बल्कि चेतना एवं जीवन का पोषण करने वाली ऊर्जा की वाहिकाएँ हैं। जैसा कि योगियों ने वर्णन किया है, चेतना की उच्च अवस्थाओं में नाड़ियों को ऊर्जा के प्रवाह के रूप में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। आत्मिक स्तर पर प्रकाश, रंग और ध्वनि के सुस्पष्ट मार्गों के रूप में उनका अनुभव किया जा सकता है। इसके साथ ही नाड़ियाँ सभी शारीरिक क्रियाओं एवं प्रक्रियाओं का आधार तो होती ही हैं, उनमें प्रतिबिम्बित भी होती हैं।

नाड़ियों के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान किये गये हैं। डॉ. हिरोशी मोटोयामा ने इस अनुसन्धान का नेतृत्व किया। उन्होंने स्नायु तंत्र के आस-पास विद्युत चुम्बकीय धारा का स्थिर वोल्टेज प्रवाहित होता हुआ पाया, जिसे उन्होंने नाड़ियों के अस्तित्व के प्रमाण के रूप में स्वीकार किया। नाड़ियों का जाल इतना सूक्ष्म और विस्तृत है कि उनकी सही संख्या के विषय में विभिन्न योग शास्त्रों में भी मतभेद हैं। गोरक्ष संहिता और हठयोग प्रदीपिका में 72,000 की संख्या का उल्लेख है; प्रपंचसार तंत्र में यह संख्या 300,000 है; जबकि शिव संहिता में कहा गया है कि नाभि से 350,000 नाड़ियाँ निकलती हैं।

मुख्य नाड़ियाँ

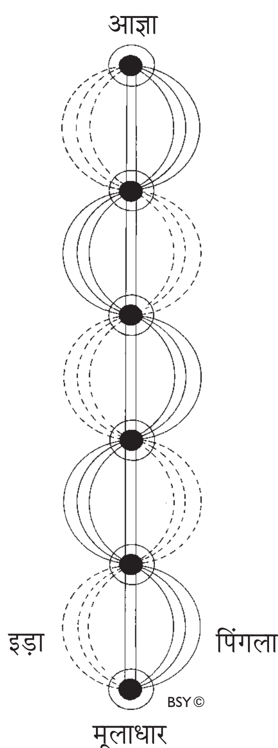
हजारों प्रमुख एवं गौण नाड़ियों में से बहत्तर को महत्त्वपूर्ण माना जाता है। उन बहत्तर में से दस मुख्य हैं। दस मुख्य नाड़ियों में से तीन सबसे महत्त्वपूर्ण हैं – इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना। ये तीन प्रमुख नाड़ियाँ मेरुदण्ड के अंदर स्थित होती हैं और प्रत्येक चक्र से होती हुई जाती हैं। इड़ा नाड़ी मानसिक, पिंगला नाड़ी प्राणिक तथा सुषुम्ना नाड़ी आध्यात्मिक प्रवाह है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना सम्पूर्ण प्राणिक तंत्र में ऊर्जा के वितरण की तीन मुख्य वाहिकाएँ हैं। अधिकतम प्राणिक आवेश इन्हीं के माध्यम से प्रवाहित होता है और सम्पूर्ण तंत्र पर इनका प्रभाव अविलम्ब पड़ता है। ये उच्च वोल्टेज वाली तारों के समान हैं, जिनके माध्यम से ऊर्जा मेरुदण्ड में स्थित चक्रों से अन्य सभी नाड़ियों तक प्रवाहित होती है।

इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के बाद सात उप-मुख्य नाड़ियों के अंतर्गत गान्धारी, हस्तिजिह्वा, यशस्विनी, पूषा, अलम्बुषा, कुहू और शंखिनी हैं। कुछ शास्त्रों में 19 मुख्य नाड़ियों का उल्लेख मिलता है, जो इस प्रकार हैं – जिह्वा, कूर्मा, पयस्विनी, सरस्वती, सौम्या, शूरा, वारुणी, विलम्भा एवं विश्वोदरी। हालाँकि साधक को वस्तुतः केवल इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना को ध्यान में रखना चाहिए, क्योंकि ये तीन नाड़ियाँ ही नाड़ी-तंत्र एवं समस्त शारीरिक प्रक्रियाओं को नियंत्रित करती हैं। प्राणायाम तथा प्राण विद्या में साधक मुख्यतः इन्हीं तीनों का उपयोग करता है। इन तीन मार्गों को भारत की तीन अत्यंत महत्त्वपूर्ण नदियों गंगा (इड़ा), यमुना (पिंगला) और सरस्वती (सुषुम्ना) के नाम से भी जाना जाता है, इनमें से तीसरी भूमिगत होकर प्रवाहित होती है। इन तीनों नदियों का जहाँ

संगम होता है उसे प्रयाग कहते हैं, जो उत्तर भारत के इलाहाबाद शहर के निकट स्थित है। प्राणिक शरीर में ये आज्ञा चक्र में आकर मिलती हैं। पिंगला को सूर्य और इड़ा को चन्द्र नाड़ी भी कहा जाता है। इड़ा और पिंगला काल का संकेत देती हैं, जबकि सुषुम्ना को काल-भक्षक कहा जाता है, क्योंकि यह कालहीनता या अनन्त की ओर ले जाती है।

नाड़ियों का स्थान

कुण्डलिनी योग के मतानुसार मूलाधार चक्र प्राणिक शरीर का मुख्य चक्र है जिससे नाड़ियाँ निकलती हैं। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना यहीं से निकलती हैं। इसके बाद इड़ा एवं पिंगला एकान्तरत: मेरुदण्ड को बायें से दाहिने कुण्डलित करती हुई प्रवाहित होती हैं, जबकि सुषुम्ना मध्य भाग से सीधे ऊपर की ओर जाती है। इड़ा बायें से निकलती है, पिंगला दाहिने से और सुषुम्ना बीच से होती हुई ऊपर प्रवाहित होती है।



पिंगला मूलाधार चक्र से निकलकर दाहिने घूम जाती है और स्वाधिष्ठान से होती हुई मणिपुर के बायें चली जाती है, उसके बाद अनाहत के दाहिने, विशुद्धि के बायें, मेरुदण्ड के शीर्ष पर स्थित आज्ञा के दाहिने और फिर सीधे सहस्त्रार में चली जाती है। इड़ा भी विपरीत दिशा से ऐसे ही मार्ग का अनुसरण करती है। जब पिंगला बायें जाती है, तब इड़ा दाहिने जाती है, और उनका प्रवाह इसी प्रकार चलता है (चित्र देखें)। जब इड़ा एवं पिंगला एक-दूसरे को प्रत्येक चक्र पर काटती हैं तब उनकी ऊर्जा-धाराएँ नाड़ी-तंत्र के माध्यम से सभी सम्बद्ध अंगों में चली जाती हैं। इस प्रकार नाड़ी-तंत्र इन दो विपरीत शक्तियों को प्रत्येक कोशिका तथा अंग तक ले जाता है।

इड़ा शरीर के बायें भाग को नियन्त्रित करती है, जबकि पिंगला दाहिने को। एक चुम्बक के उदाहरण से इसे समझाया जा

सकता है। यदि एक चुम्बक को बीच से दो टुकड़ों में काटा जाता है तो उनके दोनों सिरों पर विपरीत ध्रुवता आ जाती है। इसी प्रकार शरीर भी ध्रुवित है; पिंगला दाहिने भाग को और इड़ा बायें भाग को नियन्त्रित करती हैं। इड़ा और पिंगला की केन्द्रीय धुरी सुषुम्ना है। इड़ा एवं पिंगला के बीच से होकर प्रवाहित होने वाली यह नाड़ी योग का आध्यात्मिक मार्ग है। सुषुम्ना मेरुदण्ड के मध्य से ऊपर जाती हुई इड़ा और पिंगला से वहाँ मिलती है, जहाँ ये दोनों प्रत्येक चक्र पर एक-दूसरे को काटती हैं और विपरीत दिशा में आगे बढ़ जाती हैं। आज्ञा चक्र पर तीनों नाड़ियाँ आपस में मिल जाती हैं।

सुषुम्ना वह मार्ग है जिसके सहारे कुण्डलिनी ऊपर उठती है, और उच्च ज्ञान के क्रमिक विकास के आधार का निर्माण करती है। हालाँकि अधिकतर लोगों में यह मार्ग तब तक बन्द पड़ा रहता है जब तक विकास की उच्च अवस्था प्राप्त नहीं हो जाती है। सुषुम्ना की आंतरिक रचना तीन सूक्ष्म नाड़ियों से होती है। ये तब सक्रिय होती हैं जब सुषुम्ना जाग्रत होती है। सुषुम्ना के अंदर वज्र नाड़ी है, उसके अंदर चित्रा या चित्रिणी नाड़ी और केन्द्र में सूक्ष्मतम प्रवाह वाली ब्रह्म नाड़ी होती है। इसे ब्रह्म नाड़ी इसलिए कहा जाता है कि चेतना के उच्च केन्द्र सीधे इसी के माध्यम से सक्रिय होते हैं। जब कुण्डलिनी शक्ति इस नाड़ी से संचरण करती है तब अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ होती हैं।

कुछ अन्य प्रमुख नाड़ियों के स्थान इस प्रकार हैं –

1. गान्धारी बायीं आँख के कोने से निकलकर बायें पैर के अँगूठे तक जाती है। यह इड़ा की ओर स्थित है और उसे सहारा देती है। गान्धारी को बद्ध पद्मासन के द्वारा उत्प्रेरित किया जा सकता है।
2. हस्तिजिह्वा दायीं आँख से निकलकर बायें पैर के अँगूठे तक जाती है और ऊर्जा को शरीर के अधो भाग तक ले जाती और वहाँ से वापस लाती है। हस्तिजिह्वा एवं गान्धारी इड़ा को आधार प्रदान करती हैं और बायीं वाहिका का निर्माण करती हैं।
3. यशस्विनी दाहिने पैर के अँगूठे से बायें कान तक जाती है और पिंगला को सहारा देती है।
4. पूषा बायें पैर के अँगूठे से दाहिने कान तक प्रवाहित होती है। पूषा एवं यशस्विनी पिंगला को आधार प्रदान करती हैं और दोनों एक साथ मिलकर दाहिनी वाहिका का निर्माण करती हैं।
5. अलम्बुषा गुदा से प्रारम्भ होकर मुख में समाप्त होती है।

6. कुहू गले से प्रारम्भ होती और जननांगों में समाप्त होती है। प्रजनक तत्त्व इस नाड़ी के द्वारा सोम में परिवर्तित हो जाता है। वज्रोली के अभ्यास के द्वारा कुहू जाग्रत होती है।
7. शंखिनी गले में प्रारम्भ होती और गुदा में समाप्त हो जाती है। यह सुषुम्ना के बायीं ओर सरस्वती एवं गान्धारी के बीच प्रवाहित होती है। बस्ति के अभ्यास से शंखिनी सक्रिय होती है।
8. सरस्वती नाड़ी जिह्वा में स्थित होती है। जो लोग वक्तृत्व की प्रतिभा से सम्पन्न होते हैं, उनकी सरस्वती नाड़ी जाग्रत होती है।
9. पयस्विनी दाहिने भाग में पूषा एवं सरस्वती के बीच प्रवाहित होती है और पिंगला की सहायिका है। इसका अंतिम छोर दाहिना कान है। कनफटा योगी कहा जाने वाला साधुओं का सम्प्रदाय कानों में बड़े-बड़े कुण्डल पहनकर इस नाड़ी को जाग्रत करता है।
10. वारुणी कुहू के साथ मिलकर अधो श्रोणि-प्रदेश को जीव-विष से मुक्त करती है। इसका अंतिम सिरा गुदा में होता है और बस्ति तथा अन्य क्रियाओं द्वारा इसे जाग्रत किया जाता है।
11. विश्वोदरी नाभि प्रदेश में कुहू तथा हस्तिजिह्वा के बीच प्रवाहित होती है। इसका सम्बन्ध अधिवृक्क और अग्न्याशय से होता है। इसे नौली क्रिया एवं उड्डीयान बन्ध के द्वारा जाग्रत किया जाता है। यह पूरे शरीर में प्राण के प्रवाह को सुधारती और सुषुम्ना के साथ प्राण के आरोहण में मदद करती है।

इड़ा-पिंगला की ध्रुवता का सिद्धान्त

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड दो शक्तियों, चेतना एवं ऊर्जा से बना है, जो एक-दूसरे पर परस्पर निर्भर तो हैं ही, एक-दूसरे के विपरीत भी हैं, साथ ही एक-दूसरे की पूरक भी। ध्रुवता के सिद्धान्त के कारण यह ब्रह्माण्ड एक ऐसी संरचना के समान है, जिसमें विभिन्न शक्तियाँ एक-दूसरे को आकृष्ट एवं प्रेरित कर रही हैं। जब हम प्रकृति, शरीर और मन के अंदर झाँकते हैं, तो यह ध्रुवता प्रकाश और अंधकार, सकारात्मक और नकारात्मक, पुरुष और स्त्री इत्यादि के रूप में दिखाई देती है। प्रत्येक स्तर पर ये दो महान् सिद्धान्त या शक्तियाँ ब्रह्माण्ड की रचना करने और उसे प्रेरित करने हेतु कार्यरत रहती हैं।

जब ब्रह्माण्ड के प्राण एवं चेतना की यह ध्रुवता मानव शरीर की सूक्ष्म ब्रह्माण्डीय इकाई में प्रकट होती है, तब यह चित्त शक्ति तथा प्राण शक्ति का

रूप ले लेती है, जो इड़ा नाड़ी और पिंगला नाड़ी के समरूप होती हैं। शरीर के अंदर मानसिक तथा शारीरिक प्रवाह प्राणी में स्थूल से सूक्ष्म तक सभी स्तरों पर कार्य करते हैं। ये प्रत्येक बोध, क्रिया तथा अनुभूति को आधार प्रदान करते हैं। मानवीय वातावरण के अंदर ये दो भिन्न शक्तियाँ मानव अस्तित्व के उतार-चढ़ाव का प्रतिनिधित्व करती हैं।

पिंगला धनात्मक ध्रुवत्व का प्रतिनिधित्व करती है और यह सूर्य-शक्ति है। शारीरिक सामर्थ्य, गत्यात्मक क्रियाशीलता और तनाव पिंगला शक्ति के गुण हैं। यह स्वभाव से उष्ण है और अनुकम्पी स्नायु तंत्र के समरूप है। इड़ा ऋणात्मक ध्रुवत्व का प्रतिनिधित्व करती है और यह चन्द्र-शक्ति है। यह शीतल स्वभाव की है और परानुकम्पी स्नायु तंत्र के समरूप है। विश्रांति, सहनशीलता और स्थानबद्ध क्रियाशीलता इड़ा के गुण हैं। 'हठ' शब्द दो मंत्रों से बना है, जो इड़ा तथा पिंगला के समरूप हैं। 'ह' पिंगला नाड़ी और 'ठ' या 'क्षं' इड़ा नाड़ी से सम्बद्ध हैं। आज्ञा चक्र की दो पंखुड़ियों पर इन प्रतीकों को देखा जा सकता है।

पिंगला, जो बहिर्मुख करने वाली शक्ति है, सामान्यत: दिन के समय और विशेषकर शारीरिक और मानसिक उद्यम करने तथा बाह्य पारस्परिक क्रिया और मनोयोग में प्रबल रहती है। इड़ा भी उस समय प्रवाहित होती है, लेकिन वह पिंगला के प्रवाह की अपेक्षा क्षीण रहती है। दिन के समय की पिंगला की प्रधानता को संतुलित करने के लिए प्राय: रात्रि के समय इड़ा प्रबल रहती है। इड़ा, जो अंतर्मुख करने वाली शक्ति है, आराम करने, पढ़ने, सोचने, टेलीविजन देखने या सोने के समय सक्रिय रहती है।

नासिकाओं के प्रवाह के साथ सम्बन्ध – इड़ा और पिंगला की प्रधानता का सीधा सम्बन्ध नासिकाओं में श्वास के प्रवाह से होता है। यदि हम किसी क्षण श्वास के प्रवाह को जाँचें, तो पायेंगे कि एक नासिका में दूसरी की अपेक्षा प्रवाह प्रबल है। यदि बायीं नासिका में प्रवाह प्रबल हो, तो समझना चाहिए कि इड़ा की प्रधानता है; जब दाहिनी नासिका में प्रवाह प्रबल हो, तो यह पिंगला की प्रधानता का संकेत है। जब हम उनींदे होते हैं, तब श्वास बायीं नासिका से प्रवाहित होती है। जब हम शारीरिक क्रिया कर रहे होते हैं, तब दायीं नासिका में श्वास प्रबलता के साथ प्रवाहित होती रहती है। इस तथ्य को जानने के बाद योगियों ने प्राणिक शरीर की तीव्र अनुभूति के लिए इड़ा एवं पिंगला (और क्रमश: सुषुम्ना) के प्रवाहों को नियन्त्रित करने की श्वसन विधियों का आविष्कार किया।

दायें और बायें मस्तिष्क के साथ सम्बन्ध – मस्तिष्क की विशिष्ट क्रियाओं का सम्बन्ध भी इड़ा एवं पिंगला की क्रियाओं से है। मस्तिष्क दायें तथा बायें, दो समान गोलार्द्धों में बँटा हुआ होता है। दायाँ गोलार्द्ध शरीर के बायें भाग को और बायाँ गोलार्द्ध दाहिने भाग को नियन्त्रित करता है। इड़ा दायें गोलार्द्ध से और पिंगला बायें गोलार्द्ध से जुड़ी होती है। दायाँ गोलार्द्ध सूचनाओं को विस्तृत एवं समग्र रूप से तैयार करता है। यह व्यक्ति और वस्तु के बीच की दूरी और समय का निर्धारण करता है। सृष्टि के कम्पनशील क्षेत्र के प्रति और बाह्य इंद्रियों द्वारा प्राप्त अतिसूक्ष्म या अमूर्त अनुभवों के प्रति यह विशेष रूप से संवेदनशील होता है। इस प्रकार यह रचनात्मक, कलात्मक एवं संगीतात्मक क्षमताओं को प्रेरित करता है और इसका सम्बन्ध मानसिक, आत्मिक तथा आतीन्द्रिय बोध से होता है। इसके विपरीत बायाँ गोलार्द्ध, जिसका सम्बन्ध पिंगला से है, सूचनाओं को क्रमिक, रेखीय और तार्किक आधार पर तैयार करता है। यह विवेकपूर्ण, विश्लेषणात्मक एवं गणित सम्बन्धी क्षमताओं के लिए उत्तरदायी होता है। इस प्रकार नाड़ियाँ और मस्तिष्क के गोलार्द्ध हमारे दैनिक जीवन की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं को निर्धारित तथा प्रेरित करते हैं।

कोशों से सम्बन्ध – इड़ा वह सूक्ष्म ऊर्जा है जो मनोमय तथा विज्ञानमय कोशों को नियन्त्रित करती है, जबकि पिंगला अन्नमय एवं आनन्दमय कोशों को नियन्त्रित करती है। प्राणमय कोश में इड़ा और पिंगला दोनों ओर से आकर मिलती हैं। विचार एवं मानसिक अनुभूतियाँ, जो मनोमय कोश तक सीमित रहती हैं, उन्हें तब तक ही इड़ा की क्रियाविधि कहा जाता है जब तक वे शारीरिक क्रियाओं द्वारा प्रकट नहीं होती हैं। इच्छाओं, विचारों, भावनाओं तथा अनुभवों को इड़ा शक्ति के द्वारा रूप और दिशा प्राप्त होती है। साधना द्वारा प्राप्त आत्मिक एवं सहज ज्ञान का वास स्थान, विज्ञानमय कोश भी मानसिक शक्ति, इड़ा का ही एक पक्ष है। अतीन्द्रिय शक्तियों, जैसे, अतीन्द्रिय-श्रवण और अतीन्द्रिय-दृष्टि या दूरसंवेदन का विकास भी इड़ा के क्षेत्र में ही होता है। जीवनी-शक्ति, पिंगला के क्षेत्र का अनुभव अन्नमय कोश में शारीरिक शक्ति के रूप में होता है। पिंगला की जागृति के परिणामस्वरूप सभी संस्कारों एवं कर्मों का क्षय हो जाने के बाद ध्यान की गहनतम अवस्था में भी आनन्दमय कोश में सजगता बनी रहती है। समाधि की अवस्था में सजगता पिंगला शक्ति के कारण होती है; यह प्राण का सूक्ष्मतम आयाम है।

सुषुम्ना – निष्क्रिय नाड़ी

जब इड़ा एवं पिंगला शक्तियाँ संतुलित हो जाती हैं तब सुषुम्ना नाड़ी सक्रिय हो जाती है। यह एक तथ्य है कि जब दो विपरीत शक्तियाँ समान और संतुलित रहती हैं तब एक तीसरी शक्ति उत्पन्न हो जाती है। जब एक खुरदुरी सतह पर माचिस की तीली को रगड़ा जाता है तब अग्नि उत्पन्न होती है। धनात्मक और ऋणात्मक धाराओं को एक साथ प्रवाहित कर किसी यंत्र को चलाया जा सकता है। इसी प्रकार जब शरीर और मन संयुक्त हो जाते हैं तब एक तीसरी शक्ति जाग उठती है। इस शक्ति को आध्यात्मिक ऊर्जा, सुषुम्ना कहते हैं। इन तीनों शक्तियों की कार्यविधि को एक ऐसे विद्युत् चुम्बकीय परिपथ के रूप में समझा जा सकता है, जिसका उत्तर ध्रुव आज्ञा हो और दक्षिण ध्रुव मूलाधार। इड़ा ऋणात्मक आवेश है और पिंगला धनात्मक आवेश, जबकि सुषुम्ना निष्क्रिय है।

इड़ा तथा पिंगला के हर कटान-बिन्दु पर ऊर्जा केन्द्रित हो जाती है, और क्षैतिज तल पर स्पन्दनशील-स्वरूप की रचना करती है। ये शक्ति-पुंज ही चक्र हैं, जो शारीरिक और मानसिक गतिविधियों के अनुसार फैलते या सिकुड़ते हैं। जब इड़ा एवं पिंगला के बीच ऊर्जा की तीव्रता रहती है तब चक्र प्रकाश एवं ध्वनि के रूप में प्रकट होते हैं। सामान्य श्वसन में सीमित रूप से, लेकिन नाड़ी शोधन जैसे प्राणायाम के अभ्यास में और ध्यान के समय इसका पर्याप्त अनुभव होता है। सुषुम्ना उच्च ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का वहन करती है जबकि इड़ा एवं पिंगला मानसिक एवं शारीरिक ऊर्जा का वहन करती है। प्राणिक तथा मानसिक ऊर्जाएँ सीमित होती हैं, जबकि सुषुम्ना की ऊर्जा असीमित होती है।

जब सुषुम्ना सक्रिय रहती है तब श्वास एक साथ दोनों नासिकाओं से प्रवाहित होती है। सामान्यत: ऐसा कुछ मिनटों के लिए होता है जब श्वास की प्रधानता एक से दूसरी नासिका में बदलती है, यह परिवर्तन हर नब्बे मिनट पर होता है। सुषुम्ना प्राणायाम के अभ्यास, प्रार्थना और ध्यान के बाद, यहाँ तक कि जब कोई व्यक्ति किसी प्रकार का अपराध करने जा रहा हो, तब भी प्रवाहित होती है। जब सुषुम्ना प्रवाहित होती है तब पूरा मस्तिष्क कार्य करता है, लेकिन इड़ा या पिंगला के प्रवाहित होने पर केवल आधा मस्तिष्क क्रियाशील रहता है। सुषुम्ना के प्रवाह के समय कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ, दोनों एक साथ कार्य करती हैं और व्यक्ति अत्यन्त शक्तिशाली हो जाता है। चूँकि सुषुम्ना महाप्राण, कुण्डलिनी शक्ति का वहन करती है, इसलिए

समचित्तता, धैर्य और संतुलन की अनुभूति होती है। भीड़-भाड़ वाले स्थान पर भी स्वत: ध्यान की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। सुषुम्ना का प्रवाह किसी भी प्रकार की साधना में सहायक होता है।

सुषुम्ना सभी स्तरों पर विपरीत तत्त्वों के बीच एकता तथा सामंजस्य को दर्शाती है। यह इड़ा एवं पिंगला के विपरीत नियमों के बीच संतुलन तथा संयुक्तता का संकेत देती है। निम्नलिखित सारणी विभिन्न स्तरों पर इन तीनों शक्तियों के अनुभवों को दर्शाती है –

इड़ा	पिंगला	सुषुम्ना
चित्त	प्राण	कुण्डलिनी
मानसिक	प्राणिक	परामानसिक
ऋणात्मक	धनात्मक	निष्क्रिय
स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	उभयलिंगी
यिन	यांग	ताओ
चन्द्रमा	सूर्य	प्रकाश
शीत	उष्ण	शीतोष्ण
कल्पना	तर्क	बुद्धि
इच्छा	क्रिया	ज्ञान
आंतरिक	बाह्य	केन्द्रीय
रात्रि	दिन	गोधूली बेला/उषा-काल
निष्क्रिय	गतिशील	संतुलित
व्यक्तिनिष्ठता	वस्तुनिष्ठता	सजगता
परानुकम्पी	अनुकम्पी	मस्तिष्क-मेरुदण्डीय
नीला	लाल	पीला
गंगा	यमुना	सरस्वती
ब्रह्मा	विष्णु	रुद्र
अवचेतन	चेतन	अचेतन
सत्त्व	रजस्	तमस्
अ	उ	म

योग का उद्देश्य

अस्तित्व के ऐसे स्तर और चेतना के ऐसे क्षेत्र होते हैं, जो औसत व्यक्ति के अन्दर गहनतम अंधकार में दबे हुए होते हैं। ये स्तर उन स्तरों से कहीं अधिक सुन्दर और रचनात्मक हैं जहाँ हम अभी रहते हैं। इनमें पैठकर और इन्हें प्रकाशित कर हम चेतना की विभिन्न अवस्थाओं का अनुभव कर सकते हैं, बिल्कुल वैसे ही जैसे हम स्वप्न या सुषुप्ति में अनुभव करते हैं। जब प्राणिक ऊर्जा जाग्रत होती है तब चेतना इन अंधेरे क्षेत्रों में भ्रमण करती है। इसके पश्चात् अन्त:पुरी प्रकाशित हो जाती है और अस्तित्व के नये आयाम, अनुभूति के नये क्षेत्र में आत्मा का पुनर्जन्म होता है।

यद्यपि यह प्रक्रिया क्रमश: आगे बढ़ती है। पहले शरीर को योग के अभ्यासों के द्वारा सूक्ष्म एवं शुद्ध बनाकर यौगिक शरीर में रूपान्तरित किया जाता है। शरीर के अणुओं में परिवर्तन आता है, और प्राणिक तथा मानसिक शक्तियों का रूपान्तरण होता है। यह प्राप्ति नाड़ियों के शुद्धिकरण द्वारा होती है, जो प्राणों को जागरण योग्य बनाती है। जाग्रत प्राण धीरे-धीरे सम्पूर्ण चेतना को प्रकाशित करते हैं।

प्राणिक शरीर का शुद्धिकरण – योग के सभी अभ्यास प्राणों को शुद्ध करते हैं, लेकिन प्राणायाम को उनमें प्रमुख माना जाता है। योग सूत्र (2:52) में महर्षि पतंजलि प्राणायाम के प्रभाव के संदर्भ में कहते हैं, "तब प्रकाश पर पड़ा हुआ आवरण नष्ट हो जाता है।" यह आवरण तमस् एवं रजस् का अवशेष होता है, और प्राणायाम के द्वारा चित्त की सात्त्विकता चमक उठती है। तमस् एवं रजस् नाड़ियों में अवरोधों के रूप में विद्यमान रहते हैं। ये अवरोध रोगों, तनावों, अशुद्धियों के जमाव, नकारात्मक विचारों या संस्कारों, अवचेतन या अचेतन में संगृहीत मानसिक स्वरूप के कारण उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार नाड़ियों का भौतिक नहीं, बल्कि प्राणिक अस्तित्व होता है, उसी प्रकार अवरोधों का अनुभव तो किया जा सकता है, लेकिन उन्हें परिमाणित नहीं किया जा सकता।

विचार एवं वृत्तियाँ, मानसिक सूचनाएँ एवं रूपान्तर मन और चेतना में ऊर्जा की तरंगों के रूप में रहते हैं। इसलिए वे नाड़ियों में ऊर्जा की रूपरेखा को सीधे-सहज रूप से प्रभावित करते हैं। विचार या वृत्ति की प्रकृति के अनुरूप सम्बद्ध नाड़ियों के साथ-साथ चक्रों, तत्त्वों तथा दोषों पर प्रभाव पड़ता है, इससे सम्पूर्ण ऊर्जा तंत्र में एक सर्पिलाकार प्रभाव उत्पन्न होता है। यदि विचारों

को अनियन्त्रित छोड़ दिया जाता है, तो कुछ समय में ऊर्जा तंत्र क्षीण होने लगता है। इस से नकारात्मक विचारों का स्वरूप और वृत्तियाँ प्रबल हो जाती हैं और मन दुर्बल हो जाता है। इसी कारण से अपने आवेशों और संस्कारों से मुक्त होना कठिन होता है।

उदाहरण के लिए, अहंकारपूर्ण व्यवहार मणिपुर/अनाहत के क्षेत्र को और वहाँ की नाड़ियों के जाल को अवरुद्ध कर देगा। उसके बाद का प्रत्येक अहंकार-प्रेरित व्यवहार अवरोध को दृढ़ करता जायेगा। इसे दबाने की प्रवृत्ति अनाहत/विशुद्धि क्षेत्र में अवरोध उत्पन्न कर देगी। नाड़ियों में उत्पन्न हुए ये अवरोध प्राय: अन्नमय कोश में रोग के रूप में प्रकट हो जाते हैं। दूसरी ओर, रोग यदि केवल शारीरिक परिस्थितियों के कारण हुआ हो, तो भी वह प्राणिक एवं आत्मिक क्षेत्र में संचरित हो जायेगा। उस क्षेत्र की नाड़ियाँ दुर्बल हो जायेंगी और ऊर्जा प्रवाह में उस क्षेत्र को छोड़कर दूसरे मार्ग से जाने की प्रवृत्ति हो जायेगी, जैसे नदी चट्टान की बगल से दूसरा मार्ग बना लेती है। वह क्षेत्र ऊर्जा रहित हो जायेगा और दुर्बल होता जायेगा।

प्राणायाम, विशेष रूप से नाड़ीशोधन के दौरान जब हम धीमा और गहरा श्वसन करते हैं तब प्राण अवरुद्ध क्षेत्रों से ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण नाड़ी तंत्र से होकर प्रवाहित होने के लिए बाध्य होते हैं। इस प्रक्रिया के द्वारा ऊर्जा परिपथ फिर से चालू हो जाता है और दुर्बल हुए क्षेत्र धीरे-धीरे पुन: अपनी शक्ति प्राप्त कर लेते हैं। जैसे अहंकार का आवेश मणिपुर/अनाहत के क्षेत्र में अवरोध उत्पन्न करता है, ठीक वैसे ही नाड़ियों के द्वारा प्राणों का बढ़ा हुआ प्रवाह उस क्षेत्र के अवरोध को दूर करता है। शिव संहिता (3:49) में कहा गया है, "बुद्धिमान् साधक श्वास के नियन्त्रण द्वारा निश्चय ही अपने सभी कर्मों को, चाहे वे इस जन्म के हों या पूर्व जन्मों के, समाप्त कर डालता है।" मनुस्मृति भी हमें बतलाती है, "हमें अपनी त्रुटियों को प्राणायाम के द्वारा मिटा देना चाहिए।"

प्राणायाम में ऐसे गुण विद्यमान हैं कि यदि उन्हें सही विधि से किया जाये, तो वे सम्पूर्ण ऊर्जा परिपथ को प्रभावित करते हैं और यदि कोई व्यक्ति अपनी नाड़ियों के विशेष अवरोधों के प्रति अनभिज्ञ है तो भी कुछ समय में उसे अवरोधमुक्त कर देते हैं। शुद्धिकरण प्राणिक स्तर के साथ-साथ शारीरिक और मानसिक स्तर पर भी होता है। इसके द्वारा अनेक सकारात्मक रूपान्तर होते हैं। जैसा कि हठयोग प्रदीपिका (2:20) में कहा

गया है, "नाड़ियों के शुद्धिकरण से अन्तर्ध्वनि या नाद जाग्रत होता है और व्यक्ति रोगमुक्त हो जाता है।" इस अवस्था में साधक उच्च साधना के लिए तैयार हो जाता है।

प्राण का जागरण – मानव विकास जितना स्वस्थ शरीर पर निर्भर रहता है, उतना ही प्राण शक्ति के जागरण पर भी। प्राण का जागरण तभी होता है जब नाड़ियों का प्रवाह निरंतर, नियमित और लयबद्ध होता है, तथा श्वसन क्रिया में किसी प्रकार का अवरोध या कोई शारीरिक कष्ट नहीं होता। इस अवस्था को प्राणोत्थान, प्राणों का जागरण, विशेष रूप से इड़ा एवं पिंगला का जागरण कहते हैं। जब इड़ा एवं पिंगला का जागरण होता है तब सुषुम्ना जाग्रत होती है। इस तीसरी शक्ति के जागरण को प्राणायाम, क्रिया योग तथा कुण्डलिनी योग में सबसे महत्त्वपूर्ण घटना माना जाता है। वास्तव में प्राणायाम सुषुम्ना के जागरण से ही प्रारम्भ होता है, क्योंकि तभी प्राणिक क्षेत्र का विस्तार होता है। यह जागरण होने तक पूरे अभ्यासक्रम में इड़ा और पिंगला का शुद्धिकरण जारी रहता है।

प्राणों के जागरण के बाद साधक प्राण विद्या के अभ्यास के लिए तैयार हो जाता है। साधक को प्राण को न केवल अपने शरीर में, बल्कि उस सर्वव्यापी की व्यक्त सत्ता की ओर भी संचरित करने योग्य होना चाहिए जिससे सारी ऊर्जाएँ उद्भूत हुई हैं। निपुण योगी अपने शरीर के किसी भी भाग से प्राण को खींच सकता है ताकि उसका शरीर ताप, शीत या किसी अन्य संवेदना से अप्रभावित रह सके। वह अपने प्राण को किसी भी भाग में भेजकर उसे अतिसंवेदनशील बना सकता है। वह अपने प्राण को आँखों में भेजकर दूर की वस्तुओं को देख सकता है, नाक में भेजकर दिव्य सुगंध पा सकता है, या जिह्वा में ले जाकर अतीन्द्रियग्राह्य स्वाद की अनुभूति प्राप्त कर सकता है। मुक्त रूप से सर्वसुलभ ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का उपयोग कर व्यक्ति शरीर, मन एवं चेतना के स्वरूप में परिवर्तन लाना सीख सकता है। प्राणिक ऊर्जा का ऐसा जागरण प्राणमय कोश के विकास का द्योतक है। इससे व्यक्ति गहन ध्यान की उच्च अवस्था में जाकर स्थिर हो सकता है।

पंच प्राण – प्राण के शक्ति-क्षेत्र

पाँच मौलिक शक्तियाँ हैं, जिन्हें पंच प्राण कहा जाता है। वे भौतिक शरीर में हर पल कार्यरत रहती हैं। प्राण शक्ति शरीर को उसकी विविध क्रियाएँ करने योग्य बनाने के लिए इन पाँच क्षेत्रों को अपना लेती है। इसलिए शरीर के विभिन्न भागों में एक साथ प्राण की भिन्न-भिन्न अनुभूति होती है। ये पाँच शक्तियाँ मन एवं चेतना को सूक्ष्म स्तर पर प्रभावित करती हैं और कुछ समय के बाद स्वयं उनसे प्रभावित भी होती हैं। ऋषियों ने इन पंच प्राणों को प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान के रूप में जाना। पंच प्राणों को प्राण वायु के नाम से भी जाना जाता है। वायु शब्द 'व' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'गति' या 'प्रवाहित होने वाला' होता है। इसलिए प्राण वायु सहज गति के गुण का प्रतिनिधित्व करती है और पाचक रसों के स्राव से लेकर हाथों को हिलाने जैसी प्रत्येक क्रिया के लिए ऊर्जा प्रदान करती है। वे सभी तत्त्वों, अंगों और मन में भी प्रवाहित होती हैं।

वैयक्तिक स्तर पर पंच प्राण का सम्बन्ध सृजन और उसके अस्तित्व से होता है। मनुष्यों में इनकी उत्पत्ति गर्भाशय में विकास के प्रथम चार महीनों के दौरान होती है। पहले और दूसरे महीनों में भ्रूण माता के प्राण पर जीवित रहता है। तीसरे महीने से भ्रूण को अपना शक्ति-स्रोत प्राप्त हो जाता है। चौथे महीने में शरीर के निर्माण के साथ ही पंच प्राण सक्रिय हो जाते हैं और इस प्राणिक क्रियाशीलता के परिणामस्वरूप आत्मा उस नवनिर्मित शरीर में प्रवेश करती है।

पंच प्राण शारीरिक तथा मानसिक स्तरों के बीच संतुलन बनाए रखते हैं। भौतिक स्तर पर इनकी अवस्थिति शरीर की क्रियाओं के अनुरूप होती है; हालाँकि मन एवं चेतना के सूक्ष्म स्तरों पर ये अधिक समरूपता के साथ कार्य

करते हैं और वहाँ, उनके बीच भिन्नता भौतिक नहीं, बल्कि गुणात्मक होती है। इस संदर्भ में पंच प्राण एवं उनकी स्थिति का वर्णन योग साहित्यों में प्राय: भिन्न प्रकार से किया गया है। इनसे साधक को दिग्भ्रमित नहीं होना चाहिए। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि ऊर्जा पुंज का बोध अनुभूति के क्षेत्र में होना चाहिए, जहाँ सीमाएँ न तो श्याम होती हैं, न श्वेत। मुख्य बात यह है कि अपनी अनुभूति को अधिक-से-अधिक तीव्र बनाते जाना है।

स्थूल प्राण

भौतिक स्तर – प्राण पंच प्राणों में प्रथम है। इस प्राण को सर्वव्यापी प्राण से पृथक् रखने के लिए स्थूल प्राण भी कहा जाता है। स्थूल प्राण वक्ष प्रदेश में मध्यपटल और गर्दन के आधार के बीच ऊर्जा की धारा के रूप में विद्यमान होता है। यह जीवनरक्षक शक्ति का संचार-केन्द्र है। यह शक्ति हृदय और फेफड़ों का तथा वक्ष प्रदेश की सभी क्रियाओं, जैसे, श्वसन क्रिया, निगलना और रक्त-संचार का संभरण करती है। जब किसी कठिन कार्य के कारण श्वास या हृदय की गति बढ़ जाती है तब स्थूल प्राण का स्तर भी बढ़ जाता है। यह प्राण शक्ति इतनी आवश्यक है कि यदि इसकी क्रियात्मकता में बाधा आ जाये या यह अवरुद्ध हो जाये तो मृत्यु भी हो सकती है।

वक्ष प्रदेश में स्थूल प्राण का अनुभव ऊपर की ओर गतिमान हो रहे प्रकाशकणों के रूप में होता है। पंच प्राणों में यह निर्णायक होता है और अन्य चार प्राणों को नियंत्रित करता है। विशेष रूप से प्राणायाम इस प्राण के स्तर को बढ़ाता है और हृदय के चारों ओर की धमनियों में रक्त के जमाव को रोकता है। जब स्थूल प्राण सबल होता है तब हृदय दुर्बल नहीं होता; व्यक्ति उच्च या निम्न रक्तचाप से पीड़ित नहीं होता और इस प्रकार दीर्घायु होता है।

सूक्ष्म स्तर – मन के स्तर पर प्राण का काम प्रभावों एवं विचारों को ग्रहण करना होता है। प्राण सभी कोशों को ऊर्जा प्रदान करता है और सदा सक्रिय रहता है। यह अनाहत से विशुद्धि तक के क्षेत्र में व्याप्त रहता है। जब प्राण शक्तिवान रहता है और उसका प्रवाह अबाधित रहता है तब हृदय के सद्गुण जैसे, सामर्थ्य, साहस और महानता प्रकट होने लगते हैं। यह प्राण ऐसी ऊर्जा है जिसके द्वारा मन की एकाग्रता और अंतर्ज्ञान की अनुभूति होने लगती है। इसमें हृदय स्थित आत्मा की प्रबुद्ध ऊर्जा विद्यमान होती है। इस प्राण में वृद्धि

कर योगी आत्मा तक पहुँच जाते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् (3:7:16) में कहा गया है –

यः प्राणे तिष्ठन् प्राणादन्तरो यं प्राणो न वेद यस्य प्राणः शरीरं।
यः प्राणमन्तरो यमत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः॥

प्रबुद्ध आत्मा प्राण में स्थित है, प्राण के अंदर यह प्राण में व्याप्त है, फिर भी बुद्धिहीन इससे अनभिज्ञ हैं। प्राण स्वयं शरीर का स्वामी बन गया है जो इसे अंदर से नियन्त्रित करता है। इसलिए आत्मा निर्विकार, अविनाशी एवं अमर है।

आत्मा की अनुभूति प्राप्त करने में प्राण मार्गदर्शक भी है और माध्यम भी। हृदय केन्द्र पर ध्यान करते समय प्राण के साथ एकात्मता तीव्रतर हो जाती है; ऐसा अनुभव होता है जैसे साधक स्वयं प्राण बन गया हो।

असंतुलन के संकेत – जब प्राण के मार्ग अवरुद्ध रहते हैं, तब हृदय और फेफड़े ठीक से कार्य नहीं करते तथा ऑक्सीजन का अवशोषण पर्याप्त मात्रा में नहीं होता है। व्यक्ति मानसिक स्तर पर सकारात्मक विचार नहीं ला पाता है। एकाग्र होना या अन्तर्ज्ञान का अनुभव करना कठिन होता है।

अपान

भौतिक स्तर – अपान दूसरा प्राण है जो श्रोणि प्रदेश में नाभि एवं मूलाधार के बीच सक्रिय रहता है। यह वृक्क, मूत्राशय, आँतों, उत्सर्जन और जनन अंगों का पोषण करता है। यह गैस, वात, मल, मूत्र, शुक्राणु और अण्डाणु के उत्सर्जन का काम करता है। यह गर्भ का पोषण करता है और जन्म के समय उसे गर्भाशय से बाहर निकालता है। अपान की अनुभूति नाभि से मूलाधार की ओर अवरोहण कर रहे प्रकाशकणों के रूप में होती है। इस क्षेत्र में पृथ्वी एवं जल तत्त्व की उपस्थिति के कारण इसका अनुभव भारयुक्त शक्ति के रूप में होता है।

सूक्ष्म स्तर – अपान कोशों के माध्यम से ऊर्जा को नीचे की ओर ले जाता है। स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार चक्र अपान की सीमा के अंदर स्थित होते हैं। अपान का बोध हो जाने पर इन चक्रों की भी अनुभूति हो जाती है। कुण्डलिनी शक्ति भी अपान की सीमा में स्थित होती है और यह कुण्डलिनी के जागरण में सहयोग देता है, जबकि प्राण उसके आरोहण में सहायक होता है। इस

प्रकार महाप्राण की अनुभूति अपान क्षेत्र में होती है। अपान को नियन्त्रित करने से यौन प्रवृत्ति नियन्त्रित होती है, जिससे ब्रह्मचर्य का भाव आता है। मानसिक स्तर पर अपान नकारात्मक विचारों तथा भावनाओं को दूर करता है।

असंतुलन के संकेत – जब अपान असंतुलित होता है तब उत्सर्जन पर्याप्त नहीं होता है, गुरुत्त्व बल से नीचे की ओर खींचे जाने का, अवसाद का और नकारात्मकता का अनुभव होता है।

समान

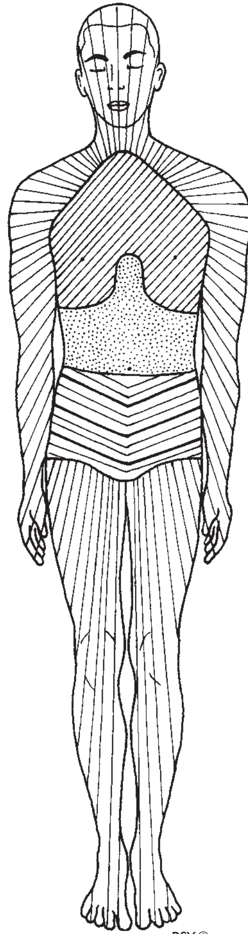
भौतिक स्तर – समान तीसरा प्राण है। यह नाभि तथा मध्यपट के बीच कार्यरत रहता है। यह दो विपरीत शक्तियों, प्राण और अपान के बीच संतुलनकारी की भूमिका निभाता है। समान पाचक अंगों तथा उनके स्राव को सक्रिय कर उनका पोषण करता है और चयापचय के लिए उत्तरदायी है। इसका सम्बन्ध जठराग्नि से होता है। समान की अनुभूति पेण्डुलम के समान तेजी से दायें-बायें घूमते प्रकाश की गति के रूप में होती है। यह मणिपुर में अनुभूत शक्ति तथा गतिशीलता के लिए उत्तरदायी है।

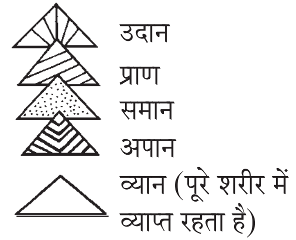
पाचन का सम्बन्ध मुख्यत: छ: अंगों से होता है – यकृत, आमाशय, छोटी आँत का अग्रभाग, प्लीहा, छोटी और बड़ी आँत। ये सब समान के क्षेत्र में स्थित हैं। शरीर को समान के माध्यम से ही बल और स्वास्थ्यवर्द्धक पोषण प्राप्त होता है। यद्यपि समान एक ही ऊर्जा है, फिर भी यह इन सभी विभिन्न अंगों में भिन्न-भिन्न क्रियायें करने योग्य होता है।

सूक्ष्म स्तर – समान कोशों के बीच सम्बद्धता और संतुलन बनाए रखता है। यह अपान की तुलना में सूक्ष्म है और प्राण की तुलना में स्थूल है। चूँकि समान का सम्बन्ध पाचन से है, इसलिए यह मानसिक तत्त्वों को पचाने का कार्य भी करता है।

असंतुलन के संकेत – मानसिक अशान्ति एवं असामंजस्य के कारण सन्तुलनकारी समान अव्यवस्थित हो जाता है। जब कभी शरीर और इन्द्रियों में किसी प्रकार की समस्या उत्पन्न होती है, तब समान भी अशान्त होकर अव्यवस्था उत्पन्न कर देता है। समान के असंतुलित होने के कारण भोजन का पर्याप्त स्वांगीकरण नहीं हो पाता है, जिससे शरीर के अंदर विषाक्त तत्त्वों में वृद्धि होने के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक अवरोध भी उत्पन्न हो जाते हैं।

प्राणिक शरीर





उदान

भौतिक स्तर – उदान चौथा प्राण है, जो हाथों, पैरों, गरदन और सिर आदि अग्रांगों में कार्य करता है। इसका सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों से होता है। यह पैरों, हाथों और गर्दन की गतिविधियों को समन्वित तथा नियन्त्रित करता है और मस्तिष्क एवं सिर के क्षेत्र में स्थित इन्द्रियों की गतिविधियों को संचालित करता है। इन इन्द्रियों के अंतर्गत आँखें, दृष्टि; कान, श्रवण; जिह्वा, स्वाद; नाक, गंध, चर्म, स्पर्श के अनुभव आते हैं। उदान के द्वारा

नियन्त्रित होने वाली तीन कर्मेन्द्रियाँ हैं – हाथ, पैर और वाणी। अन्य दो, उत्सर्जन एवं प्रजनन अंग, अपान द्वारा नियन्त्रित होते हैं।

उदान श्वास लेने, प्रश्वास छोड़ने तथा भोजन-पानी को ग्रहण करने के साथ-साथ वमन करने, थूकने और लार को घोंटने में प्राण की सहायता करता है। गले और मुँह की सभी क्रियायें उदान द्वारा प्रेरित होती हैं और इसका प्रभाव विशुद्धि चक्र के क्षेत्र से प्रारम्भ होता है। यह हृदय एवं मस्तिष्क के बीच प्राणिक कड़ी की तरह काम करता है। इसके अतिरिक्त उदान गौण प्राणों (नीचे देखें) के निकट होने के कारण उन्हें उनकी क्रियाओं में भी मदद करता है। पाँचों गौण प्राण उदान से ऊर्जा प्राप्त कर क्रियाशील रहते हैं।

उदान ज्ञानेन्द्रियों तथा उनकी क्रियाओं को प्रेरित कर उनका पोषण करता है। इन्द्रियों के उपभोग से उदान सक्रिय रहता है, क्योंकि यह उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप ही कार्य करता है। उदान शरीर को सीधा रखता है; यह शरीर द्वारा (विशेषरूप से हाथों और पैरों द्वारा) गुरुत्वाकर्षण के विपरीत की जाने वाली क्रियाओं के लिए उत्तरदायी होता है।

सूक्ष्म स्तर – उदान मानसिक रूप से सकारात्मक कार्यों के लिए प्रेरित करता है। मीठी, सुरीली और प्रभावोत्पादक वाणी इसी की देन होती है। इसी के द्वारा मस्तिष्क एवं हृदय के बीच प्राण का आदान-प्रदान होता है, जिससे सूक्ष्म तथा कारण शरीरों के बीच सम्पर्क स्थापित होता है। यह स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों के बीच सम्बन्ध बनाकर रखता है। उदान की अनुभूति हाथों और पैरों में नीचे की ओर तथा सिर तक ऊपर की ओर प्रकाश के सर्पिलाकार प्रवाह के रूप में होती है।

उदान आज्ञा, बिन्दु और सहस्रार चक्रों में व्याप्त रहता है। यह कोशों में ऊर्जा को स्थूल से सूक्ष्म की ओर लाता है। जब योगी उदान पर अपने ध्यान को एकाग्र करते हैं तब वे भूख, प्यास, नींद और तन्द्रा से मुक्त हो जाते हैं। ध्यान एवं समाधि की अवधि में उदान की गतिविधि अत्यन्त धीमी और सूक्ष्म हो जाती है।

असंतुलन के संकेत – उदान में अनियमितता आने पर श्वास की समस्यायें, शारीरिक तथा मानसिक कार्यों को करने, स्पष्ट रूप से विचार करने या स्वयं को अभिव्यक्त करने में असमर्थता उत्पन्न हो जाती है। वाणी असमन्वित हो जाती है। संकल्पशक्ति और प्रसन्नता का अभाव होता है।

व्यान

भौतिक स्तर – व्यान जो पाँचवाँ प्राण है, सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है और ऊर्जा के भण्डार के रूप में कार्य करता है। आवश्यकता पड़ने पर यह अन्य सभी प्राणों को अतिरिक्त ऊर्जा प्रदान करता है। जब कोई अत्यधिक परिश्रम करता है तब वह बहुत अधिक थकान का अनुभव करता है, ऐसे में वेगपूर्ण प्रवाह के साथ ऊर्जा उसे प्राप्त हो जाती है और वह अपना कार्य जारी रखने में सक्षम हो जाता है। व्यान के कारण ही पुन: ऊर्जा प्राप्त होती है। व्यान सभी पेशीय क्रियाओं को नियमित और समन्वित करता है, शरीर के विभिन्न भागों में आवेशों को भेजने में सहायता करता है, और पसीना तथा रोमांच उत्पन्न करता है। व्यान प्रमुख एवं गौण, सभी प्राणों की सहायता करता हुआ उन्हें क्रियाशील रखता है।

सूक्ष्म स्तर – व्यान पाँचों कोशों में संचरण उत्पन्न करता और उन्हें अलग-अलग रूप से पहचाने जाने योग्य बनाता है। यह शरीर के अंदर आकाश तत्त्व में व्याप्त रहता है और शरीर में चेतना के वाहन का काम करता है। उत्तेजना की अवस्था में यह अपनी त्वरित गति के कारण मन को उत्तेजित और मोहित कर देता है। ऐसी स्थिति में चेतना की गति तीव्र हो जाती है।

असंतुलन के संकेत – जब व्यापक ऊर्जा, व्यान असंतुलित हो जाती है तब समन्वयन का अभाव हो जाता है, थरथराहट होती है, दूसरों से सम्पर्क साधने में कठिनाई होती है और मन भ्रमित हो जाता है।

प्राणों का घनत्व और रंग

पाँचों प्राणों के आयनिक क्षेत्रों के घनत्व भिन्न-भिन्न होते हैं। उदान सबसे कम घनत्व वाला होता है। प्राण, समान और अपान का घनत्व क्रमश: उससे अधिक होता है। पूरे शरीर में संचरित होने वाले व्यान के घनत्व का मान इन सबका औसत होता है। प्राणों के आयनिक क्षेत्रों को विविध रंगों के बल खाते हुए बादलों के रूप में देखा जा सकता है, जिनमें फैलने और सिकुड़ने की क्षमता होती है। ये रंग प्रकाश अणुओं (फोटोन्स) के उत्सर्जन के समय तब उत्पन्न होते हैं जब इलेक्ट्रॉन अपने उच्च ऊर्जा स्तर से निम्न आवृत्ति वाले ऊर्जा स्तर में आते हैं। अमृतनाद उपनिषद् में विभिन्न प्राणों के रंगों को इस प्रकार वर्णित किया गया है (श्लोक 35– 37) –

रक्तवर्णो मणिप्रख्यः प्राणवायु प्रकीर्तितः।
अपानस्तस्य मध्ये तु इंद्रकोपसमप्रभः।
समानस्तु द्वयोर्मध्ये गोक्षीरधवलप्रभः।
अपाण्डर उदानश्च व्यानो ह्यर्चिसमप्रभः॥

प्राण को रक्तवर्ण, माणिक या मूँगा के रंग का कहा गया है; अपान इन्द्र-गोप (श्वेत या लाल रंग का एक कीड़ा) के रंग का होता है; समान का रंग शुद्ध दूध और स्फटिक के बीच का (तैलीय एवं चमकीला) होता है; उदान अपानदार (हल्का उजला) और व्यान अर्चि (प्रकाश की किरण) के रंग का है।

प्राण एवं अपान का सम्मिलन

पंच प्राणों में से दो, प्राण एवं अपान सर्वाधिक प्रभावशाली हैं। शिव संहिता (3:6) में कहा गया है –

अत्रापि वायवः पंच मुख्याः स्युर्दशतः पुनः।
तत्रापि श्रेष्ठकर्त्तारौ प्राणापानौ मयोदितौ ॥

दस (प्रमुख और गौण प्राणों) में से प्रथम पाँच प्रमुख हैं; उनमें से भी प्राण एवं अपान श्रेष्ठ कर्त्ता हैं।

प्राण एवं अपान भौतिक शरीर में दो विपरीत शक्तियाँ हैं; प्राण का संचार नाभि के ऊपर, जबकि अपान का संचार नीचे की ओर होता है। अपान के प्रभाव से चेतना मूलाधार की ओर खिंचती है, जो स्थूलतम तत्त्व के रूप में प्रकट हुई पृथ्वी से सम्बद्ध है। वहाँ पर यह इच्छाओं को उत्पन्न करता है और जगत् के सम्पर्क में आता है। प्राण के प्रभाव से चेतना ऊपर सहस्रार की ओर आकृष्ट होती है, जो अव्यक्त आयाम के सूक्ष्मतम तत्त्व आकाश से सम्बद्ध है। यहाँ उसे अपनी उच्च प्रकृति की अनुभूति होती है।

योग के अभ्यास में प्राण एवं अपान की दिशा या गतिविधि में परिवर्तन आ जाता है। प्राण का ऊर्ध्वगामी प्रवाह अधोगामी हो जाता है और अपान का अधोगामी प्रवाह ऊर्ध्वगामी हो जाता है। इस प्रकार ये दोनों एक-दूसरे की ओर संचरण करते हैं और समान पर मिलते हैं। इस मिलन बिन्दु पर योगाग्नि उत्पन्न होती है। जब जीवन के ये दो पक्ष, आन्तरिक और बाह्य, सांसारिक और आध्यात्मिक एक साथ आकर मिलते हैं तब कुण्डलिनी जाग्रत होती है।

भगवद्गीता के चौथे अध्याय में श्रीकृष्ण अर्जुन को राजयोग एवं हठयोग का उपदेश देते हैं। उनका मूल परामर्श है – प्राण को अपान के साथ या अपान को प्राण के साथ संयुक्त करो (4:29) –

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥

कुछ योगीजन अपान वायु में प्राण वायु को हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगीजन प्राणवायु में अपान वायु को हवन करते हैं। अन्य योगीजन प्राण और अपान की गति को रोककर प्राणायाम के परायण होते हैं।

योग के अभ्यासों के द्वारा प्राण एवं अपान का मिलन या अपान एवं प्राण का संयुक्त होना, या दोनों को अवरुद्ध करना सम्भव होता है। इस मिलन को सम्भव बनाने के लिए अनेक अभ्यास हैं। जब सिद्धासन का अभ्यास करते हुए श्वास को अंदर लेकर समान के क्षेत्र में ले जाया जाता है तब वहाँ पर प्राण एवं अपान का मिलन होता है। क्रियायोग के अभ्यासों से इसी प्रकार का प्रभाव उत्पन्न होता है। जब तीन बन्ध लगाये जाते हैं, तब जालन्धर बन्ध प्राण को ऊपर जाने से और मूलबन्ध प्राण को नीचे जाने से रोक देता है, तथा उड्डियान बन्ध चूषण जैसा प्रभाव उत्पन्न करता है जिससे प्राण एवं अपान के व्यवहार प्रभावित होते हैं। नौली क्रिया जैसा षट्कर्म भी प्राण एवं अपान को संयुक्त कर देता है। जब पूरक, रेचक और कुम्भक के साथ प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है तब आज्ञा चक्र में प्राण एवं अपान का मिलन होता है।

प्राण एवं अपान का मिलन योग का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उद्देश्य होता है। जब तक साधक इन दो शक्तियों को नियन्त्रित करने योग्य नहीं हो जाता, तब तक वह द्वैत के प्रभाव में रहता है और उसका मन इधर-उधर भटकता रहता है। योग चूड़ामणि उपनिषद् (श्लोक 27) में कहा गया है –

आक्षिप्तो भुजदण्डेन तथा यथोच्चलति कन्दुकः।
प्राणापानसमाक्षिप्तस्तथा जीवो न तिष्ठति ॥

जिस प्रकार हाथ से उछाली गयी गेंद ऊपर और नीचे जाती है, उसी प्रकार प्राण एवं अपान की गतिशीलता से जीवात्मा ऊपर-नीचे गतिमान होती है, स्थिर नहीं रहती।

पाँच उप प्राण

पाँच मुख्य प्राणों के साथ पाँच उप प्राण रहते हैं। वास्तव में उन्हें पंच वायु कहा जाता है। ये नाग, कूर्म, क्रिकर, देवदत्त एवं धनंजय हैं। पंच वायु अधिक स्थूल हैं और पंच प्राणों की अपेक्षा इनकी ऊर्जा सीमित रूप में ही प्रकट होती है। घेरण्ड संहिता में इन दोनों को पृथक् करने के लिए इनकी विशेषताओं के अनुसार इन्हें 'अंतर्वायु' और 'बहिर्वायु' कहा गया है। यद्यपि यह उल्लेखनीय है कि अधिकतर शास्त्रवेत्ताओं ने सभी प्राणों के लिए सामान्य रूप से 'वायु' शब्द का प्रयोग किया है। हठयोग प्रदीपिका के सभी श्लोकों में 'वायु' तथा 'प्राण' शब्द का बारी-बारी से प्रयोग किया गया है; घेरण्ड संहिता में 'दस वायु' का प्रयोग हुआ है। योग चूड़ामणि उपनिषद् में तो पंच प्राणों के लिए पंच वायु का प्रयोग किया गया है। जबकि शिव स्वरोदय तथा ध्यान बिन्दु उपनिषद् जैसे शास्त्रों में स्पष्ट अंतर के साथ 'पंच प्राण' और 'पंच वायु' शब्दों का प्रयोग किया गया है। यह अंतर ही अधिमान्य है, क्योंकि पंच प्राण और पंच वायु के स्तरों पर प्राण की अनुभूति अलग-अलग विशेषताओं के साथ होती है।

नाग– इसकी क्रिया से ही डकार और हिचकी आती है। जब वायु तत्त्व उत्तेजित होता है तब नाग सक्रिय हो जाता है और यह उत्तेजित वायु को उदर से बाहर निकालने का प्रयास करता है जिससे उदान, प्राण और समान में कम्पन होता है। जब तक भोजन स्वास्थ्यप्रद होता है और पाचन सही ढंग से होता रहता है तब तक नाग निष्क्रिय रहता है। ध्यान की अवस्था में नाग क्रियाशील नहीं होता है।

कूर्म– यह आँखों को झपकाता है और उन्हें स्वस्थ, नम एवं सुरक्षित रखता है। यह व्यक्ति को सभी वस्तुओं को देखने योग्य बनाता है। कूर्म की ऊर्जा से ही आँखों में चमक होती है, जो व्यक्ति को प्रभावशाली बनाती है। जब कूर्म नियन्त्रित रहता है तब योगी त्राटक करते हुए कई घंटों तक अपनी आँखें खुली रख सकते हैं। यद्यपि कूर्म का कार्यक्षेत्र सीमित है, फिर भी इसमें बहुत शक्ति होती है, जिसके कारण यह ध्यान के समय एकाग्रता को स्थिर तथा तीव्र बनाता है।

क्रिकर– जँभाई, भूख और प्यास इसके कार्यक्षेत्र में आते हैं और यह श्वसन में सहायक होता है। चूँकि इसका सम्बन्ध जँभाई से है, इसलिए इसके मूल में आलस्य और अकर्मण्यता है। जब अभ्यास के द्वारा क्रिकर

नियन्त्रित हो जाता है तब आलस्य और नींद वश में हो जाते हैं, भूख और प्यास नियन्त्रित हो जाती है, और मुँह में मीठा स्राव होने लगता है। क्रिकर पर नियंत्रण विशेष रूप से उपवास एवं समाधि के लिए उपयोगी होता है।

देवदत्त– इसके कारण छींक आती है और यह श्वसन में सहायता करता है। यह तीखी या जलन उत्पन्न करने वाली गंध से सक्रिय हो जाता है और तीव्रतर स्थितियों में नासिकाओं में पीड़ा भी उत्पन्न कर देता है। अपनी सूक्ष्म अवस्था में देवदत्त साधक को दिव्य सुगंध प्राप्त करने योग्य भी बना देता है।

धनंजय– यह सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है और इसका सम्बन्ध स्पर्शेन्द्रिय से होता है। यह पेशियों, धमनियों, शिराओं और चर्म के कार्यों को प्रभावित करता है। किसी आघात के कारण जो सूजन होती है, वह धनंजय की गति के कारण होती है। तामसिक अवस्था में यह शरीर में आलस्य उत्पन्न कर देता है। धनंजय मृत्यु के बाद शरीर को छोड़कर जाने वाला अंतिम प्राण है और यही शरीर को अपघटित करता है।

प्राणायाम एवं प्राणविद्या

यद्यपि दस प्राणों (मुख्य और गौण) की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं, लेकिन वे प्रत्येक शारीरिक क्रिया को तारतम्यतापूर्वक उसके निर्दिष्ट तक ले जाते हैं। उदाहरण के लिए, भोजन के चयापचय के लिए प्राण भोजन को आमाशय के नीचे ले जाने में मदद करता है, समान उसके पाचन को सुगम बनाता है, व्यान पोषक तत्त्वों का संचरण करता है, अपान अपशिष्ट पदार्थों को उत्सर्जित करता है और उदान भोजन से प्राप्त हुई ऊर्जा को शारीरिक कार्य के लिए ले जाता है।

प्रश्नोपनिषद् में पंच प्राण एवं यज्ञ के बीच इस प्रकार सादृश्य दर्शाया गया है – अपान, व्यान और उदान का यज्ञ की अग्नि के साथ, समान का होता (पुरोहित) के साथ, मन का यजमान के साथ और उदान का यज्ञ के फल के साथ। प्राणिक प्रक्रिया निश्चित रूप से यज्ञ की प्रक्रिया के समान है – ऊर्जा का पोषण, जीवन का अनुप्राणन और संयुक्त शक्तियों के द्वारा ऊर्जा का निस्सरण। इसलिए जब सभी प्राण संतुलित होते हैं तब शरीर और मन श्रेष्ठ सामंजस्य की स्थिति में होते हैं। यद्यपि प्रायः ऐसा नहीं होता है। अधिकतर लोगों के प्राण अत्यधिक और अनुचित उपयोग के कारण असंतुलन की अवस्था में रहते हैं।

दैनिक जीवन के तनाव एवं चिन्ताएँ प्राण का सबसे अधिक उपयोग कर लेती हैं, जिससे प्राणिक क्षेत्र रिक्त हो जाते हैं। परिणामस्वरूप थकान, अवसाद तथा अपर्याप्त पाचन और संचरण होता है। चूँकि कभी न समाप्त होने वाला यह चक्र चलता रहता है, इसलिए शरीर में चलने, काम करने या सोचने की शक्ति भी शेष नहीं रहती और छोटी-से-छोटी बाधा घबराहट तथा तनाव उत्पन्न कर देती है। इससे बचने के लिए प्राणों का निरंतर पोषण होते रहना चाहिए ताकि उनका कार्य पूरी दक्षता के साथ होता रहे और संतुलन बना रहे। अभ्यासों के द्वारा प्राणों का पोषण एवं आपूर्णन प्राणायाम का पहला उद्देश्य है। जब प्राण पर्याप्त रूप से पुष्ट रहते हैं तब उनका जागरण होता है।

प्राणविद्या के अभ्यास के दौरान साधक को जाग्रत प्राणों का बोध होता है। साधक प्रत्येक प्राण, उसकी गतिशीलता और आत्मिक धारणा के प्रति तीव्र रूप से सजग हो जाता है। यद्यपि साधक अवलोकन और एकाग्रता के द्वारा भी विभिन्न प्राणों की भिन्न-भिन्न क्रियाओं के माध्यम से उनकी प्रकृति को धीरे-धीरे पहचान सकते हैं। प्राणों की अनुभूति के द्वारा चेतना की अनुभूति भी होती है। किसी विशेष क्षेत्र में प्राण की अनुभूति चेतना की अनुभूति का माध्यम बन जाती है। स्थूल के साथ-साथ सूक्ष्म क्रियाओं में भी प्राणों के विस्तार की अनुभूति जितनी गहराई से होने लगती है, चेतना का बोध उतना ही सूक्ष्मतर होता जाता है। जब प्राणों की अनुभूति पर्याप्त रूप से तीव्र हो जाती है तब योगी इन शक्तियों को निर्देशित कर सकते हैं और आवश्यकतानुसार इनके गुणों को रूपान्तरित कर सकते हैं।

पाँच कुंजियाँ

प्राण के सूक्ष्म बोध और उसकी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए पाँच कुंजियों (उपायों) का उपयोग किया जाता है। ये कुंजियाँ हैं – i) अतीन्द्रिय श्वास, ii) अतीन्द्रिय मार्ग, iii) अतीन्द्रिय केन्द्र, iv) अतीन्द्रिय ध्वनि और v) अतीन्द्रिय प्रतीक।

अतीन्द्रिय श्वास

प्राण की सजगता के लिए अतीन्द्रिय श्वास पहली कुंजी है। सजगता के साथ भौतिक श्वास का एकीकरण ही अतीन्द्रिय श्वास कहलाती है। श्वास की अनुभूति स्थूल एवं सूक्ष्म, दोनों स्तरों पर हो सकती है। अतीन्द्रिय श्वास का आधार स्थूल भौतिक श्वास है। कोई इसके प्रति सजग हो या न हो, नासिकाओं के द्वारा औसतन पन्द्रह बार प्रति मिनट, 900 बार प्रति घण्टा और 21,000 बार प्रति दिन श्वसन होता है। श्वास का फेफड़ों में जाना और नासिकाओं से हवा का बाहर निकलना, श्वसन प्रक्रिया का सामान्य अनुभव है। इच्छा शक्ति के द्वारा इस प्रक्रिया को करना और एकाग्र होना प्राणायाम का एक पक्ष है; दूसरा पक्ष अतीन्द्रिय श्वसन है।

अतीन्द्रिय श्वसन की प्रारम्भिक अवस्था में श्वसन के स्वाभाविक चक्र को प्रभावित करने का प्रयास किये बिना केवल सामान्य श्वास की सजगता की आवश्यकता होती है। एक बार यह सजगता विकसित हो जाने पर श्वास के संचलन का अनुभव उज्जायी प्राणायाम के रूप में होने लगता है (अध्याय 20 – 'प्रशान्तक प्राणायाम' देखें)। अतीन्द्रिय श्वसन की प्रारम्भिक प्रक्रिया में उज्जायी श्वसन के द्वारा उत्पन्न हुई गहरी ध्वनि के स्पन्दन के प्रति सजगता और पूरक एवं रेचक के दौरान इसकी

गति पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। उज्जायी के अंतर्गत सजगता का अभ्यास, एकाग्रता और गले की पेशियों का वास्तविक शारीरिक संकुचन आते हैं।

उज्जायी प्राणायाम के साथ खेचरी मुद्रा भी की जा सकती है, इसके दौरान गले के द्वारा श्वास के अंदर आने और बाहर जाने की गति तथा उसकी ध्वनि के प्रति सजगता रहती है। यह सजगता प्राणमय कोश के बोध को विकसित करती है। जब गले में आंतरिक श्वास की गति और ध्वनि की पूर्ण सजगता के साथ अतीन्द्रिय श्वसन का अभ्यास किया जाता है तब मन शान्त होने लगता है और व्यक्तित्व के अंदर एक नये प्रकार की अनुभूति होती है। उज्जायी के अभ्यास के दौरान जो शारीरिक अनुभूति होती है, वह है शान्ति, विश्रान्ति तथा एकाग्रता की। यह उज्जायी की स्थूल अनुभूति है, इसके बाद अतीन्द्रिय अनुभूति होती है।

ज्यों-ज्यों उज्जायी का अभ्यास बढ़ता जाता है, साधक प्राण को संचालित करने लगता है। महाप्राण सबसे पहले वक्ष में स्थित प्राण के रूप में प्रकट होता है। प्राण की गति तथा उसके जागरण से जो पहली शारीरिक अनुभूति होती है, वह श्वेत प्रकाश के प्रवाह या एक प्रकार की चुनचुनाहट या गले, छाती और फेफड़ों में जलन की अनुभूति के रूप में होती है। हालाँकि जब एकाग्रता अधिक गहरी और तीव्र हो जाती है तब प्राण की अनुभूति अधिक तीक्ष्ण होती है और अनुभूति में परिवर्तन आ जाता है।

अतीन्द्रिय मार्ग

प्राणिक सजगता के लिए दूसरी कुंजी अतीन्द्रिय मार्ग है। इसका तात्पर्य शरीर के अंदर के किसी ऐसे मार्ग से है, जिसके माध्यम से सजगता, श्वास और प्राण को एक संयुक्त शक्ति की धारा के रूप में संचालित किया जा सकता है। अतीन्द्रिय मार्ग एक सीमित धारणा नहीं है; यह शरीर के अन्दर किसी भी भाग में कहीं से भी आने या जाने के लिए बनाया जा सकता है। एक बार जब इस मार्ग का अन्तर्दर्शन हो जाए तो उज्जायी प्राणायाम का उपयोग कर अतीन्द्रिय श्वास को वहाँ ले जाया जा सकता है, और इससे वास्तविक प्राणिक अन्तरण होगा। अतीन्द्रिय श्वसन प्राण विद्या का एक अभिन्न अंग है। इसमें इतनी दक्षता प्राप्त कर लेनी चाहिए कि यह अत्यन्त सूक्ष्म और सहज हो जाए।

प्राण विद्या के अभ्यास के क्रम में एक के बाद एक अनेक अतीन्द्रिय मार्ग बनाए जाते हैं ताकि प्राणों का वितरण शरीर के विभिन्न भागों में किया जा सके। कुछ मार्ग लम्बे और जटिल होते हैं, जबकि दूसरे छोटे और सरल। प्राण विद्या का वास्तविक अभ्यास प्रारम्भ करने के पूर्व, प्राण के जागरण के उद्‌देश्य से विभिन्न महत्त्वपूर्ण अतीन्द्रिय मार्गों को शुद्ध करना और उन्हें खोलना आवश्यक होता है।

सबसे पहले खोला और अनुभव किया जाने वाला अतीन्द्रिय मार्ग सामने के हिस्से में नाभि के पास मणिपुर क्षेत्र और गले के पास विशुद्धि क्षेत्र के बीच होता है। इस मार्ग का उपयोग अजपा जप की प्रारम्भिक अवस्थाओं में किया जाता है। सामने के सम्पूर्ण अतीन्द्रिय मार्ग का विस्तार मूलाधार से आज्ञा तक बिल्कुल उसी प्रकार होता है जिस प्रकार सुषुम्ना नाड़ी का विस्तार मेरुदण्ड में होता है। मेरुदण्ड में चक्रों को सक्रिय करने वाले प्रेरण-बिन्दु, चक्र क्षेत्रम् सामने वाले इसी मार्ग में स्थित होते हैं।

सुषुम्ना नाड़ी सबसे शक्तिशाली अतीन्द्रिय मार्ग है, जो मेरुदण्ड के मध्य से सीधे आरोहण करती है। इसी मार्ग के द्वारा जाग्रत कुण्डलिनी मूलाधार से सहस्रार तक जाती है। मुख्य चक्र और उनके जागरण की अनुभूतियाँ इसी मार्ग में होती हैं। मेरुदण्ड में स्थित चक्र-स्थलों को चक्र शरीर के नाम से जाना जाता है।

सुषुम्ना के बाद इड़ा एवं पिंगला नाड़ियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अतीन्द्रिय मार्ग हैं। हालाँकि केवल पिंगला का उपयोग अतीन्द्रिय मार्ग के रूप में किया जाता है। यदि इड़ा का उपयोग भी इस प्रकार किया जाता, तो मानसिक शक्तियाँ प्रबल हो जातीं, जिससे प्राणिक शक्ति तथा मानसिक स्थिरता में कमी आ जाती।

आज्ञा चक्र इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियों का मिलन स्थल है, जहाँ से वे चेतना की एक धारा के रूप में आगे बढ़ती हैं। आज्ञा के बाद प्राण एवं चेतना में कोई अंतर नहीं रह जाता, केवल ब्रह्माण्डीय सजगता ऊपर उठती जाती है।

प्राण विद्या का अभ्यास साधक को पिंगला-मार्ग से ऊपर जा रहे प्राण के प्रवाह और उसके रंग की अनुभूति करने योग्य बना देता है। कभी-कभी यह उषा-काल में मकड़े की जाली के रेशे के समान चमकीला और पारभासक प्रतीत होता है। किसी को यह रुपहले धागे पर झूलती हुई प्रकाश की नन्हीं

चमकीली बून्दों या चमकती हुई मणियों के समान दिखाई दे सकता है। ये सूक्ष्म और रहस्यमय चक्र सुषुम्ना के समानान्तर स्थित होते हैं। ये अनुभूतियाँ धीरे-धीरे तब प्राप्त होने लगती हैं जब व्यक्ति योगाभ्यासों से स्वयं को शुद्ध कर लेता है। इनसे यह संकेत मिलता है कि व्यक्ति प्रगति कर रहा है और प्राण विद्या में निपुणता प्राप्त करना आरम्भ कर रहा है।

अतीन्द्रिय केन्द्र

सुषुम्ना के समानान्तर विशिष्ट स्थलों पर स्थित प्राण के सूक्ष्म भँवर अतीन्द्रिय केन्द्र या चक्र हैं जो प्राण की सजगता की तीसरी कुंजी हैं। प्राण विद्या के अनुसार प्राण की उत्पत्ति मूलाधार में होती है, मणिपुर में वह संचित रहता है, विशुद्धि में उसका शुद्धिकरण होता है और आज्ञा चक्र से वह वितरित होता है। इन चार चक्रों का प्राण विद्या में उपयोग किया जाता है। साधक को इस बात के प्रति सजग हो जाने की आवश्यकता है कि प्राण ऊर्जा की क्रियाओं को प्रत्येक चक्र किस प्रकार प्रभावित करता है और विभिन्न चक्रों के जाग्रत होने पर कैसी अनुभूतियाँ होती हैं। यदि प्राण विद्या की विधियों का परिश्रम के साथ अभ्यास किया जाये तो चक्रों को शीघ्रतापूर्वक जाग्रत किया जा सकता है। यह सहज ही नहीं हो जायेगा; इसके लिए साधक को प्राण को प्रेरित, प्रभावित और नियन्त्रित करने की आवश्यकता होती है, और यह सावधानीपूर्वक धीरे-धीरे किया जाना चाहिए।

अतीन्द्रिय ध्वनि

अतीन्द्रिय ध्वनि प्राण की सजगता की चौथी कुंजी है। योग के अनुसार व्यक्ति की चेतना के अंदर तो ध्वनि उत्पन्न होती ही है, यह बाहर भी व्यक्त होती है। अतीन्द्रिय ध्वनि की सजगता का विकास करने के लिए श्रवण-बोध को अन्तर्मुख कर लेना चाहिए ताकि बाहरी ध्वनियाँ नहीं सुनाई दें। जब एकाग्रता पूरी तरह मस्तिष्क के केन्द्र में स्थिर हो जाती है तब मस्तिष्क के अंदर अतीन्द्रिय आकाश, चिदाकाश की सजगता विकसित हो जाती है। इसके बाद उस आकाश में सहज ही उत्पन्न होने वाली किसी भी ध्वनि को सुना जा सकता है।

योग शास्त्रों में आंतरिक ध्वनि की अनुभूति जिन वाद्यों के सदृश होती है, उनके अंतर्गत मधुमक्खियों की भनभनाहट, घंटियों की टनटनाहट,

शंख, बाँसुरी, वीणा, झांझ, ढोल-मृदंग और बादल का वर्णन आता है। अतीन्द्रिय ध्वनि सूक्ष्म रूप में आरंभ होती है और इसकी तीव्रता धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। घंटियों की टन्-टन् या वीणा के स्वर वास्तव में सुनाई दे सकते हैं, भले ही बाहर कोई घण्टी या वीणा नहीं बज रही हो। अतीन्द्रिय ध्वनि की अनुभूति किसी बाहरी वस्तु या वाद्य की अनुपस्थिति में पूर्णत: आंतरिक होती है।

आंतरिक ध्वनि को चेतन सजगता के स्तर पर लाने के बाद ध्वनि के कम्पन की ऐसी अनुभूति होती है मानो हम किसी गहरी गुफा या सुरंग के अंदर हों और उसके दूसरे छोर पर कोई संगीत, ढोल या बाँसुरी बजा रहा हो। ध्वनि धीमे स्वर में आरम्भ होती है, जो धीरे-धीरे बढ़ती जाती है और फिर कुछ देर बाद धीरे-धीरे समाप्त भी हो जाती है। इस अवधि के अन्त में साधक अन्तरतम नाद, ॐ की ध्वनि के प्रति सजग हो जाता है।

अतीन्द्रिय प्रतीक

एकाग्रता के अभ्यास के माध्यम से जिस अतीन्द्रिय प्रतीक की अनुभूति होती है, वह प्राण की सजगता के लिए पाँचवीं कुंजी है। ऐसी कोई भी वस्तु प्रतीक हो सकती है जिस पर मन स्थिर हो सके। यह एक अमूर्त प्रतीक, मण्डल, मोमबत्ती की लौ, कोई प्राकृतिक दृश्य, सूर्य, चन्द्रमा, तारा, बादल, पर्वत, झील, फूल, सीपी या ध्यान आकृष्ट करने वाली कोई भी वस्तु हो सकती है। प्रतीक पर ध्यान एकाग्र करने पर धीरे-धीरे उसे आंतरिक रूप से भी उतनी ही स्पष्टता से देखने की क्षमता विकसित हो जाती है जितना कि उसे बाह्य रूप से देखा जा सकता है।

मन्त्र दीक्षा के समय भी एकाग्रता की सुविधा के लिए एक विशेष प्रतीक दिया जा सकता है। प्रतीक का चयन व्यक्ति के व्यक्तित्व और उसकी राशि के आधार पर किया जाता है। अतीन्द्रिय प्रतीक पर ध्यान साधक को प्राणायाम के उच्च अभ्यासों के लिए तैयार करता है और उसे चेतना के आंतरिक आयामों में प्रवेश करने योग्य बनाता है।

प्राण एवं मंत्र

सम्पूर्ण सृष्टि में ध्वनि एवं प्राण के बीच एक अन्तर्निहित सम्बन्ध है। सृष्टि के प्रारम्भ में जब प्रसुप्त चेतना के क्षेत्र में पहली हलचल हुई और महाप्राण प्रकट हुआ तब ध्वनि भी अस्तित्व में आ गयी। ब्रह्माण्डीय ऊर्जा की प्रथम गति के साथ ही प्रथम ध्वनि, ॐ की उत्पत्ति हुई। इस अतीन्द्रिय ध्वनि को नाद भी कहते हैं, जो उच्चतम कम्पन वाली ध्वनि होती है। नाद से ही देश, काल और वस्तु की उत्पत्ति हुई। वैज्ञानिक संदर्भ में इसे 'बिग बैंग', ब्रह्माण्ड की सृष्टि के समय हुए भयंकर विस्फोट की ध्वनि से सम्बद्ध किया जा सकता है।

तन्त्रोक्तं देवी सूक्तम् के छठे श्लोक में शक्ति के एक पक्ष का वर्णन *'विष्णुमायेति शब्दिता'* के रूप में किया गया है, जिसका सम्बन्ध 'शब्द' के रूप में प्रकट हुई आद्या शक्ति से है। बाइबिल में भी कहा गया है, "प्रारम्भ में शब्द उत्पन्न हुआ, और शब्द ईश्वर के साथ था।" प्रकट होने के लिए अव्यक्त तथा अविभाज्य को रूप और आकार ग्रहण करना पड़ता है। ध्वनि इसका पहला स्वरूप थी और यह ऊर्जा या प्राण के माध्यम से अस्तित्व में आयी। चूँकि सृजन की प्रक्रिया में प्राण एवं नाद का घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए सूक्ष्म ब्रह्माण्डीय स्तर पर भी ध्वनि ही प्राण शक्ति के संचरण का सर्वोत्तम साधन है। इसीलिए प्राण विद्या में प्राय: आत्मिक शक्ति सम्पन्न ध्वनियों के रूप में मंत्रों का उपयोग किया जाता है।

मंत्र क्या हैं?

मन के विभिन्न स्तरों में अस्तित्व के स्रोत का अन्वेषण करने के क्रम में योगियों ने ध्यान की उच्च अवस्थाओं में ब्रह्माण्डीय ध्वनियों, अर्थात् मंत्रों की खोज की। सामान्यत: ध्यान में भौतिक स्तर से आगे जाना कठिन होता है। कुछ

प्रयास करके मन की वृत्तियों को नियंत्रित करने के बाद मानसिक और बौद्धिक स्तरों तक पहुँचा जा सकता है। हालाँकि आत्मा के क्षेत्र तक बहुत कम पहुँच पाते हैं। योगी उस स्तर तक जा चुके हैं और आत्मा के शाश्वत आलोक की अनुभूति प्राप्त कर चुके हैं। उस अवस्था में ऐसे कम्पनों को सुना जा सकता है जिन्हें इन्द्रियों द्वारा सुन पाना सम्भव नहीं है।

सामान्यत: एक विशेष परास के अन्तर्गत आने वाली ध्वनियों को ही सुना जा सकता है। यदि ध्वनि की आवृति इस परास से अधिक या कम हो तो उसे नहीं सुना जा सकता। यद्यपि व्यक्ति चेतना की गहन अवस्था में ग्रहणशील हो जाता है तथा बहुत-कुछ सुनने और देखने लगता है। जो वह सुनता है, वे मंत्र होते हैं और जो वह देखता है, वे यंत्र होते हैं। यदि कोई कुछ अक्षरों को मिलाकर उनका उच्चारण करने लगे तो वह मंत्र नहीं हो जायेगा। योगियों ने जिन मंत्रों की खोज की, वे व्यक्तित्व के सभी आयामों में विशेष आवृत्तियों वाली स्पन्दनशील ध्वनियाँ थीं। उन्होंने प्रत्येक ध्वनि को विशेष चक्र से भी सम्बद्ध पाया। उदाहरण के लिए, 'ॐ' मन्त्र को आज्ञा चक्र के बीज मंत्र के रूप में, 'हं' को विशुद्धि, 'यं' को अनाहत चक्र, 'रं' को मणिपुर चक्र, 'वं' को स्वाधिष्ठान और 'लं' को मूलाधार के बीज मंत्रों के रूप में पहचाना गया।

योगियों ने चेतना की विशिष्ट अवस्था में पाया कि एक विशेष ध्वनि के उच्चारण से चक्र प्रभावित होते हैं। यह प्रभाव एक लम्बी रस्सी को वृक्ष के तने से बाँधकर उसे हिलाने से उत्पन्न प्रभाव के समान होता है – तरंगें रस्सी के एक छोर से दूसरे छोर तक चलती जाती हैं। इसी प्रकार जब एक विशेष आवृत्ति वाली ध्वनि को बोलकर या मानसिक रूप से दोहराया जाता है तब ध्वनि तरंगें चक्र तक पहुँचती हैं और उसे सक्रिय बनाती हैं। इसलिए योगियों ने कुछ ध्वनियों को एक साथ संयुक्त कर दिया ताकि वे चेतना की एक विशेष अवस्था उत्पन्न कर सकें। इसी प्रकार 'ॐ नम: शिवाय', 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' जैसे मंत्रों की उत्पत्ति हुई। चेतना के विभिन्न आयामों को जाग्रत करने तथा चेतना के विशिष्ट क्षेत्रों में ज्ञान एवं रचनात्मकता का विकास करने के लिए मंत्र आध्यात्मिक साधना का अंग बन गये।

प्रत्येक मंत्र के दो विशिष्ट गुण होते हैं, जिन्हें संस्कृत में वर्ण एवं अक्षर कहा जाता है। वर्ण का अर्थ 'रंग' और अक्षर का अर्थ 'आकार' होता है। अक्षर का एक अर्थ 'अविनाशी' भी होता है। जैसे ही किसी मंत्र का उच्चारण

होता है, वह शाश्वत आकाशीय अभिलेख का एक अंग बन जाता है। हर मंत्र के छः भाग होते हैं। सबसे पहले ऋषि होते हैं, जिन्हें उस मंत्र के माध्यम से आत्म-ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्होंने उस मंत्र को दूसरों को दिया। उदाहरण के लिए, ऋषि विश्वामित्र गायत्री मंत्र के ऋषि हैं। हर मंत्र एक छंद में होता है; यह मंत्र का दूसरा भाग है। तीसरा, मंत्र के एक इष्ट देवता होते हैं। चौथा, इसका सार तत्त्व होता है, बीज। पाँचवाँ भाग इसकी अपनी शक्ति है। छठा है मंत्र में छुपा इसका कीलक, जो चेतना को उन्मुक्त करता है। सतत् और दीर्घ उच्चारण के द्वारा चैतन्य का अनावरण होता है।

अधिकतर लोग मंत्र की शक्ति को नहीं समझते और सोचते हैं कि मनचाहे तरीके से उसका उपयोग किया जा सकता है। कुछ लोग किसी शब्द या नाम का मंत्र के रूप में उपयोग करते हैं। जैसे, कोई व्यक्ति किसी महान् व्यक्ति के प्रति श्रद्धावान् हो और उसके नाम का मंत्र बनाना चाहता हो। वह उस व्यक्ति को अपने गुरु या ईश्वर के रूप में मानता हो और उसके प्रति अत्यधिक भावुकता तथा प्रेम से ओतप्रोत हो। वह उसके नाम को दुहराते रहना चाहता हो, फिर भी वह नाम केवल भावाविष्ट ध्वनि है, प्राण शक्ति से आविष्ट मंत्र नहीं।

मंत्र की शक्ति का अनुभव करने के लिए मंत्र-गुरु से दीक्षा प्राप्त करना आवश्यक होता है। कहीं से सुने हुए या किसी पुस्तक से प्राप्त हुए शब्द या शब्द-खण्ड का उच्चारण पर्याप्त नहीं होता है। मंत्र के लिए सही उच्चारण, स्वर-शैली, एकाग्रता तथा मंत्र से सम्बद्ध मानसिक छवि या स्वरूप की स्थापना आवश्यक होती है। इसके इष्ट, बीज, शक्ति और कीलक को सिद्ध करना होता है, और जिसने इन सबको सिद्ध कर लिया है वही सफलतापूर्वक इसकी शक्ति का उपयोग कर सकता है। इसलिए दीक्षा पर बल दिया जाता है। हालाँकि कुछ सार्वभौमिक मंत्र होते हैं, जैसे, ॐ या गायत्री, जिसने दीक्षा प्राप्त नहीं की है वह इन मंत्रों का उपयोग कर सकता है।

प्राण एवं मंत्र

ध्वनि ऊर्जा का एक रूप है जिसकी आवृत्ति, तारता, प्रबलता और स्वरशैली होती है, साथ-ही उसकी सूक्ष्म विशेषताएँ होती हैं। विज्ञान के अनुसार ध्वनि एक विशेष आवृत्ति का कम्पन है, और इसमें जीव में भौतिक परिवर्तन लाने की क्षमता होती है। कुछ कम्पन हानिकारक होते हैं, जबकि दूसरे लाभदायक

होते हैं। ध्वनि को एक आवृति पर इतना केन्द्रित किया जा सकता है कि वह किसी वस्तु को छिन्न-भिन्न कर दे। मात्र ध्वनि के उपयोग से ठोस धातु में छिद्र किये जा सकते हैं। ऐसा माना जाता है कि स्टोनहेन्ज, इस्टर आइलैण्ड और माया की विशाल शिलाओं को ध्वनि के सिद्धान्त के आधार पर ही उनके स्थान पर ले जाया गया था। आज की सभ्यता इस उपलब्धि से वंचित है। अनेक गुह्य विद्याओं का आधार मंत्र विज्ञान ही रहा है। मंत्र की शक्ति और सूक्ष्म ध्वनि की आवृत्तियों की जानकारी का उपयोग युगों से प्राचीन सभ्यताओं के द्वारा आन्तरिक चेतना को जाग्रत करने तथा प्रकृति की बाह्य शक्तियों पर प्रभाव डालने के लिए किया जाता रहा है।

प्राण-साधना में मंत्र के उपयोग के पीछे ध्वनि एवं ऊर्जा के अन्तर्निहित सम्बन्ध का सिद्धान्त है। ऊर्जा की प्रत्येक गति से ध्वनि उत्पन्न होती है और प्रत्येक ध्वनि में ऊर्जा स्थित होती है। मंत्रों के उच्चारण से प्राण प्रेरित होते हैं, और पहले से विद्यमान प्राण-धाराओं की दिशा या तो बदल जाती है या प्रबल हो जाती है, ताकि मन और प्रत्यक्ष ज्ञान में परिवर्तन आये। यह कम्पन-क्षेत्र, प्राणमय कोश में सामंजस्य लाता है। मंत्रों में उच्च अतीन्द्रिय आवेश होते हैं और ये मन की गहराइयों में प्रवेश करने में सक्षम होते हैं। इस प्रकार सामान्य शब्दों के विपरीत, जो केवल मनोमय, प्राणमय और अन्नमय कोशों पर असर डालते हैं, मंत्र विज्ञानमय एवं आनन्दमय कोशों को भी प्रभावित करने में सक्षम होते हैं। मंत्र चेतन मन के स्तर पर नहीं, बल्कि मन की गहराइयों में कार्य करते हैं। एक बार जब चेतना के गहन स्तरों पर सामंजस्य की अनुभूति प्रारम्भ हो जाती है तब यह बाह्य और आन्तरिक, दोनों क्षेत्रों में संचरित होने लगती है। यही कारण है कि बहुत से लोग कीर्तन करते समय उल्लास, आन्तरिक बल और प्रेरणा का अनुभव करते हैं।

वैज्ञानिक मतानुसार मंत्रों का उच्चारण स्वैच्छिक स्नायु तंत्र को नियमित एवं संतुलित बनाता है। यह समकालिक श्वसन को सुगम बना देता है, जिसका सीधा परिणाम होता है हृदय-फुफ्फुस अनुनाद। यह अनुनाद स्वैच्छिक संतुलन का संकेतक है। समूह में किये जाने वाले कीर्तन का सम्मोहक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि उस समय हृदय-फुफ्फुस में सुसंगति होने पर हृदय का विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र अत्यधिक प्रबल और सुस्पष्ट हो जाता है। किसी व्यक्ति के हृदय का प्रबल और सुसंगत विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र दूसरों में सुसंगत समकालिकता उत्पन्न करता हुआ हृद्प्रदेश को प्रभावित कर सकता

है। सामूहिक कीर्तन के दौरान सभी लोगों के विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र एक-दूसरे के साथ समकालिक होते हैं।

मंत्र का उच्चारण प्राण की अनावश्यक गति को अवरुद्ध कर देता है ताकि ऊर्जा सुरक्षित रहे तथा मन का बिखराव नियन्त्रित रहे। एकाग्रता सघन हो जाती है और मन का उपयोग उच्च अवरोहणों के लिए किया जा सकता है। इसी लिए जब मंत्र के साथ प्राणायाम किया जाता है तब वह अधिक लाभप्रद होता है। अंकों की गिनती से भी एकाग्रता प्राप्त हो सकती है, और इसी के साथ प्राणायाम के अभ्यास आरंभ कराये जाते हैं। हालाँकि जब मंत्र के साथ अभ्यास कराया जाता है तब चेतना ऊँचे स्तर पर चली जाती है और एकाग्रता भी बेहतर हो जाती है, जिससे पूरा अभ्यास विशिष्ट स्तर का हो जाता है।

वास्तव में प्राणायाम एवं मंत्र का एक शक्तिशाली संगठन बनता है। दोनों एक साथ शीर्ष पर आणविक अस्त्र लगे हुए प्रक्षेपक के समान होते हैं। प्रक्षेपक आणविक अस्त्र का वाहन होता है; प्राण प्रक्षेपक होता है और मंत्र शीर्ष पर लगा हुआ आणविक अस्त्र। जब प्राण की सहायता से मंत्रों को शरीर के विभिन्न भागों में ले जाया जाता है तब वे शारीरिक संरचना और क्रिया में वास्तविक परिवर्तन ला सकते हैं। प्राण विद्या में, विशेषकर चिकित्सा के लिए मंत्रों का उपयोग दूसरों में प्राण-शक्ति का अन्तरण करने के लिए किया जाता है। यद्यपि इस प्रकार की चिकित्सा केवल वे लोग कर सकते हैं जो मंत्र साधना द्वारा मंत्र-सिद्धि प्राप्त कर चुके हों। अन्य लोग चिकित्सा हेतु मंत्र-शक्ति को प्रभावशाली ढंग से प्रकट नहीं कर पायेंगे।

छोटे-बड़े, विभिन्न अर्थों वाले अनेक मंत्र होते हैं। तांत्रिक मंत्र विशेष प्राणिक शक्तियों का वहन करते हैं और इनका उपयोग सुनिश्चित नियमों के अनुसार एवं विशेष उद्देश्यों के लिए होना चाहिए। इन्हें तांत्रिक गुरु के मार्गदर्शन में ही सीखना चाहिए। ज्वर उतारने, विष का प्रभाव दूर करने, रोगों से मुक्त करने, संज्ञाशून्यता लाने, बाधाओं को दूर करने, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने, किसी को आकृष्ट करने, स्वास्थ्यवर्धन, सम्पत्ति प्राप्ति, अच्छी नींद लाने, विवाह, संतान और दीर्घ आयु के लिए अलग-अलग मंत्र होते हैं। हालाँकि इन मंत्रों के समुचित उपयोग के लिए इन्हें सावधानीपूर्वक सीखना आवश्यक है। सार्वभौमिक मंत्र, जैसे, गायत्री मंत्र, दुर्गा मंत्र या महामृत्युंजय मंत्र का प्रयोग कभी-कभी उपचार के पहले, उसके दौरान या बाद किया जाता है। स्पर्श चिकित्सा द्वारा शरीर के किसी विशेष अंग का

उपचार करने के लिए प्रभावित अंग पर हाथ फेरते हुए मंत्र का उच्चारण किया जाता है।

प्राणायाम में मंत्र का उपयोग

पूरक, कुम्भक तथा रेचक को लयबद्ध करने के लिए प्राणायाम के साथ विशेष मंत्रों का उपयोग किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में मंत्र के मानसिक उच्चारण की सहायता से गिनती और अनुपात को कायम रखा जाता है। इस प्रयोजन के लिए गुरु मंत्र या सार्वभौमिक मंत्र सोऽहं या ॐ का उपयोग किया जा सकता है। यद्यपि गायत्री मंत्र इसके लिए सर्वोत्तम है, क्योंकि यह प्राणायाम में होने वाले श्वसन के तदनुरूप होता है।

गायत्री मंत्र ब्रह्माण्डीय प्राण का प्रतिरूप होता है। यह चौबीस अक्षरों से बना है जिसमें प्राण का सम्पूर्ण स्वरूप समाया हुआ है। पूरक के साथ चौबीस अक्षरों का उच्चारण करना आवश्यक क्षमता का आदर्श माना जाता है। कुम्भक और रेचक को इसी प्रकार उच्चारण के साथ किया जा सकता है। हर व्यक्ति प्राणायाम के अभ्यास के आरंभ में इस प्रकार गायत्री मंत्र का उपयोग नहीं कर सकता है, लेकिन नियमित अभ्यास के साथ फेफड़ों की क्षमता बढ़ती जाती है, और तब गायत्री मंत्र को आराम से श्वास के साथ समकालिक बनाया जा सकता है।

इस प्रकार किया गया गायत्री प्राणायाम अपने आप में एक पूर्ण अभ्यास होता है। ॐकार या प्रणव प्राणायाम को भी अनेक शास्त्रों में पूर्ण अभ्यास माना जाता है। प्रत्येक प्राणायाम की गति को बनाये रखने के लिए और उसकी अनुभूति को अधिक गहरा बनाने के लिए उसके साथ ॐ का उच्चारण प्रभावकारी ढंग से किया जा सकता है। स्वामी शिवानन्द जी ने इस प्रकार ॐ का उपयोग करने का सुझाव दिया है, किन्तु विशेष साधनाओं के लिए बीज मंत्रों का उपयोग भी प्राणायाम के साथ किया जाता है। इसे हमेशा गुरु के निर्देशों के अन्तर्गत ही करना चाहिए। जब अजपा जप का अभ्यास उज्जायी प्राणायाम के साथ किया जाता है तब श्वास की स्वाभाविक ध्वनि, सोऽहं का उच्चारण मंत्र के रूप में किया जाता है।

जब प्राणायाम के साथ मंत्रों का उपयोग किया जाता है तब अभ्यास प्राणमय कोश की ओर निर्दिष्ट नहीं होता, बल्कि इससे गहन एकाग्रता की स्थिति आती है, जो राजयोग में वर्णित ध्यान और समाधि की ओर अग्रसर करती है।

गायत्री मंत्र

चौबीस अक्षरों वाले गायत्री मंत्र का मौलिक स्वरूप जो ऋग्वेद (3:62:11) में विद्यमान है, वह इस प्रकार है –

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं ।
भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

इसका भावार्थ इस प्रकार है – "ॐ, हम आध्यात्मिक चेतना के आराध्य सूर्य के दिव्य आलोक का ध्यान करते हैं। हम कामना करते हैं कि वे हमारे आध्यात्मिक बोध को शक्ति प्रदान करें।"

प्रारंभ में गायत्री के मौलिक स्वरूप का प्रयोग करना चाहिए। पूरक, कुम्भक और रेचक को गायत्री के मानसिक उच्चारण के अनुसार समायोजित कर लेना चाहिए। प्रारंभिक प्राणायाम के लिए एक गायत्री मंत्र का उच्चारण एक पूरक के साथ होना चाहिए। कुम्भक के दौरान मंत्र का उच्चारण दो बार होना चाहिए। रेचक के समय भी मंत्र को दो बार दुहराना चाहिए। प्राणायाम के उच्च अभ्यास के लिए इस अनुपात को धीरे-धीरे बढ़ाया जाता है।

गायत्री केवल एक सूत्र या शब्दों का संयोजन नहीं है। वेदों और उपनिषदों में बारम्बार कहा गया है, "ॐ नाद है; गायत्री प्राण है।" गायत्री की उत्पत्ति ॐ से हुई है। ध्वनि सिद्धान्त के अन्तर्गत ॐ नाद का प्रतीक है। सृजन के क्रम में इस ध्वनि का और आगे विकास हुआ। ॐ मंत्र का विकसित स्वरूप ही गायत्री है। हमारी परम्परा के गुरुओं का कहना है कि मूल मंत्र ॐ ही है, क्योंकि यही सार्वभौमिक बीज मंत्र है। यह अत्यन्त शक्तिशाली आवाहन है और कभी-कभी साधक इसके फलस्वरूप होने वाली अनुभूति को ग्रहण करने के लिए निपुण या तैयार नहीं रहता है। इसलिए मनीषियों ने ॐ के मृदु स्वरूप के अन्वेषण हेतु चिन्तन-मनन किया, और मंत्र के रूप में गायत्री प्रकट हुई, जिसका अभ्यास सामान्य लोग बिना किसी प्रतिकूल प्रभाव के कर सकते हैं।

वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार प्राण के तीन रूप होते हैं। अतः प्राण की इष्ट देवी के रूप में गायत्री को उषाकाल में एक सरल, अबोध बालिका के रूप में; दोपहर में एक आकर्षक, पूर्णरूपेण विकसित नवयौवना के

रूप में, और संध्याकाल में ज्ञान से परिपूर्ण प्रौढ़ा विदुषी के रूप में देखा जाता है। प्रात:काल गायत्री का रंग उदीयमान सूर्य के समान लाल; दोपहर में सुनहला और संध्याकाल में धूम्र-धूसर जैसा होता है। ये प्राण की विशेषताएँ हैं, जिन्हें गायत्री के विभिन्न रूपों में दर्शाया गया है। गायत्री के साधक प्रतिदिन अपने तीन संध्या वन्दनों में उनका इन्हीं रूपों में अन्तर्दर्शन कर सकते हैं।

कुछ लोगों का मानना है कि गायत्री मंत्र बाह्य सूर्य को अर्पित होता है, लेकिन अन्ततोगत्वा यह अन्तस् में देदीप्यमान सूर्य को ही अर्पित होता है। आन्तरिक सूर्य को दीप्त रहना चाहिए, ताकि चेतना प्रबुद्ध हो जाये। बाह्य आकाश में पहले अन्धकार रहता है, जिसे टिमटिमाते हुए तारे कुछ कम कर देते हैं। उसके बाद क्षितिज पर प्रकाश की एक हल्की आभा प्रकट होती है, जो ऊषा के आगमन की सूचना देती है, और अन्तत: सारे संसार को आलोकित एवं तेजोमंडित करता हुआ सूर्य प्रकट होता है। यह प्रक्रिया जैसे बाहरी क्षितिज पर होती है, वैसे ही आन्तरिक क्षितिज पर भी होती है। आन्तरिक रूप में भी पहले अन्धकार रहता है। कभी-कभी कुछ दृश्य दिखाई देते हैं, जो तारों के समान होते हैं। उसके बाद मन के क्षितिज पर प्रकाश की उपस्थिति की अनुभूति होती है, मानो सूर्य उदय होने वाला हो। प्रकाश का प्रकट होना ही गायत्री कहलाता है। यह उस सूर्य का प्रतीक है जो सम्पूर्ण जगत् को और अन्तरात्मा को भी प्रकाशित करता है। यह प्रकाशित अन्तरात्मा फिर अस्तित्व के सभी स्तरों को तथा चेतना को प्रकाशित करती है। बाहर का सूर्य केवल स्थूल जगत् को प्रकाशित करता है, लेकिन जब अन्तस् प्रबुद्ध होता है तब अस्तित्व के सभी स्तर बोधगम्य हो जाते हैं।

गायत्री का उल्लेख 'वेद माता' के रूप में होता है और गायत्री मंत्र मानवजाति के ग्रन्थागार के प्राचीनतम साहित्य, ऋग्वेद में दृष्टिगत होता है। इसका तात्पर्य यह है कि दीर्घकाल से मनुष्य गायत्री मंत्र का पाठ करता आ रहा है। इस मंत्र के पाठ पर कोई निषेध नहीं है, क्योंकि इसका प्रभाव हितकर होता है। भारत में आठ वर्ष के बच्चों को उपनयन संस्कार के अनुष्ठान के साथ गायत्री मंत्र, प्राणायाम एवं सूर्य नमस्कार के अभ्यास की दीक्षा दी जाती है। गायत्री मंत्र का नियमित अभ्यास प्राणमय कोश को समन्वित और जाग्रत करने में सहायता करता है, ताकि प्राणायाम के उन्नत अभ्यास और प्राण विद्या जैसी अन्य प्राणिक विधियाँ अधिक प्रभावकारी हों।

ॐकार प्राणायाम

उपनिषद् कहते हैं कि ॐ आद्या ध्वनि है। प्रत्येक वस्तु ॐ से ही उत्पन्न हुई है और प्रलयकाल में पुनः ॐ में समा जायेगी। माण्डूक्योपनिषद् (श्लोक 1) में कहा गया है –

ओमित्येतदक्षरमिद ँ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं
भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव ।
यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ॥

ॐ शब्द ब्रह्माण्ड है। प्रत्येक वस्तु जो भूत, वर्तमान और भविष्य में विद्यमान है, वह ॐ है, और जो त्रिकालातीत है, वह ॐ है।

ॐ मंत्र का उपयोग विभिन्न अभ्यासों में विभिन्न प्रकार से किया जाता है। शास्त्रों में प्राणायाम के साथ इसके उपयोग के लिए विशेष निर्देश दिये गये हैं। योग चूड़ामणि उपनिषद् (श्लोक 101–102) में ॐकार या प्रणव प्राणायाम का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

रेचकः पूरकश्चैव कुम्भकः प्रणवात्मकः ।
प्राणायामो भवेदेवं मात्राद्वादशसंयुतः ॥
मात्राद्वादशसंयुक्तौ निशाकरदिवाकरौ ।
दोषजालमबध्नन्तौ ज्ञातव्यौ योगिभिः सदा ॥

पूरक, कुम्भक और रेचक स्वयं प्रणव हैं। प्राणायाम का इस प्रकार अभ्यास बारह चक्रों तक करना चाहिए। इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों के द्वारा बारह चक्र अशुद्धियों के जाल को खोल देते हैं। योगियों को यह सदा ज्ञात होना चाहिए।

उपर्युक्त श्लोकों में पूरक, कुम्भक और रेचक को प्रणव की ध्वनियों– 'अ', 'उ' एवं 'म' के साथ समकालिक करने का निर्देश दिया गया है ताकि श्वास, प्राण एवं चेतना में तालमेल बैठाकर उनके परस्पर सम्बन्ध का अनुभव किया जा सके। इस प्रकार, पूरक करते समय इड़ा मार्ग या बायीं नासिका से श्वास के साथ 'अ' की ध्वनि को अन्दर लेना है। इस दौरान 'अ' ध्वनि की सभी सम्बद्धताओं – चेतन अवस्था तथा रजो गुण के साथ उसका मनन करना चाहिए। कुम्भक के समय अवचेतन अवस्था और सत्त्व गुण के साथ 'उ' ध्वनि

के सम्बन्ध का ध्यान करना चाहिए। रेचक के समय श्वास के साथ 'म' ध्वनि को पिंगला मार्ग या दायीं नासिका से बाहर की ओर ले जाना चाहिए। इस समय 'म' ध्वनि का मनन अचेतन अवस्था और तमो गुण से सम्बद्ध करके करना चाहिए। इसी प्रक्रिया को दायीं ओर से भी किया जाता है ताकि एक चक्र पूरा हो।

शरीर और मन को संतुलित करने के लिए तथा प्रणव पर ध्यान करने की तैयारी के लिए ॐकार प्राणायाम के बारह चक्रों का अभ्यास करने का परामर्श दिया जाता है। ध्यान के उद्देश्य से यह प्राणायाम समवृत्ति प्राणायाम (अध्याय 16 – 'प्रारंभिक श्वसन अभ्यास') की तरह दोनों नासिकाओं से एक साथ किया जा सकता है। हालाँकि नाड़ियों के शुद्धिकरण के लिए इसे दोनों नासिकाओं से बारी-बारी करना चाहिए, जैसे नाड़ी शोधन प्राणायाम (अध्याय 19 – 'नाड़ी शोधन प्राणायाम') में किया जाता है। दोनों नासिकाओं से बारी-बारी से बारह चक्रों का अभ्यास करने पर इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों के अवरोध तथा उनकी अशुद्धियाँ दूर हो जायेंगी। इसके फलस्वरूप स्वास्थ्य, सामंजस्य तथा दीर्घायु की प्राप्ति होगी। इसलिए उपनिषद् कहता है कि योगियों को सदा इस अभ्यास का ज्ञान होना चाहिए, ताकि वे इसे नियमित रूप से करें और इसका लाभ प्राप्त कर सकें ।

बीज मंत्र

बीज में सृष्टि अव्यक्त अवस्था में स्थित होती है। बीज के अन्दर व्यक्त होने की सम्भावना छुपी रहती है। यदि बीज को अनुकूल परिस्थितियों में बोया जाता है, तो यह एक पौधे के रूप में प्रस्फुटित होता है। उसी प्रकार बीज मंत्र एक बीज के समान है, जो जप के अभ्यास के क्रम में विविध अनुभवों के रूप में प्रकट होता है। जब बीज मंत्र प्रकट होता है, तब यह ध्वनि, शब्द या नाद कहलाता है। प्रकट अवस्था में इसमें कम्पन होता है, लेकिन इसकी एक अवस्था ऐसी भी होती है जिसमें यह बिना कम्पन के ही स्थित रहता है। यह अव्यक्त ध्वनि ही बीज कहलाती है और इसका प्रकट स्वरूप नाद कहलाता है। जब योगी गहरे ध्यान की अवस्था में जाता है, तब उसे बीज मंत्र की सूक्ष्म ध्वनि का ज्ञान प्राप्त होता है।

पहला बीज मंत्र ॐ या *ओउम्* है। तीन आद्या ध्वनियाँ, 'अ', 'उ' एवं 'म्' वाक्-संरचना की आधार हैं। ये तीनों मिलकर *ॐ* की ध्वनि उत्पन्न करती हैं। इस पहले बीज मंत्र से अन्य बीज मंत्र उत्पन्न हुए हैं। बीज मंत्र अत्यंत शक्तिशाली होते हैं, क्योंकि ये मानसिक प्रक्रियाओं के साथ शीघ्र ही एकात्म

हो जाते हैं। लम्बे मंत्र भी बीज मंत्र के समान ही प्रभावशाली होते हैं, लेकिन उन्हें एकात्म होने में समय लगता है। उदाहरणार्थ, जब ॐ मंत्र का अभ्यास किया जाता है, तब साधक सहज ही ध्यान की स्थिति में आने लगता है। दूसरा उदाहरण है 'ह्रीं' मंत्र का, जिसका कोई शाब्दिक अर्थ नहीं होता है, लेकिन यह प्राणों और कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करता है।

बीज मंत्र आनन्दमय कोश में स्थित होते हैं और जब मन अचेतन स्तर तक आरोहण करता है, तब ये प्रकट होने लगते हैं। ये पहले आनन्दमय कोश को प्रभावित करते हैं और इनका प्रभाव क्रमश: विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय और अन्तत: अन्नमय कोश तक पहुँचता है। इस स्थिति में गहराइयों में विस्फोट होता है। अन्य मंत्रों से विस्फोट मानसिक या प्राणिक स्तर पर होता है और इनका प्रभाव ऊपर विज्ञानमय एवं आनन्दमय कोश तक आता है। उसके बाद यह पुन: भौतिक शरीर की ओर प्रवर्तित होता है। अन्ततोगत्वा प्रभाव समान ही होता है, लेकिन जब अचेतन मन सीधे प्रभावित होता है तब अनुभूतियाँ अद्भुत् और सुस्पष्ट होती हैं। जब प्राणिक या मानसिक शरीर प्रभावित होते हैं, तब अनुभूतियाँ क्षणिक और स्वप्न-सी धूमिल होती हैं। हालाँकि, यदि साधक तैयार नहीं रहे, तो वह बीज मंत्रों के प्रबल प्रभाव को सम्हाल नहीं पायेगा। इसलिए इनका उपयोग सावधानी से करना चाहिए।

यदि गुरु का परामर्श हो, तो मानसिक रूप से बीज मंत्र के उच्चारण के साथ प्राणायाम का अभ्यास किया जा सकता है। घेरण्ड संहिता में ऋषि घेरण्ड ने विशिष्ट प्राणायामों के अभ्यास के साथ बीज मंत्रों का वर्णन किया है। उन्होंने एक के बाद दूसरी नासिका से श्वास लेने के तीन प्रकार बताये हैं। उनमें से प्रथम दो में बीज मंत्रों का उपयोग किया जाता है। पहले प्रकार का उद्देश्य नाड़ियों का शुद्धिकरण करना है। इसमें विभिन्न तीव्रता की चमक और विभिन्न तत्त्वों पर एकाग्रता के साथ यं, रं, ठं और लं बीज मंत्रों का उपयोग किया जाता है। दूसरे अभ्यास में, जिसे उन्होंने सगर्भ कुम्भक कहा, अ, अं, उ और मं बीज मंत्रों का उपयोग सम्बद्ध देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव), गुणों (रजस्, सत्त्व एवं तमस्) तथा वर्णों (लाल, काला और श्वेत) के साथ किया जाता है।

अजपा जप

जप को 'मंत्र की अनवरत आवृत्ति' के रूप में पारिभाषित किया जा सकता है। यदि जप में 'अ' उपसर्ग लगा दिया जाए तो इसका अर्थ हो जाता है, अनायास

मंत्र की पुनरावृत्ति की प्रक्रिया। अत: अजपा मंत्र की अनायास आवृत्ति है। ध्यान के समय, धारणा के स्तर पर जप अजपा में परिवर्तित हो जाता है; मंत्र स्वयं अनायास दुहराया जाने लगता है। जब ध्यान अधिक-से-अधिक जप पर एकाग्र होता जाता है, तब साधक का सम्पूर्ण अस्तित्व मंत्र से स्पंदित होने लगता है। जप के लिए मंत्र को बोलकर या मानसिक रूप से निरंतर, चेतन प्रयास के साथ जपने की आवश्यकता होती है, लेकिन अजपा सहज है, इसलिए इसमें किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं होती है। जप मुँह से निकलता है, जबकि अजपा श्वास एवं हृदय से उत्पन्न होता है। जप मंत्रोच्चार का प्रारम्भिक अभ्यास है और अजपा इस अभ्यास की पराकाष्ठा है।

अजपा जप का अभ्यास श्वास की स्वाभाविक ध्वनि पर केन्द्रित होता है – श्वास लेने की ध्वनि 'सो' और श्वास छोड़ने की ध्वनि 'हं'। उज्जायी प्राणायाम के माध्यम से श्वसन किया जाता है। अभ्यास के विभिन्न चरणों में विविध ऊर्जा मार्गों या अतीन्द्रिय मार्गों की अनुभूति होती है और धीरे-धीरे वे सक्रिय होते जाते हैं। प्राण विद्या और क्रिया योग के लिए प्रारम्भिक अभ्यास के रूप में अजपा जप अति आवश्यक है। हालाँकि यह स्वयं भी अपने आप में एक पूर्ण साधना है, जो समाधि की अनुभूति की ओर ले जाती है। अन्य सभी योगाभ्यासों में समाधि की प्राप्ति के लिए श्वास को नियन्त्रित और रुद्ध करना पड़ता है, जबकि अजपा जप के अभ्यास में श्वास अनवरत तथा स्वाभाविक रूप से चलती रहती है। समाधि के दौरान भी कोई परिवर्तन नहीं आता है। भगवद् गीता में वर्णित प्राण एवं अपान का सम्बन्ध अजपा की ओर ही संकेत करता है (4:29) –

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणा: ॥

कितने ही योगीजन अपान वायु में प्राण वायु को हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगीजन प्राण वायु में अपान वायु को हवन करते हैं।

प्राण अन्दर आने वाली श्वास है, अपान बाहर निकलने वाली श्वास। 'सो' प्राण का और 'हं' अपान का प्रतिनिधित्व करता है। कुछ साधक प्राण और अपान को संयुक्त कर देते हैं, अर्थात् 'सो' और 'हं' को एक कर देते हैं, जो सोऽहं हो जाता है। अन्य साधक अपान को प्राण के साथ मिला देते हैं, अर्थात् 'हं' के साथ 'सो' को मिला देते हैं, जो 'हंसो' बन जाता है। कुछ साधक ऐसे हैं जो प्राण एवं

अपान, दोनों को अवरुद्ध कर देते हैं। भगवद् गीता (5:27 – 28) में भी प्राण और अपान को एकरूप करने की विधि का उल्लेख किया गया है –

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः॥

जिसने सभी बाहरी सुखों के विचारों को रोककर, दृष्टि को भ्रूमध्य में स्थिर करने के साथ, नासिकाओं में पूरक तथा रेचक के रूप में प्रकट होने वाले प्राण एवं अपान को एकरूप कर, अपनी इन्द्रियों, मन और बुद्धि को नियंत्रित कर लिया है, ऐसी मननशील आत्मा जिसका उद्देश्य मोक्ष है और जो इच्छा, भय और क्रोध से मुक्त है, वह सदा मुक्त रहती है।

शास्त्रों में अजपा जप के इस प्रकार के अभ्यास का उल्लेख विलोम अजपा के रूप में किया गया है। घेरण्ड संहिता (5:84 – 96) में अजपा जप की एक विशेष विधि का वर्णन किया गया है जिसे केवली प्राणायाम कहा गया है। इसमें कहा गया है कि एक सामान्य व्यक्ति निरन्तर अजपा करता है, लेकिन अचेतन रूप से, जबकि योगी को इसे सचेतन होकर, एक अभ्यास के रूप में करना चाहिए। दिन में आठ या कम-से-कम तीन बार 'सोऽहम्' मंत्र का उच्चारण एक निश्चित गिनती तक दोनों नासिकाओं से शीघ्रता के साथ करना चाहिए। श्वास की गति सामान्य से दुगुनी होनी चाहिए, अर्थात् 30 श्वास प्रति मिनट। जप की संख्या को तब तक धीरे-धीरे बढ़ाते जाना चाहिए, जब तक केवल कुम्भक, अर्थात् श्वास के अनायास अवरुद्ध होने की अवस्था प्राप्त न हो जाये।

उपनिषदों में कहा गया है कि साधक को अनहद जप का, ऐसा जप जो कभी समाप्त न हो, अभ्यास करना चाहिए। यह जप अनन्त के साथ समकालीन हो जाता है। ऐसा कोई मंत्र ज्ञात नहीं है; इसलिए मंत्रोच्चार की ऐसी विधि की आवश्यकता है, जो कभी समाप्त नहीं हो। यह अजपा जप के अभ्यास के माध्यम से किया जाता है, जिसमें मंत्र को श्वसन प्रक्रिया के साथ समन्वित किया जाता है और इस प्रकार इसकी सजगता निरंतर बनी रहती है।

श्वसन एवं प्राणायाम का क्रियाविज्ञान

श्वसन का क्रियाविज्ञान

श्वास हमारी निकटतम साथी है। यह स्पृश्य, विश्वास-योग्य, बोधगम्य और नियन्त्रणीय होती है। धीमा अन्तर्श्वसन और बहिर्श्वसन हमें जीवित और शान्त रखता है तथा हमारे विचारों को प्रभावित करता है, साथ ही यह स्वयं हमारी क्रियाओं, भावनाओं तथा विचारों से प्रभावित होता है। हम सब प्रतिदिन इसका अनुभव करते हैं, फिर भी श्वास की या तो उपेक्षा करते हैं या उसे भुला देते हैं। प्राणायाम के अभ्यासों के फलस्वरूप श्वास से हमारी अन्तरंगता हो जाती है। अत: श्वसन तंत्र की अच्छी जानकारी अभ्यासों को उन्नत करने में मदद करेगी और उनके क्रियाविज्ञान के मानदण्ड को अच्छी तरह समझने में सहायक होगी। यह प्राण विद्या के अभ्यास में तब अपरिहार्य सिद्ध होगी जब हमें सजगता को शरीर के विशिष्ट आन्तरिक अंगों पर एकाग्र करना होगा।

श्वसन संरचना

मनुष्य का धड़ तीन भागों में विभक्त है – वक्षस्थल या वक्षीय गुहा, जिसमें हृदय और फेफड़े स्थित होते हैं; उदर, जो एक पतली पेशी, मध्यपट के द्वारा वक्ष से अलग रहता है। इसके अन्दर पाचन अंग स्थित रहते हैं; श्रोणी प्रदेश, जिसका विस्तार नितम्ब अस्थि से मूलाधार तक होता है और इसी क्षेत्र में उत्सर्जन एवं प्रजनन अंग स्थित होते हैं।

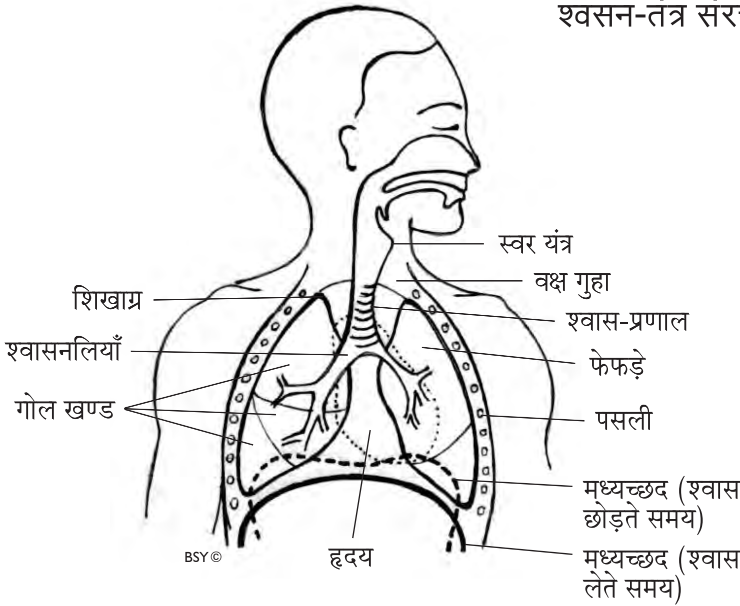
फेफड़े तथा हृदय पसलियों के पिंजर में स्थित होते हैं, जो अस्थियों, उपास्थियों और पेशियों का बना होता है। फेफड़े स्वयं निष्क्रिय होते हैं। वक्षीय गुहा की दीवारों और धरातल की गति से फेफड़ों के अन्दर हवा भरने और निकलने के कारण वे फूलते या पिचकते हैं। वक्ष की सीमाएँ मेरुदण्ड की बारह कशेरुकाओं तथा सामने की ओर उरोस्थि और बारह जोड़ी पसलियों

से बनती हैं। पसलियाँ हृदय तथा फेफड़ों को पीछे की ओर मेरुदण्ड से लेकर सामने की ओर उरोस्थि तक घेरे रहती हैं। वक्षीय पिंजर मर्मस्थलों को आघात से सुरक्षित रखता है। पसलियों के बीच में अन्तरापर्शुक पेशियाँ होती हैं, जो इन्हें जोड़ती हैं और एक अंश तक सम्पूर्ण पिंजर को गतिमान रखती हैं। पसलियाँ प्रत्येक सिरे पर इस प्रकार संधियुक्त रहती हैं कि वे ऊपर और बाहर की ओर बाल्टी के हैण्डल की तरह खिसक सकें।

दो फेफड़े होते हैं। हृदय तथा उसकी प्रमुख रक्त वाहिनियों के द्वारा पृथक् होकर वे वक्ष के दोनों ओर स्थित होते हैं। असंख्य रक्त केशिकाओं के कारण अकलुषित अवस्था में फेफड़ों के ऊतकों का रंग गुलाबी होता है। ये लचीले, सूक्ष्म छिद्रयुक्त और स्पंजी होते हैं। चूँकि इनके सूक्ष्म छिद्रों में हवा भरी होती है, इसलिए ये पानी पर तैर सकते हैं। दाहिना फेफड़ा तीन पिण्डों या कक्षों का बना होता है, जबकि बायाँ केवल दो पिण्डों का होता है, क्योंकि पिंजर के बायीं ओर हृदय अपनी जगह बना लेता है। फेफड़े शंकु-आकार के होते हैं और उनका एक शीर्ष, एक आधार, पर्शुकी सतह और मध्यवर्ती सतह होती है। शीर्ष गोलाकार होता है और ऊपर की ओर लगभग 25 मि.मी. (1 इंच) गर्दन के आधार में हँसुली के दो तिहाई हिस्से तक जाता है। इसके साथ जो संरचनाएँ सम्बद्ध हैं, उनमें पहली पसली तथा गर्दन के आधार की रक्त वाहिनियाँ और तंत्रिकाएँ हैं।

फेफड़ों का आधार नतोदर और अर्धचन्द्राकार होता है, तथा यह मध्यपट की वक्षीय सतह से निकटता से संयुक्त होता है। पर्शुकी सतह उन्नतोदर होती है और यह पर्शुकी उपास्थियों, पसलियों तथा अन्तरापर्शुक पेशियों से जुड़ी होती है। मध्यवर्ती सतह नतोदर होती है और इसका क्षेत्र तिकोना जैसा होता है, जिसे नाभिका कहते हैं। यह पाँचवीं, छठी और सातवीं वक्षीय कशेरुकाओं की सतह पर होती है। फेफड़ों का आधार बनाने वाली संरचनाएँ नाभिका में प्रवेश करती हैं और उसी से बाहर निकलती हैं। इनके अन्तर्गत प्राथमिक श्वास-नलिकाएँ, फेफड़े की ओर जाने वाली फुफ्फुसीय धमनियाँ और उसमें से बाहर निकलने वाली दो फुफ्फुसीय शिराएँ, श्वास-धमनी एवं शिराएँ और लसीका तथा स्नायु संभरण आते हैं।

फेफड़ों के बीच के क्षेत्र को मध्यस्थानिका कहते हैं। इसमें हृदय, महत्त्वपूर्ण वाहिनियाँ, श्वास-प्रणाल, दायीं एवं बायीं श्वास-नलिकाएँ, आमाशय, लसीका ग्रन्थियाँ, लसीका वाहिनियाँ और तंत्रिकाएँ स्थित होती हैं।



फेफड़ों की आन्तरिक संरचना

फेफड़ों की आन्तरिक संरचना एक वृक्ष के समान होती है। उसका मुख्य तना श्वास-प्रणाल होता है, शाखाएँ श्वास नलिकाएँ और पत्तियाँ वायु-कोश हैं।

श्वास-प्रणाल – श्वास-प्रणाल हवा की नली है, जो गले के आधार पर स्वरयन्त्र से जुड़ी होती है। यह नली उपास्थियों के छल्लों और पेशीय ऊतकों से बनी हुई होती है, जो इसे हमेशा खुला हुआ रखते हैं। श्वास-प्रणाल में अन्दर से अत्यन्त छोटे रोमों का अस्तर होता है जिन्हें पक्ष्म (सीलिया) कहते हैं। इन पक्ष्मों का घुमाव ऊपर की ओर होता है, जो धूल, परागकण, अन्य महीन बाहरी वस्तुओं को फेफड़ों के अन्दर जाने से रोकते हैं।

श्वास-नलियाँ – श्वास-प्रणाल का निचला हिस्सा बायीं और दायीं मुख्य श्वास-नलियों में शाखान्वित हो जाता है। श्वास-नलियाँ एक उल्टे वृक्ष के समान आगे चलकर और अधिक छोटी-छोटी नलिकाओं में विभक्त हो जाती हैं जो फेफड़ों में प्रवेश करती हैं। बड़ी श्वास-नलियाँ उपास्थि और छोटी-चिकनी पेशियों की ही बनी होती हैं, जो उन्हें श्वास-प्रणाल के समान बन्द होने से रोकती हैं। हालाँकि ये श्वास-नलिकाएँ इतनी छोटी होती जाती हैं कि

इनकी उपास्थि विलुप्त हो जाती है और यहाँ केवल रेशेदार पेशीय स्तर एवं पक्ष्म श्लेष्मों का स्तर रह जाता है।

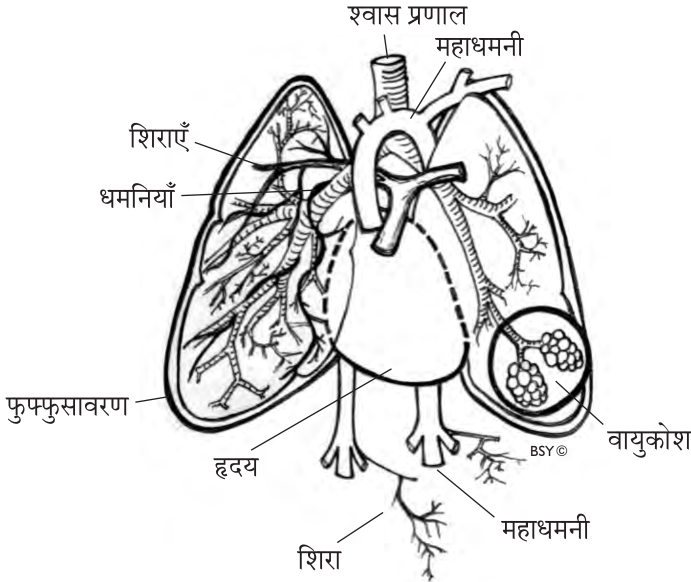
वायुकोश– श्वास-नलिकाएँ हवा के अत्यन्त छोटे थैलों में जाकर समाप्त होती हैं। इन्हें वायुकोश कहते हैं। इन वायु कोशों में केशिकाओं की जालिका का अस्तर होता है। इनमें वायु एवं रक्त के बीच ऑक्सीजन तथा कार्बन-डाइऑक्साइड का आदान-प्रदान होता है। सभी वायुकोशों का पृष्ठीय क्षेत्रफल लगभग पचास वर्ग मीटर होता है, जो शरीर के क्षेत्रफल का लगभग बीस गुना होता है। वास्तव में फेफड़ों की वायुकोशीय सतह वह विशालतम क्षेत्र है, जहाँ से होकर अवरोधक आवेश मस्तिष्क तक जाते हैं, विशेषकर तब, जब फेफड़े पूरी तरह फैले हुए होते हैं।

फुफ्फुसावरण– फेफड़े फुफ्फुसावरण नाम की दोहरी झिल्ली से आच्छादित होते हैं, जो श्वसन क्रिया के दौरान फेफड़ों तथा आन्तरिक वक्षीय गुहा के बीच चिकनाई युक्त सतह प्रदान करती है। दोनों फेफड़ों के फुफ्फुसावरण में सीरमयुक्त झिल्ली की एक बन्द थैली होती है, जिसमें सीरम होता है। यह थैली दो सतहों की रचना करती है–एक फेफड़े से और दूसरी वक्षीय गुहा की दीवार से सटी हुई होती है।

फुफ्फुसावरण की दोनों सतहें, जिनके बीच सीरम होता है, काँच के उन दो टुकड़ों की तरह व्यवहार करती हैं, जिनके बीच पानी की पतली परत हो। वे दोनों एक-दूसरे पर आसानी से फिसलती तो हैं, लेकिन झिल्लियों तथा सीरम के बीच के पृष्ठीय-तनाव के कारण उन्हें कठिनाई के साथ ही एक-दूसरे से अलग किया जा सकता है। यदि किसी भी एक सतह में छेद हो जाये, तो उसके अन्दर का फेफड़ा लचीलेपन की अपनी सहज वृत्ति के कारण कुण्डलित हो जाता है।

फुफ्फुसीय धमनियाँ एवं शिराएँ– फुफ्फुसीय धमनियाँ हृदय से निकलती हैं और दो भागों में विभक्त होकर दोनों फेफड़ों में ऑक्सीजनरहित रक्त ले जाती हैं। फेफड़ों के अन्दर प्रत्येक फुफ्फुसीय धमनी अनेक शाखाओं में बँट जाती है जो अन्ततः वायुकोशों के चारों ओर केशिकाओं के सघन जाल में परिणत हो जाती है। वायुकोशों तथा केशिकाओं की दीवारें चपटी उपकला कोशिकाओं के केवल एक स्तर से बनी होती हैं। वायुकोशों के अन्दर की गैस और केशिकाओं के अन्दर के रक्त के बीच आदान-प्रदान इन दो महीन झिल्लियों से होकर होता है। दोनों फेफड़ों की फुफ्फुसीय केशिकाएँ एक

फेफड़ों की आन्तरिक संरचना



साथ मिलकर एक-एक फुफ्फुसीय शिरा बनाती हैं। ये फेफड़ों की नाभिका से निकलती हैं और हृदय के बायें परिकोष्ठ (ऐट्रियम) में ऑक्सीजनयुक्त रक्त पहुँचाती हैं। फेफड़ों की असंख्य रक्त केशिकाएँ तथा रक्त वाहिनियाँ संयोजी ऊतकों पर अवलम्बित होती हैं।

श्वसन तंत्र की पेशियाँ

श्वास लेने के दौरान वक्ष का फैलाव, पेशियों की कुछ अनैच्छिक और कुछ ऐच्छिक क्रियाओं के फलस्वरूप होता है। अन्तरापर्शुक और मध्यपट सामान्य तथा नि:शब्द श्वसन के लिए मुख्य पेशियाँ हैं। कठिन या गहरे श्वसन के समय उन्हें गर्दन, कन्धों और उदर की पेशियों की सहायता मिलती है।

वक्ष के आधार पर मध्यपट तथा उदरीय पेशियाँ धौंकनी के समान वायु को फेफड़ों के अन्दर ले जाने और बाहर निकालने का कार्य करती हैं। श्वास छोड़ने के साथ-साथ श्वास लेने के लिए भी पेशीय प्रयास की आवश्यकता होती है। हालाँकि आराम की अवस्था और सामान्य कार्यों के समय केवल

मध्यपटल की क्रिया पर्याप्त होती है। जब उदर, गर्दन और कन्धों की पेशियाँ सक्रिय हो जाती हैं, तब प्रश्वास एक क्रियाशील प्रक्रिया बन जाती है और अतिरिक्त बल के कारण प्रश्वास तीव्र हो जाती है।

मध्यपट – मध्य-पटल गुम्बद के आकार का होता है। वक्षीय गुहा के अन्दर यह पेशियों की एक परत तथा नसों का बना होता है, जो निचली पसलियों से जुड़ी होती हैं। यह वक्षीय एवं उदरीय गुहाओं को पृथक् करता है। ग्रसिका, वेगस स्नायु, मुख्य धमनियाँ एवं शिराएँ मध्यपट में बने छिद्र के द्वारा शरीर के निचले भाग में जाती और वापस आती हैं।

श्वास लेने की क्रिया मध्यपट के संकुचन से होती है, जो उसे नीचे की ओर खींचकर सपाट कर देता है। इससे वक्षीय गुहा का आयतन बढ़ने के साथ-साथ ऋणात्मक दबाव उत्पन्न हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप फेफड़ों में हवा चली आती है। सामान्य प्रश्वास पसली-पिंजर और मध्यपट के प्रतिक्षेपित होने के कारण होती है, क्योंकि ये पेशियाँ फैलकर अपने मूल आकार में आ जाती हैं।

मध्यपट के संकुचन से आँतों पर नीचे की ओर दबाव पड़ने से उदर की दीवारें सामने की ओर फैलती हैं और/या पिंजर का निचला हिस्सा तिरछे फैलता है। मध्य-पटल की क्रिया से आँतों की मालिश होती है, जिससे पाचन, स्वीकरण और उत्सर्जन में सहायता मिलती है।

वक्षीय पेशियाँ – यद्यपि शान्त या निःशब्द श्वसन के समय वक्ष के ऊपरी भाग की गति को आसानी से अनुभव नहीं किया जा सकता, फिर भी उसमें वक्षीय पेशियों की भूमिका रहती है। बाह्य तथा परा-उरोस्थिक अन्तरापर्शुक (बगल की पसलियों को जोड़ने वाली) और विषमिका (स्कन्ध क्षेत्र तथा मेरुदण्ड को जोड़ने वाली) श्वसन के समय पसलियों को फैली हुई स्थिति में रखने के लिए सक्रिय हो जाती हैं, जिससे मध्य-पटल को अधिक बल प्राप्त होता है।

अन्तरापर्शुक पेशियों के ग्यारह जोड़े होते हैं, जो बारह जोड़ी पसलियों के बीच स्थित होते हैं। वे बाह्य और आंतरिक अन्तरापर्शुक पेशियों के दो स्तरों में श्रेणिबद्ध होते हैं। बाह्य अन्तरापर्शुक पेशीय तंतु ऊपर की पसली के निचले किनारे से नीचे और सामने की दिशा में नीचे की पसली के ऊपरी किनारे की ओर फैलते हैं। आंतरिक अन्तरापर्शुक पेशीय तंतु ऊपर की पसली के निचले किनारे से नीचे और पीछे की दिशा में नीचे की पसली के ऊपरी किनारे की

ओर बाह्य अन्तरापर्शुक पेशीय तंतुओं से समकोण पर मिलते हुए फैलते हैं। पहली पसली स्थिर होती है; इसलिए जब अन्तरापर्शुक पेशियाँ संकुचित होती हैं, तब वे अन्य सभी पसलियों को पहली पसली की ओर खींचती हैं। पसलियों को जब ऊपर खींचा जाता है, तब वे अपने आकार के कारण बाहर की ओर जाती हैं। इस प्रकार वक्षीय गुहा का आगे से पीछे की ओर तथा बगल से विस्तार हो जाता है। अन्तरापर्शुक पेशियाँ अन्तरापर्शुक स्नायुओं के द्वारा संकुचन के लिए उत्प्रेरित होती हैं।

उदरीय पेशियाँ–उदरीय पेशियाँ बलपूर्वक प्रश्वास के लिए बहुत शक्तिशाली और महत्त्वपूर्ण पेशियाँ हैं, लेकिन निःशब्द श्वसन में उनका उपयोग नहीं होता है। संकुचन आँतों पर आन्तरिक दबाव डालता है, जो मध्य-पटल को ऊपर की ओर ठेलता है और फेफड़ों के आयतन को कम कर देता है। इसके अतिरिक्त ये पेशियाँ पसली-पिंजर के निचले हिस्से को नीचे खींचती हुईं उसकी हवा को निकाल कर प्रश्वास में मदद कर सकती हैं। श्वसन के लिए महत्त्वपूर्ण पेशियाँ हैं–रेक्टस ऐब्डॉमिनस, ट्रान्सवर्स ऐब्डॉमिनस और बाह्य तथा आन्तरिक ऑब्लोकीज़।

श्वसन की प्रक्रिया

सामान्य, शान्त श्वसन के प्रति मिनट लगभग पूरे 15 श्वसन-चक्र होते हैं। श्वास नासिका गुहा से गले के शीर्ष पर ग्रसनी के द्वारा कंठ में जाती है, जो उस स्थान पर स्थित है, जहाँ ग्रसिका और श्वास-प्रणाल मिलते हैं। उपास्थि का एक ढक्कन भोजन, तरल पदार्थ और वायु के संचालन को नियंत्रित करता है। यह निगलने के समय कंठ को बन्द कर देता है। कंठ उपास्थियों का बना हुआ होता है और स्वर-रज्जु उसी में होते हैं, जो ध्वनि उत्पन्न करते हैं। कंठ से वायु नीचे की ओर श्वास-प्रणाल, श्वसन-नलिका तंत्र और वायुकोशों में जाती है, जहाँ यह वायुकोशों से आच्छादित केशिकाओं में प्रवाहित होती है।

अन्दर ली गयी श्वास में लगभग 79% नाइट्रोजन (जिसकी श्वसन प्रक्रिया में कोई भूमिका नहीं रहती है), 20% ऑक्सीजन और 0.04% कार्बन-डाइऑक्साइड रहती है। बाहर निकाली गयी श्वास में नाइट्रोजन की उतनी ही मात्रा होती है, लेकिन ऑक्सीजन की मात्रा घटकर लगभग 16% और कार्बन-डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़कर लगभग 4.04% हो जाती है। प्रश्वास की वायु गरम और अधिक नमीयुक्त होती है, क्योंकि फेफड़ों के

द्वारा जलवाष्प भी श्वास के साथ बाहर निकलती है, जिसे आइने पर प्रयोग कर देखा जा सकता है। प्रश्वास के साथ शरीर का लगभग 20% ताप बाहर निकल जाता है।

जीवन के संरक्षण के लिए वायु में उपस्थित ऑक्सीजन एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। अनेक रासायनिक प्रतिक्रियाओं के लिए इसकी आवश्यकता होती है, जिसमें कार्बन-डाइऑक्साइड और जल अपशिष्ट पदार्थों के रूप में उत्पन्न हो जाते हैं। श्वसन की सम्पूर्ण प्रक्रिया वातावरण से ऑक्सीजन को फेफड़ों और रक्तप्रवाह में, और फिर शरीर की सभी कोशिकाओं में पहुँचाती है। इस प्रकार श्वसन के दो स्तर हैं – पहला फेफड़ों में होता है, जिसे बाह्य श्वसन कहते हैं; दूसरा कोशिकाओं में होता है, जिसे आन्तरिक श्वसन कहते हैं।

बाह्य श्वसन – श्वसन तंत्र की पेशियाँ वायु को फेफड़ों तक ले जाती हैं ताकि ऑक्सीजन का अवशोषण रक्त में हो सके और उसे कोशिकाओं तक पहुँचाया जा सके। ऑक्सीजन कोशिकाओं के अन्दर जाती है और कार्बन-डाइऑक्साइड कोशिकाओं से निकलकर वापस फेफड़ों में जाती है ताकि वहाँ से उसे बाहर निकाला जा सके। यह वायुकोशों और रक्त के बीच गैसों का आदान-प्रदान है। वायुकोशों की प्रत्येक दीवार की मोटाई एक कोशिका के बराबर होती है और यह महीन केशिकाओं (इसकी दीवारों की मोटाई भी एक कोशिका के बराबर ही होती है) के जाल से घिरी हुई रहती है। फेफड़ों के अन्दर गैस के आदान-प्रदान का कुल क्षेत्र 70 से 80 वर्ग मीटर होता है।

फेफड़ों के अन्दर शरीर के सभी सक्रिय ऊतकों से शिराओं के द्वारा लाये गये रक्त में कार्बन-डाइऑक्साइड की मात्रा अधिक और ऑक्सीजन की मात्रा कम रहती है। शिराओं के रक्त की कार्बन-डाइऑक्साइड वायुकोशों में तब तक विसरित होती रहती है, जब तक उसकी सान्द्रता के अनुपात और वायुकोशीय वायु के बीच संतुलन स्थापित न हो जाये। इसी प्रक्रिया से वायुकोशों की ऑक्सीजन रक्त में विसरित होती है। केशिकाओं में रक्त का धीमा प्रवाह विसरण के लिए उपलब्ध समय को बढ़ा देता है। जब रक्त वायुकोशीय केशिकाओं से निकलता है, तब ऑक्सीजन तथा कार्बन-डाइऑक्साइड का वायुकोशीय वायु के साथ संतुलन रहता है।

गैसों के अवशोषण और निष्कासन के बीच जो बदलाव आता है, वह श्वास एवं प्रश्वास के बीच के लघु विराम के समय आता है। आदान-प्रदान का क्षण

उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना श्वास छोड़ना और श्वास लेना। योग के संदर्भ में यह प्राणायाम का सबसे महत्त्वपूर्ण क्षण होता है।

आन्तरिक श्वसन – यह केशिकाओं के रक्त और शरीर की कोशिकाओं के बीच विसरण द्वारा गैसों का आदान-प्रदान है। धमनियों की दीवारें बहुत मोटी होती हैं, इसलिए हृदय से ऊतकों तक रक्त का वहन करने वाली धमनियों के माध्यम से गैसों का आदान-प्रदान नहीं होता है। इस कारण केशिकाओं की सतह पर आने वाले रक्त में ऑक्सीजन की सान्द्रता फेफड़ों से निकलने वाले रक्त के समान ही होती है। ऊतकों तक आने वाला रक्त फेफड़ों से होकर निकलने के दौरान कार्बन-डाइऑक्साइड से मुक्त और ऑक्सीजन से परिपूर्ण हो जाता है। अत: इसमें ऊतकों की अपेक्षा ऑक्सीजन की मात्रा अधिक और कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा कम होती है। इससे रक्त और ऊतकों के बीच सान्द्रता के अनुपात में परिवर्तन आ जाता है, जिससे गैसों का आदान-प्रदान होता है।

रक्त प्रवाह से ऑक्सीजन केशिका की दीवार के माध्यम से ऊतकों में विसरित होती है। कार्बन-डाइऑक्साइड कोशिकाओं से विसरित होकर कोशिकेतर तरल पदार्थ में चली जाती है और वहाँ से केशिका की शिराओं के छोर के रक्त प्रवाह में मिल जाती है।

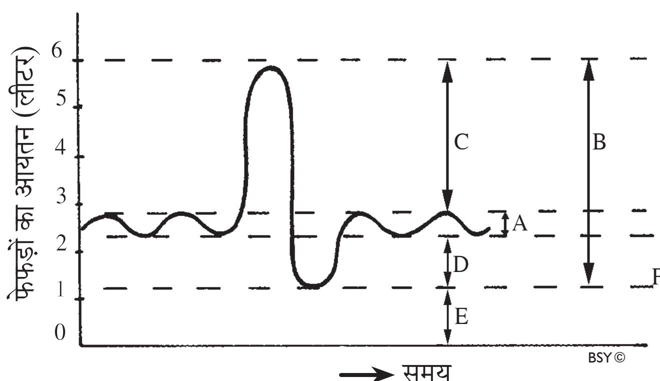
फेफड़ों का आयतन और उनकी क्षमता

सामान्य श्वसन की प्रत्येक श्वास में कुल श्वसन क्षमता के मात्र दस प्रतिशत का उपयोग होता है। सामान्य श्वसन के समय एक औसत श्वास द्वारा आधा लीटर वायु ही अन्दर ली जाती है, जिसे ज्वारीय परिमाण कहते हैं (नीचे के चित्र में A देखें), जबकि एक बार श्वास लेने में साढ़े चार से पाँच लीटर वायु को अन्दर लिया जा सकता है। इसे मूल क्षमता कहते हैं (चित्र में B)। ज्वारीय परिमाण से अधिक और कम सुरक्षित परिमाण हमेशा उपलब्ध रहता है, ताकि पूरक और रेचक का विस्तार किया जा सके (चित्र में क्रमश: C और D)। भले ही कितनी भी पूर्णता के साथ रेचक किया जाये, फेफड़ों में वायु एक निश्चित परिमाण में शेष रह ही जाती है, इसे अवशिष्ट परिमाण कहा जाता है (चित्र में E)। यह एक लीटर से थोड़ा अधिक होती है।

अत: फेफड़ों की मूल क्षमता भले ही पाँच लीटर की हो, इसका कुल आयतन छ: लीटर होता है। ज्वारीय परिमाण का अधिकांश भाग

फेफड़ों के उन क्षेत्रों में जाता है, जहाँ रक्त के साथ ऑक्सीजन तथा कार्बन-डाइऑक्साइड का आदान-प्रदान होता है, लेकिन 150 मिली लीटर का निष्क्रिय स्थान होता है, जिसका गैस के आदान-प्रदान में कोई योगदान नहीं होता है। निष्क्रिय स्थान का आयतन अपेक्षाकृत स्थिर रहता है, जबकि ज्वारीय परिमाण शारीरिक व्यायाम, श्वसन के तरीका और अन्य कारणों से बदलता रहता है। इस प्रकार अधिक ज्वारीय परिमाण होने पर निष्क्रिय स्थान छोटा हो जाता है। फेफड़ों में किसी प्रकार का रोग होने पर निष्क्रिय स्थान में प्रचुर वृद्धि हो सकती है।

फेफड़ों का आयतन



A – ज्वारीय आयतन (0.5 लीटर); सामान्य नि:शब्द श्वसन

B – मूल क्षमता (5 लीटर); अधिकतम श्वास एवं प्रश्वास

C – श्वास का सुरक्षित परिमाण (3 लीटर)

D – प्रश्वास का सुरक्षित परिमाण (1 लीटर)

E – अवशिष्ट आयतन (1.2 लीटर)

F – विश्राम के समय प्रश्वास का स्तर (2.2 लीटर)

वायुकोशों में वायु का जो परिमाण प्रति मिनट अन्दर आता और बाहर निकलता है, उसे वायुकोशीय वायुसंचार कहते हैं। यह (ज्वारीय परिमाण – निष्क्रिय स्थान) × श्वसन दर = (500 – 150) मि. ली. × 15/मिनट = 5.25 लीटर प्रति मिनट होता है। ऊपर दिये गये सभी मूल्य विशेष रूप से युवा

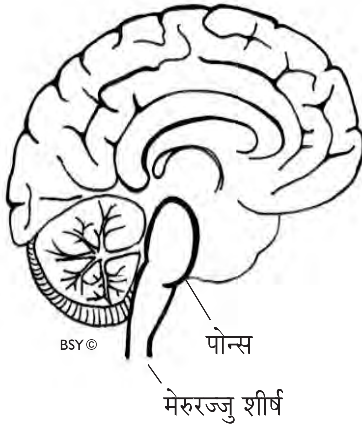
के लिए हैं। एक औसत युवती में ये परिमाण लगभग 25% कम होते हैं और शरीर के आकार, स्थिति तथा शारीरिक अवस्था के आधार पर किंचित् बदल जाते हैं। श्वसन सम्बन्धी रोगों के निदान और उन पर नियंत्रण रखने के लिए फेफड़े का क्रियात्मक परीक्षण उपर्युक्त मानदण्ड पर ही किया जाता है।

यदि फेफड़ों का समुचित विकास नहीं हुआ हो या वे क्षतिग्रस्त हो गये हों, तो उनका आयतन और क्षमता कम हो जाती है तथा वे दक्षतापूर्वक रक्त का ऑक्सीजनीकरण नहीं कर पाते हैं। फेफड़ों का आयतन प्राणायाम के अभ्यास और गहरे श्वसन वाले व्यायामों से बढ़ाया जा सकता है। अधिक संचय क्षमता रहने से अतिरिक्त माँग की स्थिति में अतिरिक्त कार्य किया जा सकता है। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि फेफड़ों में रक्त का वितरण गुरुत्वाकर्षण पर अवलम्बित होता है, इसीलिए खड़े रहने पर फेफड़े के ऊपरी भाग की अपेक्षा निचले भाग में रक्त की मात्रा अधिक रहती है। इसके विपरीत, फेफड़े के ऊपरी भाग के वायुकोशों में गैसों का आदान-प्रदान अधिक मात्रा में होता है। फेफड़े की सहज क्रिया को निर्देशित करने की क्षमता का विकास कर और श्वसन के तरीके में परिवर्तन लाकर इस असंगति को भी दूर किया जा सकता है।

श्वसन नियंत्रण

श्वसन प्रक्रिया स्नायविक एवं रासायनिक नियंत्रण द्वारा व्यवस्थित होती है। पूरक के समय ली गयी श्वास की मात्रा और प्रति मिनट श्वास की दर में शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक अवस्थाओं के साथ-साथ बाहरी वातावरण के प्रभावों के कारण यथेष्ट परिवर्तन आता रहता है।

श्वसन नियंत्रक संरचना – श्वसन नियंत्रण केन्द्र मस्तिष्क के आधार में मेडुला ऑब्लॉन्गाटा (नीचे के चित्र में देखें) में स्थित होता है। मेडुला में श्वास और प्रश्वास तंत्रिका-कोशिकाएँ होती हैं। पॉन्स में स्थित न्युमो-टैक्सिक और ऐप्न्युस्टिक केन्द्रों की तंत्रिका-कोशिकाएँ मेडुला श्वास और प्रश्वास तंत्रिका-कोशिकाओं को प्रभावित करती हैं। मोटर आवेश श्वसन केन्द्रों को छोड़कर फ्रेनिक में और क्रमशः मध्य-पटल तथा अन्तरापर्शुक पेशियों की अन्तरापर्शुक तंत्रिकाओं में चले जाते हैं, और श्वसन पेशियों को वायु के अन्तर्श्वसन के लिए क्रियाशील करते हैं। अभिवाही या संवेदी आवेश वायुकोशों एवं छोटी श्वास नलिकाओं में फैलाव के कारण वेगस तंत्रिकाओं से



होते हुए मेडुला की ओर गमन करते हैं। मेडुला ऑब्लॉन्गाटा की सतह पर स्थित केन्द्रीय कीमो-रिसेप्टर और महाधमनी के चाप में तथा धमनी-ग्रीवा में स्थित परिधीय कीमो-रिसेप्टर भी रक्त और मस्तिष्कीय-मेरुदण्डीय द्रव में ऑक्सीजन तथा कार्बन-डाइऑक्साइड के आंशिक दबाव में परिवर्तन होने पर प्रतिक्रिया करते हैं।

श्वसन तंत्र की सभी प्रमुख संरचनाओं में अनुकम्पी तथा परानुकम्पी स्नायु तंत्र से सम्बद्ध स्नायु होते हैं। श्वास ऑक्सीजन को अंदर लाती है; यह शक्ति प्रदान करने वाली और बहिर्मुख करने वाली होती है। यह अनुकम्पी स्नायु तंत्र को उत्प्रेरित करती और अपचय (अर्थात् पदार्थ से ऊर्जा में परिवर्तन) को प्रोत्साहित करती है। योग की भाषा में, यह पिंगला नाड़ी को उत्प्रेरित करती है। प्रश्वास कार्बन-डाइऑक्साइड और जलवाष्प को बाहर फेंकती है; यह शान्तिकर और अन्तर्मुख करने वाली होती है। यह परानुकम्पी स्नायु तंत्र को उत्प्रेरित करती है और उपचय (अर्थात् ऊर्जा से पदार्थ में परिवर्तन) को प्रोत्साहित करती है। योग के शब्दों में, यह इड़ा नाड़ी को उत्प्रेरित करती है। श्वास और प्रश्वास के बीच की विराम-अवधि निश्चलता प्रदान करती है, जिससे साक्षी-भाव उत्पन्न होता है। यह सतर्कता और एकाग्रता की अवस्था भी उत्पन्न करती है। चयापचय के स्तर पर ऊर्जा का तथा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक प्रयोजनों में नवसृजित तत्त्वों का उपयोग होता है। योग की शब्दावली में यह सुषुम्ना नाड़ी को उत्प्रेरित करता है।

श्वसन को प्रभावित करने वाले तत्त्व – श्वसन की दर और उसकी गहराई को विस्तृत व्यायाम (जिसमें चयापचय की क्रिया बढ़ जाती है), भाव (उदाहरण के लिए, भय या आतंक), पीड़ा या संवेदी आवेश (उदाहरण के लिए, जब शरीर को ठण्ढे पानी में डुबा दिया जाये) जैसे कारण नियन्त्रित करते हैं। मस्तिष्क के प्रमुख केन्द्रों को भाषण और गायन से, रुदन-हास्य जैसी भावनाओं के प्रदर्शन से, दवाओं, उपशामक ओषधियों और मदिरा से तथा निद्रा

के द्वारा प्रभावित कर श्वसन को रूपान्तरित किया जा सकता है। तापमान भी श्वसन को प्रभावित करता है – बुखार में चयापचय की दर बढ़ने से श्वसन की दर में वृद्धि हो जाती है, जबकि सामान्य से कम तापमान होने पर चयापचय में कमी आने के कारण यह भी कम हो जाती है। निगलने, छींकने और खाँसने के समय श्वसन में अस्थायी परिवर्तन आता है।

सामान्यत: नि:शब्द श्वसन धमनियों में ऑक्सीजन और कार्बन-डाइऑक्साइड को संतुलित रखने के लिए पर्याप्त होता है। यद्यपि कठिन व्यायाम के समय श्वसन की दर तथा उसकी गहराई बढ़ जाती है, जिससे ऑक्सीजन के अन्तर्ग्रहण और कार्बन-डाइऑक्साइड के निष्कासन में वृद्धि हो जाती है ताकि बढ़ी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और आन्तरिक पर्यावरण की स्थैतिकता कायम रह सके। हेरिंग ब्र्युअर प्रतिवर्त फेफड़ों के अतिविस्तरण को रोकता है। जब फेफड़े फैल जाते हैं, तब वक्ष की दीवार में स्थित वितान ग्राहियाँ स्नायु रोधक आवेश उत्पन्न करती हैं। वे वेगस तंत्रिकाओं से होते हुए श्वसन केन्द्र तक जाते हैं। श्वसन पर प्रभावकारी नियन्त्रण शरीर को बहुत हद तक शारीरिक, पर्यावरण सम्बन्धी और रोगजनित अवस्थाओं में रक्त की गैसों की आन्तरिक पर्यावरण स्थैतिकता को कायम रखने योग्य बनाता है।

श्वसन नियन्त्रण – सामान्य परिस्थितियों में स्नायु नियंत्रण अनैच्छिक होता है। किसी को यह सोचना नहीं पड़ता कि कब श्वास लेनी है या कब बाहर निकालनी है। हालाँकि श्वसन के प्रारूप को बदल कर ऐच्छिक स्नायु तंत्र और मस्तिष्क की उच्च क्रियाओं को, योग की भाषा में कहें, तो इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ियों को युक्तिपूर्वक संचालित करना सीखा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, श्वसन के प्रारूप को बदल कर मन की इच्छित अवस्था प्राप्त की जा सकती है। यद्यपि श्वसन की हानिकारक आदतें घातक होती हैं, फिर भी उन्हें बदलना संभव होता है, क्योंकि श्वसन गतियों का नियन्त्रण कायिक मोटर तंत्रिका-कोशिकाओं द्वारा होता है। इसलिए श्वसन क्रियाओं को इच्छानुसार नियन्त्रित करने की बात सोची जा सकती है।

फेफड़ों के संवातन की दर को चयापचय की आवश्यकताओं के अनुरूप सामान्यत: ऑक्सीजन प्रदान करने और कार्बन-डाइऑक्साइड को निकालने के लिए नियत किया जाता है। फेफड़ों में बेहतर संवातन धीमी श्वसन दर और बड़े ज्वारीय परिमाण से या तीव्र श्वसन दर और छोटे ज्वारीय परिमाण

से प्राप्त किया जा सकता है। जब यह अवस्था नियन्त्रित अभ्यास के माध्यम से गहरा तथा लयबद्ध श्वसन स्वरूप उत्पन्न करते हुए, और श्वसन की दोषपूर्ण आदतों को बदलते हुए प्राप्त कर ली जाती है, तब अपशिष्ट गैसों के विलोपन में सुधार आ जाता है, हृदय एवं संचरण की क्रियायें नियमित हो जाती हैं और हृदय का लयहीन स्पन्दन भी सुधर जाता है। इन सबसे सम्पूर्ण मन एवं शरीर को समग्रत: विश्राम मिलता है।

नाड़ीशोधन प्राणायाम के अभ्यास में जब श्वास की लम्बाई को दो-तीन सैकण्ड से बढ़ाकर सात-आठ सैकण्ड कर दिया जाता है और वायु को अधिक समय तक फेफड़ों में रोककर रखा जाता है, तब फेफड़ों में अधिक गैस के अवशोषण, पृथक्करण और निष्कासन की क्षमता बढ़ जाती है। मान लें, एक सामान्य श्वास में 3.5 ग्राम ऑक्सीजन का अवशोषण और 2.6 ग्राम कार्बन-डाइऑक्साइड का निष्कासन होता है। एक सरल नियमित श्वास नियंत्रण के अभ्यास से इस अनुपात को सुधारा जा सकता है ताकि कार्बन-डाइऑक्साइड के निष्कासन का स्तर बढ़कर 4.6 ग्राम हो जाये, जो सामान्य मानदण्ड का लगभग दुगुना होगा। यह श्वास नियंत्रण की विधि पर निर्भर रहेगा।

यह पाया गया है कि यदि कार्बन-डाइऑक्साइड के अधिक निष्कासन से रक्त में कार्बन-डाइऑक्साइड का स्तर कम हो जाता है, तो सामान्य श्वसन दर धीमी हो जाती है। मानसिक तथा भावनात्मक स्थितियों पर इसका अवरोधक प्रभाव पड़ता है; यह विचारों के स्वरूप को नियन्त्रित करने लायक मानसिक स्थिति उत्पन्न करते हुए, बिखरे हुए मन को शान्त करता है। आध्यात्मिक साधक के लिए यह महत्त्वपूर्ण है। श्वसन एवं मन की अवस्थाओं के बीच विद्यमान घनिष्ठ सम्बन्ध की समझ ने निर्देशित श्वसन और उसके परिणामस्वरूप चेतना की परिवर्तित अवस्थाओं को प्राप्त करने की विधियों का विकास किया है।

नासिका का यौगिक क्रियाविज्ञान

प्राणायाम के अभ्यास में नासिका मार्ग की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। योगियों का कहना है कि नासिकाएँ श्वास के प्रवाह के साथ ही नाड़ियों के द्वारा प्रवाहित होने वाली प्राणिक ऊर्जा के नियन्त्रण का रचनातन्त्र भी हैं। नासिकाओं का सीधा सम्बन्ध मस्तिष्क से तो होता ही है, ये सम्पूर्ण मनोदैहिक संस्थान का द्वार भी हैं। नासिकाओं में श्वास पर नियन्त्रण व्यक्ति को अपने आन्तरिक पर्यावरण को ओषधियों और रसायनों जैसे बाहरी सहायकों के बिना ही निर्देशित करने में सहायता करता है। स्वास्थ्य में सुधार के लिए, मनोदशा को बदलने के लिए या चेतना के उच्च स्तर की प्राप्ति के लिए श्वास के द्वारा आन्तरिक प्रक्रियाओं को प्रभावित किया जा सकता है।

नासिकाओं का क्रियाविज्ञान

दो नासिकाएँ वायु को शरीर के अन्दर आने और बाहर जाने देती हैं। उनमें अन्दर से मोटे बालों का अस्तर होता है, जो धूल कणों तथा बाहरी वस्तुओं के प्रति प्रारम्भिक अवरोधक का कार्य करता है। दोनों नासिकाएँ अस्थि-उपास्थीय ऊतक के द्वारा एक-दूसरे से पृथक् रहती हैं, जिन्हें नासापट कहा जाता है। टर्बिनेट नामक अस्थियाँ दोनों नासिकाओं की बगल की दीवारों से बाहर की ओर निकली हुई होती हैं, जो नाक के अन्दर के क्षेत्रफल को बहुत बढ़ा देती हैं और अन्दर आने वाली वायु के सम्पर्क में रहती हैं। ये अस्थियाँ वायु में चक्रवात का निर्माण करती हैं, ताकि धूलकण और बाहरी वस्तुएँ स्थिर होकर बैठ जायें। इसके फलस्वरूप नम तथा उष्ण श्लेष्म झिल्लियाँ फेफड़ों में प्रवेश करने वाली वायु को स्वच्छ एवं आर्द्र बनाती हैं और तापक्रम को नियंत्रित करती हैं। धूलकण श्लेष्म में चिपक जाते हैं और सूक्ष्म पक्ष्मों द्वारा

ग्रसनी में भेज दिये जाते हैं। पक्ष्मों में झाड़ू जैसी गति होती है, जो श्लेष्म को ग्रसनी की ओर बुहारती है।

अन्दर ली गयी वायु अश्रु के द्वारा आर्द्र होती रहती है। अश्रु नेत्र-ग्रंथियों में बनते हैं, जो नासा-अश्रु वाहिनी के द्वारा निरंतर नाक में प्रवाहित होते रहते हैं। जब रोने से, आँखों में संक्रमण या जलन होने से अधिक अश्रु बनते हैं, तब वे आँखों से होकर बह जाते हैं। अन्यथा वे श्वास को आर्द्र करते रहने के लिए नासिकाओं में निरन्तर प्रवाहित होते रहते हैं। यह तरल पदार्थ प्रतिदिन लगभग एक लीटर बनता है। नासिकाओं की श्लेष्म झिल्लियों में रक्त शिरानालाभ (साइनोसाइड) होते हैं, जो श्वास को गरमाते और शरीर के तापमान के अनुकूल बनाते हैं। चेहरे की अस्थियों में विवर होते हैं, जिन्हें अनुनासिक शिरानाल कहा जाता है, ये नासिकाओं से जुड़े होते हैं। श्वास लेते समय वायु इन विवरों में धारा के रूप में प्रवेश करती है और धूलकणों को यहीं पर स्थिर करती जाती है।

श्वास का शोधन, तापन और आर्द्रीकरण – नासिकाओं की 'वातानुकूलन' क्रिया है। इस प्रारंभिक वातानुकूलन के बिना फेफड़े सूख जायेंगे, उनमें धूल भर जायेगी और बीमारी का खतरा हो जायेगा। शीतोष्ण जलवायु में श्वास को अनुकूलित करने के लिए खर्च हुई अनुमानित ऊर्जा एक व्यक्ति में ऊर्जा के दैनिक उत्पादन के छठे भाग के बराबर होती है; यद्यपि नासिकाओं से छोड़ी हुई प्रश्वास के द्वारा लगभग 30–40% ऊर्जा पुनः प्राप्त कर ली जाती है। ठण्ढे और/या सूखे वातावरण में ताप या आर्द्रता को पुनः प्राप्त करने की क्षमता उच्चतर होती है। ऐसा माना जाता है कि मस्तिष्क के तापमान नियंत्रण में नासा-श्वसन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है, जिसका मस्तिष्क की क्रियाओं और मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है।

मूलाधार से सम्बन्ध

योग दर्शन में नाक और घ्राणेन्द्रिय का सम्बन्ध नाड़ियों के द्वारा मूलाधार चक्र से होता है, जो मूल प्रवृत्तियों, यौन की प्रबल प्रेरणा का आधार है तथा कुण्डलिनी का निवास स्थान है। डॉ.सिग्मन्ड फ्रायड तथा अन्य शोधकर्ताओं ने नासिकाओं के श्लेष्म स्तर और जननेन्द्रिय तथा प्रजनन सम्बन्धी क्रियाओं के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध पाया है। अन्य अवलोकनों ने सामान्य शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य को नासा मार्गों और उनकी संवेदनशील श्लेष्म झिल्लियों

के साथ सम्बद्ध किया है। कभी-कभी ऋतुस्राव के साथ ही नाक से भी रक्त का स्राव होने लगता है और ऋतुस्राव की अवधि में ही घ्राणशक्ति का तीव्र होना भी पाया गया है।

ऐच्छिक स्नायु तंत्र के अतिरिक्त घ्राण के स्नायु ग्राही भी नासा गुहा के शीर्ष की श्लेष्म झिल्लियों में स्थित होते हैं। घ्राण बल्ब (ऑलफैक्ट्री बल्ब) के अन्दर लगभग पाँच लाख स्नायु ग्राही होते हैं, जो नासा गुहा के ठीक ऊपर स्थित मस्तिष्क के एक भाग में आवेशों को संचालित करते हैं। मस्तिष्क का यह भाग, राइनेनसेफेलॉन, इसके सबसे प्रारंभिक भागों में से एक है। इसके अन्दर भय, आक्रामकता, भोग-विलास जैसे भावों, यौन-प्रेरणा और प्रजनन चक्रों से सम्बन्धित केन्द्र स्थित होते हैं। गंध से होने वाली प्रतिक्रिया को समझाना हमेशा आसान नहीं होता, क्योंकि मस्तिष्क के इन भागों का सम्बन्ध आदिम, पूर्ववाचिक और भावनात्मक प्रतीकों से होता है, जो चेतन रूप से प्रतिपादित करने और विचारों में व्यक्त किये जाने की हमारी क्षमता से परे है।

आधुनिक शरीर-क्रियाविज्ञान योग दर्शन के इस तथ्य से पूरी तरह सहमत है कि घ्राणेन्द्रिय का सम्बन्ध मूल प्रवृत्तियों, आत्म-परिरक्षण की इच्छा और भौतिक सुरक्षा के केन्द्र, मूलाधार चक्र से है। पशुओं की घ्राणशक्ति मनुष्यों से कहीं अधिक विकसित होती है। मूलाधार चक्र पशुओं के उच्चतम चक्र और मनुष्यों में निम्नतम चक्र का प्रतिनिधित्व करता है।

योग दर्शन यह भी मानता है कि मूलाधार एवं आज्ञा चक्र में सीधा सम्बन्ध है, और शरीर-क्रियाविज्ञान इसका भी प्रतिपादन करता है। घ्राण बल्ब का विस्तार भ्रूमध्य तक है और यह आज्ञा चक्र का प्रेरण बिन्दु है। अत: प्राणायाम के दौरान श्लेष्म झिल्लियों और घ्राण तंत्रिकाओं में जो स्थिति उत्पन्न होती है, वह मूलाधार में कुण्डलिनी के जागरण और आज्ञा की ओर उसके गमन की मनोकायिक प्रक्रिया का एक अंग बन जाती है।

नासिकाएँ एवं ऐक्युपंक्चर

ऐक्युपंक्चर नामक चीनी चिकित्सा पद्धति में भी नासिका की श्लेष्मा झिल्ली और उसके आस-पास के क्षेत्र को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। ऐक्युपंक्चर उपचार में 'की' या प्राणिक ऊर्जा, जो पूर्णतया निरूपित याम्योत्तर (मेरीडियन) या प्राणिक मार्गों और आकाशीय शरीर के अन्दर प्रवाहित होती है, उसे भौतिक शरीर के अन्दर याम्योत्तर कहे जाने वाले द्रव-पूरित संयोजी

ऊतक-अन्तरालों की प्रणाली को प्रभावित कर परिवर्तित और समायोजित किया जा सकता है।

ऐक्युपंक्चर के बारह प्रमुख याम्योत्तरों में से छः (उदर, मूत्राशय, पित्ताशय, बड़ी आँत, छोटी आँत और त्रिपक्षीय ऊष्मक) का प्रवेश अथवा निकास नासिकाओं की श्लेष्मा झिल्ली के आस-पास के त्रिक-तंत्रिका क्षेत्र में होता है।

एक दिलचस्प तथ्य यह है कि ऐक्युपंक्चर के याम्योत्तरों की स्थितियों तथा भारत के प्राचीन उपनिषदों में बताये गये प्रमुख नाड़ी-मार्गों के वर्णनों में सुस्पष्ट समानता एवं सादृश्य है।

स्वर योग का विज्ञान

स्वर योग का सम्बन्ध मनुष्य के मूल स्वभाव के द्वित्व और अनुपूरक ध्रुवता के बीच संतुलन प्राप्त करने से है *(स्वर योग – द तांत्रिक साइन्स ऑफ ब्रेन ब्रीदिंग,* स्वामी मुक्तिबोधानन्द, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट – को भी देखें)। इस पद्धति के अनुसार इड़ा नाड़ी में प्राण के प्रवाह को बायीं नासिका में श्वास के प्रवाह के समान माना गया है और पिंगला नाड़ी में प्राण के प्रवाह को दायीं नासिका में श्वास के प्रवाह से सम्बद्ध किया गया है। सामान्यत: दोनों नासिकाओं में श्वास एक साथ प्रवाहित नहीं होती है; एक नासिका में लगभग नब्बे मिनट तक प्रवाह चलता है, उसके बाद एक या दो मिनट तक दोनों एक साथ प्रवाहित होती हैं और फिर प्रवाह दूसरी नासिका की ओर चला जाता है।

तीसरी मुख्य नाड़ी, सुषुम्ना तब सक्रिय होती है जब दोनों नासिकाएँ समान रूप से प्रवाहित होती हैं। यह प्राय: इड़ा एवं पिंगला के एकान्तरण चक्र के बीच ही होता है (योगियों में यह अक्सर होता है)। जब प्राण सुषुम्ना से प्रवाहित होता है, तब इड़ा एवं पिंगला पूर्ण संतुलन में कार्य करती हैं। इस समय सजगता न तो अन्तर्मुखी होती है, न बहिर्मुखी, बल्कि दोनों के बीच संतुलित रहती है और ध्यान की अवस्था अनायास ही प्राप्त हो जाती है।

स्वर योग सिद्धान्त के अनुसार अपने स्वर के स्वभाव और मन की अवस्थाओं के साथ इसके सम्बन्ध की गहन जानकारी किसी भी कार्य को पूरा करने की क्षमता प्रदान करती है। स्वर योग के प्रमुख ग्रन्थ शिव स्वरोदय (श्लोक 270) में कहा गया है –

स्वरज्ञानीबलादग्रे निष्फलं कोटिधा भवेत् ।
इहलोके परत्रापि स्वरज्ञानी बली सदा ॥

स्वर की शक्ति के सम्मुख करोड़ों शक्तियाँ निष्फल होती हैं। जिसे इसका ज्ञान है, वह इस लोक और परलोक में भी सदा शक्तिशाली रहता है।

भारत में लोनावला की कैवल्यधाम संस्था ने प्रमाणित किया है कि सामान्य परिस्थितियों में प्रत्येक नासिका से श्वास का प्रवाह विरले ही समान रूप से चलता है। दस से पैंसठ वर्ष की अवस्था के बीच के ऐसे 204 लोगों की दिन के विभिन्न समयों में जाँच की गयी, जिनका सामान्य स्वास्थ्य अच्छा था। उनमें से 174 या 85.5% लोगों की नासिकाओं में श्वास का असमान प्रवाह पाया गया।

कैवल्यधाम में किये गये अन्य इलेक्ट्रो-नेसोग्राफी के अध्ययन में यह पाया गया कि प्रत्येक नासिका की श्लेष्मा झिल्ली के विद्युतीय विभव में निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। ये परिवर्तन दोनों नासिकाओं में असमान पाये गये और ऐसा माना जाता है कि यह असमानता व्यक्ति की मनोकायिक अवस्था से प्रभावित होती है, जो उसके श्वसन में परिलक्षित होती है। उच्च विभव वाली किर्लियन पद्धति का उपयोग कर देखा गया कि जिस प्रकार व्यक्ति का प्रभामण्डल प्रतिक्षण बदलता रहता है, उसी प्रकार उसका नासा-विभव भी बदलता रहता है।

ऐसा भी पाया गया है कि बायीं नासिका से होकर जाने वाली श्वास का तापमान दायीं नासिका से होकर जाने वाली श्वास की अपेक्षा थोड़ा कम होता है। बायीं नासिका का सम्बन्ध इड़ा नाड़ी, अर्थात् मानसिक ऊर्जा के प्रवाह से, जबकि दायीं नासिका का पिंगला नाड़ी, अर्थात् प्राण शक्ति के प्रवाह से होने के कारण ऐसा होता है।

नासीय प्रधानता तथा नासीय वायु पथ प्रतिरोध शक्ति

स्वर योग के प्राचीन विज्ञान ने जो व्याख्या की है, वह विगत सदी में वैज्ञानिक शोध का विषय बन गयी है। वैज्ञानिक शब्दावली में नासीय प्रवाह को नासीय वायु पथ प्रतिरोध शक्ति और प्रवाह के एकान्तरण की प्रक्रिया को नासीय प्रधानता कहा जाता है। हालाँकि आधुनिक अध्ययन नासीय प्रधानता की चक्रीय प्रक्रिया के विषय में किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाये हैं। वे केवल

इतना कह पाये हैं कि नासीय चक्र निश्चित रूप से एक निरंतर चलने वाली शारीरिक प्रक्रिया के रूप में विद्यमान है और मनुष्यों में मौलिक जैवलय (बायोरिद्म) का प्रतिनिधित्व करता है। जो भी हो, इस प्रक्रिया को व्यक्तिगत रूप से प्रमाणित किया जा सकता है।

अनुकम्पी तंत्रिकाएँ नासीय संकुलता को नियंत्रित करती हैं, जबकि परानुकम्पी तंत्रिकाएँ नासीय स्राव को नियंत्रित करती हैं, साथ ही उनका कुछ प्रभाव रक्त-प्रवाह एवं संकुलता पर भी पड़ता है। नासीय अनुकम्पी वाहिका-संकीर्णक के समन्वयन में कमी आने से संकुलता होती है, जबकि अनुकम्पी की क्रियाओं में वृद्धि होने से संकुलता समाप्त होती है। परानुकम्पी समन्वयन में कमी आने के कारण नासीय स्राव और संकुलता में कमी आती है, जबकि परानुकम्पी समन्वयन में वृद्धि होने के कारण नासीय स्राव और संकुलता में वृद्धि हो जाती है।

कुछ शोधकर्ताओं द्वारा यह बताया गया है कि नासा-श्वसन में वायु के प्रवाह का प्रतिरोध संवातन की न्यून दर पर गैस के पर्याप्त आदान-प्रदान के लिए वायु प्रवाह को धीमा करने का एक सक्षम निष्क्रिय साधन हो सकता है। यह पाया गया है कि नासिका में श्लेष्मा झिल्ली के नीचे उत्थानशील ऊतक नामक स्पंज जैसा पदार्थ होता है, जिसमें प्राय: जननेन्द्रियों के समान ही रक्त भरता है। यौन उत्तेजन के समय एक ऐसी अवस्था आती है, जब नासा-मार्ग निश्चित रूप से अवरुद्ध हो जाता है; उसे 'प्रमोदकाल नासिका' कहते हैं। उत्थानशील ऊतकों का विस्तार और संकुचन नासिकाओं में श्वास के प्रवाह को बायीं और दायीं ओर अन्तरित करता है। संकुलता अन्दर ली गई श्वास की आर्द्रता और उष्णता में वृद्धि करती है और यह न्यून संवातन के दौरान श्वसन तंत्र के लचीलेपन पर ब्रेक लगाने की एक सक्षम निष्क्रिय प्रक्रिया हो सकती है।

नासीय प्रधानता को प्रभावित करने वाले तत्त्व

नासीय गुहा में संकुलन को परिवर्तित करने वाले अनेक तत्त्व होते हैं। पहला है, बैठने का तरीका। एक तरफ लेटने पर नीचे वाली नासिका संकुलित हो जाती है, जबकि ऊपर की नासिका खुली रहती है। यद्यपि, यदि काँख के नीचे कोई सहारा न दिया गया हो, तो नासीय संकुलता में बदलाव नहीं आता है। यदि एक काँख के नीचे बैसाखी का सहारा दिया जाता है, तो उस ओर

की नासिका संकुलित हो जाती है और इसके विपरीत दूसरी ओर की खुल जाती है। व्यक्ति खड़ा हो या लेटा हुआ हो, ऐसा ही होगा। अत: इसके लिए गुरुत्वाकर्षण ही, नहीं बल्कि संवहनी या तंत्रिका प्रतिवर्त भी उत्तरदायी होते हैं। नासीय चक्र की दशा को प्रभावित करने में सोते समय की मुद्रा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।

भावनाएँ भी नासीय संकुलता एवं स्राव के त्वरित परिवर्तन को प्रभावित करती हैं। रोगियों के एक बड़े समूह पर किये गये गहन अध्ययन ने बार-बार यह दर्शाया है कि टर्बिनेट का आकार और रंग बदलती हुई भावनात्मक चुनौतियों के साथ परिवर्तित होता है। चिरकालिक या पुनरावर्ती नासीय संकुलता वाले रोगियों के नैदानिक अवलोकन में पाया गया कि चिंता, द्वन्द्व, कुण्ठा, अप्रसन्नता और अपराध के दौरान संकुलता बढ़ जाती है, लेकिन भय और आतंक के समय कम हो जाती है। यह भी बताया गया है कि बढ़ी हुई नासीय संकुलता का सम्बन्ध तनाव के कारण चुपचाप पीछे हटने के साथ है, जबकि संघर्ष या पलायन की तैयारी के लिए जोर से श्वास लेने पर संकुलता में कमी आ जाती है। संवातन की बढ़ी हुई माँग भी नासीय प्रधानता को परिवर्तित कर सकती है। नासिका प्रतिरोध व्यायाम के दौरान, एक थैले के साथ पुन: श्वास लेते समय और कुम्भक के समय कम और लगभग समान हो जाता है।

अनेक योगाभ्यास, जैसे– नाड़ीशोधन प्राणायाम, जल एवं सूत्र नेति और योग दण्ड का प्रयोग प्रत्येक नासिका में श्वास के संतुलन को सीधे प्रभावित करते हुए सुषुम्ना नाड़ी के प्रवाह को प्रेरित करते हैं और आकस्मिक ध्यान की स्थिति उत्पन्न करते हैं। कैवल्यधाम संस्था में किये गये शोध ने योग दण्ड की प्राचीन युक्ति की क्षमता को सिद्ध किया है, जिसका प्रयोग पारम्परिक रूप से योगियों द्वारा नासिकाओं में श्वास के प्रवाह को प्रभावित करने के लिए किया जाता है। अध्ययन ने यह प्रमाणित किया कि योग दण्ड के दूसरी ओर वाली नासिका की श्वास उसी ओर वाली नासिका की श्वास से स्पष्ट रूप से अधिक मुक्त हो जाती है और आयु एवं लिंग से इस प्रक्रिया में कोई अन्तर नहीं पड़ता है।

योग दण्ड की लम्बाई ध्यान कर रहे व्यक्ति की सुविधा के अनुसार होती है। प्राचीन योगियों ने पाया कि उस दण्ड पर थोड़ा झुकने और काँख पर लगातार दबाव डालने से दूसरी ओर की नासिका में श्वास का प्रवाह बढ़

जाता है। उन्होंने इस सिद्धान्त का उपयोग ध्यान के अभ्यास के क्रम में दोनों नासिकाओं में, इड़ा और पिंगला नाड़ियों में संतुलन बनाये रखने के लिए किया, ताकि सुषुम्ना खुली रहे और ध्यान सफलतापूर्वक चलता रहे।

हर डेढ़ घंटे में जब श्वास चक्र उलट जाता है, तब एक औसत व्यक्ति का मस्तिष्क कुछ मिनटों के लिए ही संतुलित रूप से कार्य करता है। यद्यपि योग दण्ड के अतिरिक्त प्राणायाम इत्यादि जैसे अन्य यौगिक अभ्यास भी दोनों नासिकाओं में संतुलन लाते हुए इस मार्ग का अनुसरण करने वाले योगियों को लम्बी अवधि तक सुषुम्ना के प्रवाह को कायम रखने योग्य बनाते हैं। इस प्रकार ध्यानात्मक सजगता का अनुभव कई घंटों या दिनों तक लगातार बना रहता है।

नासिका चक्र एवं मस्तिष्क के गोलार्द्ध

मनुष्य की मनोदैहिक रूपरेखा की दोहरी प्रकृति उसके मस्तिष्क और प्रमुख स्नायु तंत्र में परिलक्षित होती है। स्नायु-शरीर-विज्ञान और मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानों से पता चला है कि वास्तव में मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों का सम्बन्ध विभिन्न क्षमताओं एवं व्यक्ति की अभिव्यक्ति के अपने विशिष्ट तरीके से होता है।

दायाँ गोलार्द्ध परानुकम्पी स्नायु तंत्र से सम्बद्ध होता है और इसका सम्बन्ध बोध के स्थानिक, कलात्मक, सर्वांगीण, अन्तर्ज्ञात और आत्मिक पक्ष से होता है, जो इड़ा नाड़ी की क्रियायें हैं। बायें गोलार्द्ध का सम्बन्ध तर्कसंगत, युक्तिसंगत एवं अन्वेष्णात्मक क्षमता और विचार प्रक्रिया के क्रमिक एवं रेखीय स्वरूप से होता है, जो पिंगला नाड़ी की क्रियायें हैं।

मस्तिष्क का बायाँ भाग अनुकम्पी स्नायु तंत्र से सम्बद्ध होता है, जिसमें श्रवण, वाचन, अभिव्यंजन (बोलना) और लेखन जैसे मौखिक संप्रेषण के केन्द्र होते हैं। औपचारिक शिक्षा अन्य रीतियों की अपेक्षा मौखिक संप्रेषण से अधिक होती है। इसलिए बायाँ खण्ड प्रमुख माना जाता है। बायें खण्ड में पुरुषों जैसी प्रतिद्वन्द्विता, स्वार्थपरता, आक्रामकता की विशेषताएँ होती हैं; दायें खण्ड में प्रेम, करुणा और संपोषण जैसी स्त्रियोचित विशेषताएँ होती हैं।

इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों को संतुलित करने पर अर्धनारीश्वर की उत्पत्ति होती है, जिसमें स्त्री-पुरुष की विशेषताएँ संतुलित रहती हैं। स्वर योग के परिप्रेक्ष्य में, जब बायीं नासिका प्रवाहित होती रहती है, तब मस्तिष्क का

दाहिना भाग सक्रिय हो जाता है, जब दायीं नासिका प्रवाहित होती है तब मस्तिष्क का बायाँ भाग सक्रिय हो जाता है, और जब दोनों नासिकाएँ समान रूप से प्रवाहित होती हैं तब मानव मस्तिष्क की क्रियाओं का समन्वित रूप से सर्वोत्तम संचालन होता है, क्योंकि सुषुम्ना नाड़ी जाग्रत हो जाती है।

नासिका चक्र का एकांतरण स्नायु तंत्र के लिए आवश्यक है, क्योंकि इससे अनुकम्पी तथा परानुकम्पी तंत्र सामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य करते हुए शरीर के अन्य सभी अंगों के कार्य-व्यवहार को प्रभावित करते हैं और उनके स्वाभाविक संतुलन को कायम रखते हैं। जिस क्षण मस्तिष्क का सामंजस्य बिगड़ता है, उसका प्रभाव शरीर के सभी तंत्रों पर पड़ता है। चिंता, असुरक्षा या भययुक्त मानसिक स्थिति में मस्तिष्क के परिपथ में ग्रंथियाँ बन जाती हैं। प्राणायाम का अभ्यास इड़ा और पिंगला नाड़ियों को संतुलित बनाकर मस्तिष्क की क्रियाओं को नियमित करता है।

अनुसंधानों ने नासिका झिल्लियों की विशिष्टताओं और दुर्बलताओं को दर्शाया है। अध्ययनों ने इन झिल्लियों में प्रमुख स्नायु तंत्र की अपेक्षा बीस गुणा अधिक स्वैच्छिक तंत्रिका तन्तुओं की उपस्थिति को दर्शाया है। पूरक के दौरान प्रत्येक नासिका में वायु का प्रवाह श्लेष्मा झिल्लियों के अन्दर और नीचे स्थित विशिष्ट एकपार्श्विक स्वैच्छिक तंत्रिका केन्द्रों को प्रेरित करता है, जो श्वसन, संचरण, पाचन इत्यादि जैसी स्वैच्छिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करता है।

वास्तव में नासिका श्लेष्मा झिल्लियों के सम्पूर्ण क्षेत्र को कुछ शोधकर्ताओं ने स्वैच्छिक तंत्रिका तंत्र का पृथक् अवयव माना है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह उत्तेजना, क्रियाशीलता, तनाव और विश्राम जैसी विविध शारीरिक एवं मानसिक स्थितियों में प्रतिक्रिया करता है। प्राणायाम के अभ्यासों के दूरगामी प्रभाव को इसके आलोक में समझा जा सकता है। चूँकि इनका उद्देश्य इड़ा एवं पिंगला को संतुलित करना है, ये अभ्यास सम्पूर्ण स्वैच्छिक तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करते हैं, और इस प्रकार सम्पूर्ण शरीर और मन को संतुलन एवं सामंजस्य की स्थिति में ले आते हैं।

नासिका अवरोध एवं नाक की देख-भाल

कई शोधों तथा रोग-विषयक अध्ययनों में नासिकाओं की अनवरुद्धता और पूर्ण क्रियाशीलता की आवश्यकता के विषय में चर्चा की गयी है। इस संदर्भ

में बुखारेस्ट, रोमानिया के कान-नाक-गला रोग विशेषज्ञ डॉ.आइ.एन रेगा के कार्य की समीक्षा और व्याख्या की जानी चाहिए। जन्म से ही नाक के मध्यपट में मौजूद विकृति के कारण उत्पन्न हुए एकपार्श्वीय नासा अवरोध पर लगभग 200 रोगियों पर किये गये एक अध्ययन में डॉ. रेगा ने पाया कि जिन रोगियों की श्वास मुख्य रूप से बायीं नासिका से प्रवाहित हो रही थी, वे श्वास की विभिन्न प्रकार की बीमारियों से अपेक्षाकृत अधिक पीड़ित थे। इन बीमारियों के अंतर्गत चिरकालिक म्युकोप्युरुलेन्ट साइनोसाइटिस, मध्य एवं आंतरिक कर्ण संदूषण, घ्राण, श्रवण, तथा स्वाद के संवेदन का आंशिक या पूर्ण लोप, पुनरावर्तक ग्रसनीशोथ (फैरेन्जाइटिस), कण्ठशोथ (लैरिन्जाइटिस) और टॉन्सिलशोथ (टॉन्सिलाइटिस), चिरकालिक श्वासनलीशोथ और ब्रॉन्किएक्टैसिस आदि आती हैं।

उन्होंने यह भी पाया कि इस लक्षण-समष्टि वाले लोगों के दूरवर्ती रोगों, जैसे, स्मृति-लोप, बौद्धिक दुर्बलता, सिरदर्द, हाइपर थॉयराइड और उससे सम्बद्ध दाह या अति संवेदना, हृदय-फुफ्फुस दुर्बलता (अतिस्पंदन, दमा जैसी स्थिति, हृदयगति का रुकना), यकृत तथा पित्ताशय की समस्यायें (विभिन्न लक्षण), रक्त तथा लसीका द्रव के निरन्तर परिवर्तित होते कोशिकीय अवयव, चिरकालिक आमाशय-शोथ और वृहदान्त्र-शोथ (अम्लशूल, आमाशय अधोवाह, पाचक व्रण, कोष्ठबद्धता), और यौन तथा प्रजनन रोगों (कामप्रवृत्ति में कमी, अनियमित मासिक स्राव और पुरुषत्व में ह्रास जैसे लक्षण) से भी पीड़ित हो जाने की सम्भावना थी।

इसके विपरीत ऐसे रोगी जिनकी श्वास प्रमुख रूप से दायीं नासिका से प्रवाहित हो रही थी, उनमें धमनीय उच्च रक्तचाप और उसके परिणामस्वरूप होने वाले अनेक रोगों के होने की प्रवृत्ति पायी गयी।

यह अध्ययन किसी निष्कर्ष पर ले जाने की अपेक्षा अनेक विचारों को जन्म देता है और विभिन्न बिन्दुओं पर समालोचना की छूट देता है। यह 1819 तक के अनेक चिकित्सकों द्वारा किये गये प्रयोगमूलक अवलोकनों से भी सहमत है, जो नासा-मार्गों के खुले होने और उनमें बिछे हुए संवेदनशील श्लेष्मा झिल्लियों के अस्तर के संदर्भ में सामान्य शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की ओर ध्यान आकृष्ट कर रहे थे।

नाक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंगों में से एक है। अपनी वातानुकूलन, तापक, छन्ना और आर्द्र करने जैसी क्रियाओं के अतिरिक्त यह शारीरिक, मानसिक,

आत्मिक और आध्यात्मिक अवस्थाओं को सीधे प्रभावित करती है। नेति जैसी यौगिक क्रियाओं, स्वस्थ जीवनशैली और भोजन के द्वारा नाक के स्वास्थ्य को कायम रखा जा सकता है। इसके फलस्वरूप प्राणायाम का अभ्यास समुचित ढंग से किया जा सकेगा और अनुकम्पी एवं परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र संतुलित रहेंगे। शरीर और मन एक समन्वित इकाई के रूप में कार्य करेंगे तथा बोध क्षमता में सुधार आयेगा। घ्राण शक्ति और सूक्ष्म स्तर पर इससे सम्बद्ध क्रियायें सर्वोत्तम ढंग से कार्य करेंगी, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति का संसार और स्वयं अपने साथ सम्बन्ध बेहतर हो जायेगा।

प्राणायाम क्या है?

प्राणायाम एक यथार्थ और नियमनिष्ठ विज्ञान है, जो प्राण के तत्त्व को समझने तथा स्वयं के साथ-साथ सम्पूर्ण सृष्टि का भी मार्गदर्शन करने की विधि बतलाता है। स्वामी शिवानन्द कहते हैं, "जिसने प्राण को पूर्णरूपेण समझ लिया है, उसने ब्रह्माण्डीय जीवन के सार को और उसकी गतिविधियों को समझ लिया है। जो इस तत्त्व पर विजय और नियन्त्रण प्राप्त कर लेता है, वह अपने शरीर एवं मन के साथ-साथ अन्य शरीर, मन तथा इस ब्रह्माण्ड की शक्ति को नियन्त्रित करने में सक्षम है। इस प्रकार, प्राणायाम वह साधन है जिसके माध्यम से योगी इस शरीर में ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डीय जीवन को समझ लेते हैं और पूर्णता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।"

प्राणायाम का माध्यम श्वास होती है। इन अभ्यासों के अन्तर्गत श्वास का सामान्य सीमा के पार मार्गदर्शन, स्थूल एवं सूक्ष्म, दोनों स्तरों पर श्वसन के पूर्ण प्रसार का अनुभव करने के लिए उसे खींचना, तीव्र और धीमा करना सम्मिलित होता है। जब इसमें सफलता प्राप्त हो जाती है, तब प्राण विद्या के अभ्यास के द्वारा प्राण को और आगे की ओर प्रोत्साहित किया जाता है। योगचूड़ामणि उपनिषद् के इकतीसवें श्लोक में कहा गया है –

ऊर्ध्वाध: संस्थितावेतौ यो जानाति स योगवित् ॥

जो जीव के आरोहण एवं अवरोहण (पूरक एवं रेचक) के महत्त्व को जानता है, वह योग को जानता है।

प्राणायाम के सिद्धान्त के अनुसार श्वास की अनैच्छिक क्रिया को, जिसके द्वारा जीव निरंतर ऊपर और नीचे आता-जाता रहता है, सजगता के

द्वारा ऐच्छिक बनाया जा सकता है। श्वास की सजगता और नियंत्रण, मंत्र के साथ श्वास के समन्वयन तथा शरीर के अन्दर प्राण की गति की सजगता के द्वारा श्वसन की प्रक्रिया में दक्षता प्राप्त करना और शरीर के अन्दर ऊर्जा की दो प्रमुख धाराओं, प्राण एवं अपान को समस्वर करना सम्भव है। एक बार जब प्राणायाम के अभ्यासों के द्वारा समस्वरता और नियंत्रण प्राप्त कर लिया जाता है, तब गुणों का अवलोकन करना और उनसे परे जाना, और इस प्रकार मोक्ष प्राप्त करना सम्भव हो जाता है।

प्राणायाम को श्वास से प्रारम्भ होकर मोक्ष के रूप में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचने वाली प्रक्रिया के रूप में समझे जाने पर श्री शंकराचार्य ने भी बल दिया है। वे अपरोक्षानुभूति (श्लोक 118–120) में कहते हैं –

चित्तादिसर्वभावेषु ब्रह्मत्वेनैव भावनात् ।
निरोधः सर्ववृत्तीनां प्राणायामः स उच्यते ॥
निषेधनं प्रपञ्चस्य रेचकाख्यः समीरणः ।
ब्रह्मैवास्मीती या वृत्तिः पूरको वायुरीरितः ॥
ततस्तद्वृत्तिनैश्चल्यं कुम्भकः प्राणसंयमः।
अयं चापि प्रबुद्धानामज्ञानां घ्राणपीडनम् ॥

सभी वस्तुओं, जैसे, मन इत्यादि में ब्रह्म का अनुभव करते हुए जीवन-शक्तियों पर नियंत्रण करना प्राणायाम है। ब्रह्माण्ड का निषेध श्वास का रेचक है। 'मैं ब्रह्म हूँ', इस विचार को ही पूरक कहा गया है। उसके बाद इस विचार का स्थायित्व कुम्भक है। यही बुद्धिमानों का प्राणायाम है, जबकि नाक को दबाना केवल अज्ञानियों का प्राणायाम है।

श्री शंकराचार्य प्राणायाम के अभ्यास के इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं कि इसका एक शारीरिक पक्ष भी है ('नाक को दबाना' नाड़ीशोधन प्राणायाम से सम्बद्ध है)। ऐसा साधक जो स्वयं को इसी पक्ष तक सीमित रखता है, वह प्राणायाम के क्षेत्र के विस्तार को समझ पाने में असमर्थ रहता है। प्राणायाम केवल श्वास का विज्ञान नहीं है, बल्कि ब्रह्माण्डीय ऊर्जा, ब्रह्माण्डीय मन, देश, काल एवं पदार्थ का विज्ञान है। यह ऐसी व्यवस्था है जिसके द्वारा ब्रह्माण्ड को धारण करने वाली प्राणिक ऊर्जा को गतिशील बनाकर उसे अस्तित्व के विभिन्न स्तरों पर पुनः वितरित किया जाता है।

व्युत्पत्ति-मूलक अर्थ

व्युत्पत्ति के आधार पर 'प्राणायाम' शब्द की दो प्रकार से व्याख्या की गयी है। इसे प्राण + आयाम तथा प्राण + यम के रूपों में व्युत्पन्न किया गया है। आयाम शब्द का तात्पर्य होता है 'आयाम का विस्तार', इसलिए पहली व्याख्या के अनुसार प्राणायाम का अर्थ है, प्राण के आयाम का विस्तार। यम शब्द का अर्थ है 'संयम' या 'नियंत्रण', अत: यहाँ प्राणायाम का अर्थ है, प्राण का नियंत्रण या संयम। व्युत्पत्ति-मूलक दोनों ही व्याख्याएँ प्राणायाम का अर्थ प्रतिपादित करने में सक्षम हैं।

प्राण ऐसी शक्ति है जो निरंतर गतिशील रहती है – इसलिए यदि प्राणायाम को प्राण + यम के रूप में समझा जाये, तो गतिमान शक्ति को रोकने के लिए उसे पूरी तरह निरुद्ध करना ही एकमात्र उपाय है, तभी उसकी शक्ति को वश में किया जा सकता है। पूर्ण निग्रह का यह क्षण कुम्भक होता है, जब श्वास को रोका जाता है, नियंत्रित किया जाता है और कुण्डलिनी शक्ति के जागरण तथा परमात्मा के साथ संयुक्त होने के विशिष्ट उद्देश्य से निर्देशित किया जाता है। यद्यपि जब प्राणायाम को प्राण + आयाम के रूप में समझा जाता है, तब इसका तात्पर्य प्राण के आयाम के विस्तार की प्रक्रिया होता है। इस संदर्भ में, प्राणायाम ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा आन्तरिक प्राणिक आयाम का विस्तार होता है, उसमें वृद्धि होती है और उसे रोका जाता है। फलत: शरीर में प्राण की मात्रा उच्चतर आवृत्ति तक सक्रिय हो जाती है।

शास्त्रों में व्यक्ति के अस्तित्व के सात आयामों या स्तरों का वर्णन किया गया है। पहला आयाम स्थूल भूलोक है, जिसका अनुभव मन और इन्द्रियों को होता है। दूसरा भुव: लोक है, जिसमें व्यक्ति स्वप्न देखता और मतिभ्रम के क्षणों का अनुभव करता है। तीसरा स्व: लोक है, जिसका अनुभव गहरी नींद में होता है। चेतना जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्थाओं में इन तीनों लोकों में विचरण करती है। जब बच्चा गर्भ में आता है तब उसके भौतिक शरीर में प्राण उत्पन्न होता है और धीरे-धीरे उसके नियंत्रण-क्षेत्र का विस्तार मानवीय अनुभूतियों के इन तीनों क्षेत्रों में हो जाता है, लेकिन उससे अधिक नहीं। सामान्यत: मनुष्य का बोध इन्हीं तीनों अवस्थाओं तक सीमित रहता है और वह अस्तित्व के गहन स्तरों का ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम नहीं होता है।

अस्तित्व के चार उच्चतर आयामों का प्रतीकात्मक वर्णन मह: लोक, जन: लोक, तप: लोक तथा सत्य लोक के रूप में किया गया है। स्थूल प्राण

इन सूक्ष्म आयामों में प्रवेश करने में असमर्थ होता है। इसलिए प्राणायाम का उद्देश्य प्राण का परिष्कार कर सूक्ष्म शक्ति के रूप में उसका रूपान्तरण करना और तत्पश्चात् उच्चतर लोकों या आयामों तक उसका विस्तार करना है। जब प्राण जाग्रत होकर प्रथम तीन आयामों से आगे बढ़ जाते हैं, तब प्राणायाम का वास्तविक उद्देश्य पूरा होता है।

रूपान्तरण के लिए प्राणायाम

प्राणायाम के अभ्यास के दौरान प्राण अपान के साथ एकाकार होता है और संयुक्त प्राण-अपान सिर की ओर जाते हैं। इस समय प्राण इड़ा और पिंगला के मार्ग को छोड़कर सुषुम्ना की वाहिकाओं के द्वारा भ्रमण करता है। जब प्राण सुषुम्ना से होता हुआ जाता है, तब ज्ञान का प्रकाश प्रदीप्त हो उठता है और कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है। मन विचारशून्य क्षेत्र में प्रवेश करता है। योगी के सभी कर्म-बीज जलकर भस्म हो जाते हैं। इन्द्रियों की आहुति प्राण की अग्नि को समर्पित कर दी जाती है। जब साधक इस प्रक्रिया से होकर गुजरता है, तब मस्तिष्क के सभी सुप्त केन्द्र जाग उठते हैं।

सामान्यत: मस्तिष्क और मन को इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले ज्ञान को ग्रहण करने का अभ्यास होता है। हालाँकि योग में मन को नियन्त्रित करने का बिल्कुल भिन्न दृष्टिकोण है। यह कहता है कि मन और चेतना को संवेदी उद्दीपन मार्गों से विलग कर दो। मस्तिष्क, मन और चेतना इन्द्रियों से विलग होकर कार्य कर सकते हैं। मस्तिष्क और मन को विलग कर देने से चेतना ज्ञान एवं अनुभूति की अधिक शक्तिशाली अवस्था में प्रवेश कर जाती है, और यही योग की शुरुआत है।

प्राणायाम के अभ्यास का सीधा प्रभाव मस्तिष्क की जटिल एवं परिष्कृत क्रियाओं पर पड़ता है। जब योगियों ने मानव व्यक्तित्व की बाधक सीमाओं से आगे जाने के लिए मन और मस्तिष्क के निष्क्रिय भागों को विकसित करने की स्वतन्त्र विधि की सम्भावना की खोज की, तब प्राणायाम का आविष्कार हुआ। इस प्रक्रिया को आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों के माध्यम से समझना भी सम्भव है।

मस्तिष्क में करोड़ों कोशिकाएँ होती हैं, जो बिना किसी नियम के अव्यवस्थित रहती हैं। ई.ई.जी. मशीन ने उन्हें बेतरतीब मस्तिष्क-तरंगों की क्रिया के रूप में प्रदर्शित किया। ये कोशिकाएँ शक्ति की दोलायमान

स्वरूप हैं, जिनमें मस्तिष्क-तरंगों की क्रिया पूर्णरूपेण अंतर्निहित है। मस्तिष्क और मन के अन्दर की अव्यवस्था भी लाखों संस्कारों का परिणाम है, जो अव्यवस्थित ज्यामितीय आकारों और व्यक्ति के क्रियाकलापों, विचारों, निर्णयों, भावनाओं तथा सजगता को समग्रत: प्रभावित करते हैं। मस्तिष्क के मूल तत्त्वों के समान ही विचार प्रक्रिया भी अव्यवस्थित रूप में ही कार्य करती है। प्राणायाम में उन्हें एक स्पन्दनशील इकाई के रूप में एक साथ मिश्रित करने की क्षमता है।

नाड़ियों को पहले संतुलित किये बिना मस्तिष्क या मस्तिष्क के अव्यवस्थित तत्त्वों को नियन्त्रित या व्यवस्थित नहीं किया जा सकता। मस्तिष्क को चक्रों एवं नाड़ियों द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। योग के अभ्यासों के द्वारा इड़ा तथा पिंगला नाड़ियों को संतुलित किये बिना मानसिक संतुलन सम्भव नहीं है। प्राणायाम के अभ्यासों का बहुत महत्त्व है, क्योंकि वे सुषुम्ना नाड़ी एवं कुण्डलिनी के जागरण के लिए इड़ा और पिंगला नाड़ियों को परिष्कृत करते तथा उनके प्रवाह को संतुलित करते हैं। इस प्रकार मस्तिष्क की कोशिकाएँ उत्तेजित हो जाती हैं, मस्तिष्क तरंगें सुचारु रूप से प्रवाहित होती हैं तथा संस्कार पुनर्व्यवस्थित हो जाते हैं। इस प्रकार नयी भाषाएँ सीखी जा सकती हैं, व्यवहार को रूपान्तरित किया जा सकता है, एक संस्कृति का पुनर्निर्माण हो सकता है और एक सभ्यता में पूरी तरह नया मोड़ आ सकता है।

विज्ञान के अनुसार मानव के स्वाभाविक विकास क्रम के दौरान मस्तिष्क के ग्रे मैटर में परिवर्तन आता रहता है। प्राणायाम के अभ्यास के द्वारा यह प्रक्रिया त्वरित हो जाती है और व्यक्ति स्वाभाविक विकासमूलक चक्र से आगे बढ़कर विकास करने में सक्षम हो जाता है। इसके इतने लाभ हैं कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती, केवल योग के क्षेत्र में स्वानुसंधान द्वारा इनका अनुभव प्राप्त किया जा सकता है।

चेतन श्वसन

श्वसन एक अनोखी महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है जो सामान्यत: अचेतन रूप से चलती रहती है, लेकिन व्यक्ति में चेतन श्वसन की क्षमता भी होती है। अन्य अचेतन प्रक्रियायें, जैसे, हृदयगति, शरीर का तापमान और चयापचय की क्रिया, एक सामान्य व्यक्ति द्वारा नियन्त्रित नहीं हो सकती हैं। अचेतन श्वसन

मस्तिष्क की नली में स्थित मेडुला ऑबलॉन्गाटा के द्वारा ऐसा क्षेत्र, जिसे आद्य मस्तिष्क के नाम से जाना जाता है, नियन्त्रित होता है, जबकि चेतन श्वसन का नियन्त्रण मस्तिष्क के सेरेब्रल कॉर्टेक्स के अधिक विकसित क्षेत्रों द्वारा होता है। वस्तुत: चेतन श्वसन सेरेब्रल कॉर्टेक्स का उपयोग करता है और मस्तिष्क के अधिक विकसित क्षेत्रों को उत्तेजित करता है।

एक लम्बी अवधि तक प्राणायाम का नियमित अभ्यास श्वास के कॉर्टिकल नियन्त्रण को सुदृढ़ बनाता है। इस प्रक्रिया को टेलिन्सिफ़ैलाइ-ज़ेशन कहते हैं। इसमें व्यक्ति अचेतन से चेतन श्वसन करने लगता है, जिसका उसके स्वास्थ्य पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। श्वसन के चेतन नियन्त्रण के दौरान सेरेब्रल कॉर्टेक्स मस्तिष्क नली के श्वसन केन्द्र का उपयोग नहीं करता है। कॉर्टेक्स के आवेग भावनाओं से सम्बद्ध मस्तिष्क के आस-पास के क्षेत्रों को भी प्रभावित करते हैं। चेतन श्वसन में सेरेब्रल कॉर्टेक्स की संलग्नता कॉर्टेक्स को विकसित होने के लिए प्रेरित करती है जो साधक को क्रमविकास चक्र की उच्च अवस्थाओं में प्रवेश करने में सहायक होता है।

चेतन श्वसन की सजगता, “मैं श्वास ले रहा हूँ; मैं श्वास छोड़ रहा हूँ” से आरम्भ होती है। सजगता चेतना का ही एक पक्ष है और श्वास प्राण का वाहन है। इस प्रकार प्राण तथा चेतना एक साथ गतिमान होते हैं। श्वास की सजगता का अभिप्राय है कि साधक साथ-साथ चेतना के प्रति सजग है। चेतन श्वसन के अभ्यास के द्वारा साक्षी भाव का विकास होता है और चेतना का विस्तार आरम्भ होता है।

चेतन श्वसन का मन पर शान्तिदायक प्रभाव होता है। यहाँ तक कि श्वास की सामान्य प्रक्रिया पर बिना कोई नियन्त्रण किये, श्वास की सरल सजगता भी श्वसन में एक नियमित और विश्रांतिकर लय उत्पन्न करती है। यह तनावयुक्त मन को शान्त करने की एक प्रभावकारी विधि है। प्राणायाम की अधिक जटिल विधियाँ मस्तिष्क को और भी अधिक गहराई से प्रभावित करती हैं। प्राणायाम जैसी अन्य कोई प्रणाली नहीं है जिसका स्नायु तन्त्र, मस्तिष्क और मन पर अविलम्ब प्रभाव पड़ता हो।

पहला चरण

प्राणायाम में सबसे पहले श्वास की लय के साथ सामंजस्य स्थापित करना होता है। प्राय: शान्त और धीमी लय शरीर तथा मन की शिथिल अवस्था

का संकेत देती है। अनियमित श्वसन का प्रायः अर्थ होता है तनाव। चिन्ता के समय श्वास उथली और तीव्र होती है, क्रोध में छोटी और बलपूर्वक, दुःख में लयहीन तथा हाँफने जैसी, और अवसाद में आह के रूप में निकलती है। अनियमित श्वसन स्नायु-रोगों तथा मन की अशान्त अवस्थाओं से भी सम्बद्ध होता है। यह पाया गया है कि कुछ स्नायु-रोगों में रेचक असमान और अपूर्ण होता है। जबकि दूसरी ओर, धीमा लयबद्ध श्वसन शिथिलीकरण और अल्फ़ा मस्तिष्क तरंगों को उत्पन्न करता है तथा मांसपेशियों के तनाव को कम करता है।

श्वसन की लयें विविध आवृत्तियों एवं तीव्रता वाली मस्तिष्क लयों, हृदयगति, मांसपेशीय तनाव, मानसिक एवं भावनात्मक लयों, हॉरमोन एवं एन्ज़ाइम की लयों, सुप्ति तथा जागरूकता से सम्बद्ध होती हैं। ये लयें रात-दिन, ऋतुओं, वर्षों और ग्रहों के प्रभाव की बाहरी लयों से भी सम्बद्ध होती हैं। प्राणायाम शरीर तथा मन की लयात्मक शक्ति के प्रति सजगता उत्पन्न करता है। व्यक्ति जब अपने शरीर के महत्त्वपूर्ण चक्रों के प्रति सजग हो जाता है, तब वे अधिक अच्छी तरह कार्य करने लगते हैं। साथ-ही-साथ मन को भी इन शक्तियों को नियन्त्रण में रखना सिखाया जा सकता है, जिसके द्वारा चेतना के ऐसे क्षेत्रों में प्रवेश किया जा सकता है जो सामान्य सजगता एवं नियन्त्रण से परे होते हैं।

प्राण निग्रह

तकनीकी दृष्टि से प्रारम्भिक श्वसन अभ्यास प्राणायाम नहीं, बल्कि प्राण निग्रह हैं, जिनमें श्वास और प्राण को नियन्त्रित करना आरम्भ किया जाता है। जब प्राणों पर नियन्त्रण प्राप्त कर लिया जाता है और चक्रों के क्षेत्र में प्राण जाग्रत हो जाते हैं, तब वहीं अभ्यास प्राणायाम का रूप ले लेते हैं। प्राण निग्रह की अवस्था में श्वास का उपयोग प्राणमय कोश में सजगता को विकसित करने और उसे तीव्र बनाने के माध्यम के रूप में किया जाता है। स्नायु तंत्र अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा प्राप्त करने लगता है, जो प्राणायाम के उच्च अभ्यासों के प्रभावों का सामना करने के लिए आवश्यक है।

धीरे-धीरे शारीरिक संरचना में प्राण जाग्रत हो जाते हैं और चक्रों तथा नाड़ियों से अवरोध दूर हो जाते हैं। इस प्रकार कुण्डलिनी जागरण का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। अमृतनाद उपनिषद् के सातवें श्लोक के अनुसार –

यथा पर्वतधातुनां दह्यन्ते धमता मलाः।
तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यन्ते प्राणधारणात् ॥

जिस प्रकार पर्वतों से प्राप्त हुए खनिजों की अशुद्धियों को धौंकनी से जलाया जाता है, उसी प्रकार कर्मेन्द्रियों से उत्पन्न हुई अशुद्धियाँ प्राण को नियन्त्रित करके जलायी जाती हैं।

प्राण निग्रह के प्रभाव को शरीर के हल्केपन और ओजस्विता तथा शान्त-शिथिल मन के द्वारा अनुभव किया जा सकता है, और तब प्राणायाम के अभ्यास के लिए शक्ति तथा क्षमता प्राप्त हो जाती है।

प्राणायाम कुम्भक है

वास्तव में श्वास को रोक रखने की अवधि, कुम्भक ही प्राणायाम है। पूरक तथा रेचक को निर्देशित करने से कुम्भक लगाने में सहायता मिलती है, इससे अंतर नहीं पड़ता है कि इसका प्रयोग कहाँ किया गया है। उदाहरण के लिए, नाड़ी शोधन प्राणायाम में कुम्भक का अभ्यास पूरक और/या रेचक के बाद किया जाता है, लेकिन भस्त्रिका में पूरक और रेचक के तीव्र चक्र के बाद इसका अभ्यास किया जाता है। योग सूत्र (2:49) में महर्षि पतंजलि ने कहा है –

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥

पूरक और रेचक की गति में विराम बना रहना ही प्राणायाम है।

योग याज्ञवल्क्य संहिता (6:25) ने भी श्वास को रोक रखने की अवधि के आधार पर प्राणायाम की तीन श्रेणियों का वर्णन करते हुए प्राणायाम और कुम्भक को समान माना है। ये तीन श्रेणियाँ हैं –

- अधम प्राणायाम (इसमें पसीना आता है),
- मध्यम प्राणायाम (इसमें पसीने के साथ थरथराहट होती है)
- उत्तम प्राणायाम (इसमें आकाशगमन होता है)

नये अभ्यासियों के लिए कुम्भक लगाना कठिन होता है, लेकिन क्रमबद्ध और नियमित अभ्यास से यह सरल, सुविधापूर्ण और लम्बा होता जाता है। श्वास को रोक कर रखना उन लोगों के लिए अधिक आसान होता है, जिन्होंने

योग के अन्य अभ्यास किये हैं। ऐसे कुछ विरले ही सौभाग्यशाली लोग होते हैं जिनकी कुण्डलिनी जाग्रत रहती है। प्राणायाम के पहले प्रयास में ही उन्हें केवल कुम्भक (सहज कुम्भक) का अनुभव हो सकता है। यद्यपि प्रारम्भिक अनुभवों के बावजूद सभी साधकों के लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि इसका अभ्यास क्रमबद्ध ढंग से किया जाये, तभी प्राणायाम की क्षमता का अनुभव पूरी तरह हो पायेगा। (अगले अध्याय में कुम्भक के साथ-साथ पूरक एवं रेचक का वर्णन विस्तार से किया गया है।)

प्राणायाम की इकाइयाँ

प्राणायाम के क्रमबद्ध अभ्यास का पहला मापदण्ड है, श्वास का संतुलित अनुपात। समय के अनुपात का गहरा प्रभाव मन और प्राण पर पड़ता है। स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ने 1979 में स्पेन के योग शिक्षकों को प्राणायाम विज्ञान की व्याख्या करते हुए बताया था, "यदि कोई नाड़ीशोधन के पाँच चक्र भी समय के सही अनुपात के साथ कर पाये, तो वह लय समाधि की अवस्था को प्राप्त कर लेगा।" प्राणायाम के अभ्यासों को प्रस्तुत करने वाले प्राचीन योगी इस तथ्य से पूर्णतया अवगत थे और उन लोगों ने घड़ी जैसे यंत्र के अभाव में प्राणायाम की इकाइयों को मापने की विभिन्न युक्तियाँ निकालीं। समय की प्रत्येक इकाई मंत्र कहलाती थी। निम्नलिखित शारीरिक क्रियायें मंत्र की धारणा को समझने के लिए मार्गदर्शन करती हैं। प्रत्येक क्रिया एक मंत्र की द्योतक है –

- पलक झपकना,
- ह्रस्व स्वर के उच्चारण में लगने वाला समय,
- ताली बजाने के पश्चात् तीन बार अपने घुटनों को छूने में लगने वाला आवश्यक समय,
- एक सामान्य श्वसन में लगने वाला समय,
- ॐ के उच्चारण में लगने वाला समय ।

चूँकि प्राणायाम का प्रशिक्षण हमेशा गुरु द्वारा शिष्य को दिया जाता था, इसलिए यथार्थ संतुलन सही मार्गदर्शन में ही प्राप्त होता था। आधुनिक काल में घड़ी का आविष्कार हो जाने के बाद भी पूरक, रेचक और कुम्भक को मापना एक उलझन भरा सवाल बना हुआ है। अभ्यास के दौरान घड़ी देखते रहना या यहाँ तक कि मानसिक रूप से गिनती करना भी ध्यान को विचलित कर सकता

है। चौबीस अक्षरों वाले गायत्री मंत्र की सहायता से श्वास को मापना सबसे अच्छा तरीका है। गायत्री मंत्र के एक बार उच्चारण से पूरक के लिए और दो बार उच्चारण से रेचक के लिए उपयुक्त समय मिलता है। प्राणायाम के लिए गायत्री सर्वोत्तम इकाई है, लेकिन यदि किसी के लिए एक पूरक में इसका उच्चारण कर पाना सम्भव नहीं हो, तो छोटे मंत्रों या केवल बराबर गिनती का उपयोग भी किया जा सकता है (अध्याय 7 – 'प्राण एवं मंत्र' देखें)।

काल की इकाई के साथ देश की इकाई का ध्यान रखना भी आवश्यक है। यह उस शक्ति को मापता है जिसके साथ पूरक एवं रेचक का अभ्यास किया जाता है। छोड़ी गयी श्वास के प्रवाह को नाक से एक विशेष दूरी पर अनुभव किया जा सकता है और इसे ऋषियों द्वारा अंगुलों से मापा जाता था। देश की इकाई के परिप्रेक्ष्य में वायु का दबाव समान रहना चाहिए, पूरक तथा रेचक में सहजता होनी चाहिए और आदर्शत: रेचक की लम्बाई पूरक की दुगुनी होनी चाहिए, हालाँकि प्रारम्भ में समान पूरक और रेचक के साथ अभ्यास किया जा सकता है। समग्रत: प्राणायाम का अभ्यास पूर्ण सतर्कता के साथ करना चाहिए, अपनी क्षमता का ध्यान रखते हुए इसे धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए, क्योंकि अनुपात ही श्वास नियन्त्रण के स्वाभाविक विकास को दर्शाता है।

कुम्भक का महत्त्व

श्वसन प्रक्रिया के तीन अंग हैं – पूरक, रेचक और कुम्भक। योग शास्त्रों में कहा गया है कि कुम्भक प्राणायाम है और प्राणायाम कुम्भक है; पूरक और रेचक नहीं, जोकि सामान्य प्रक्रियायें हैं। यद्यपि यह स्मरण रखना चाहिए कि पूरक और रेचक कुम्भक के ही अंग हैं। श्वास को रोक कर रखने के लिए पूरक तथा रेचक आवश्यक हैं। इसलिए श्वास के तीन अवयव भी प्राणायाम के तीन अंग हैं।

पूरक का वर्णन सक्रिय या धनात्मक श्वास के रूप में, रेचक का निष्क्रिय या ऋणात्मक श्वास के रूप में, और कुम्भक का द्वैत से परे जाने के रूप में किया गया है। पूरक श्वसन की सक्रिय प्रक्रिया है और इसमें फेफड़ों में श्वास को ले जाने के लिए पेशियों के प्रयास की आवश्यकता होती है। सामान्य रेचक निष्क्रिय प्रक्रिया है और इसके लिए पेशीय प्रयास की आवश्यकता नहीं होती है, बल्कि मध्यपट और पसलियाँ अपने मूल स्थानों पर वापस लौट जाती हैं। प्राणायाम में रेचक प्राय: धीमी तथा नियन्त्रित प्रक्रिया होती है। सामान्यत: यह पूरक के समान या दुगुनी लम्बाई की होती है। चेतन रेचक का मुख्य लाभ यह होता है कि इससे शिथिलीकरण की प्रतिक्रिया पर चेतन नियन्त्रण का विकास होता है। धीमा रेचक सहज रूप से किया जाता है, जैसे कि जब कोई दर्द से विलाप कर रहा हो या कराह रहा हो, क्योंकि यह मस्तिष्क के पीड़ा अनुभव करने वाले केन्द्र से उसे दूर कर देता है। धीमे रेचक के चेतन प्रयास के लिए मस्तिष्क के सेरेब्रल कॉर्टेक्स की मदद की आवश्यकता होती है। सेरेब्रल कॉर्टेक्स मध्य मस्तिष्क में श्वसन केन्द्र को अवरोधी आवेग संप्रेषित करता है। कॉर्टेक्स से संप्रेषित हुए ये अवरोधी आवेग भावनाओं से सम्बद्ध हाइपोथैलेमस के निकटवर्ती क्षेत्र में फैल जाते हैं और उस क्षेत्र को शान्त कर देते हैं। इस प्रकार धीमे रेचक का शान्तिकर प्रभाव होता है।

अमृतनाद उपनिषद् में पूरक एवं रेचक की दोहरी प्रक्रिया का काव्यात्मक वर्णन किया गया है (श्लोक 11 – 12) –

उत्क्षिप्य वायुमाकाशे शून्यं कृत्वा निरात्मकम् ।
शून्यभावे नियुञ्जीयाद्रेचकस्येति लक्षणम् ॥
वक्त्रेणोत्पलनालेन तोयमाकर्षयेन्नरः ।
एवं वायुर्ग्रहीतव्यः पूरकस्येति लक्षणम् ॥

आकाश (हृदय क्षेत्र में) से वायु को उठाना और शरीर को (वायु से) शून्य तथा रिक्त करना और (आत्मा को) शून्य की स्थिति से एकात्म करना रेचक कहलाता है। पूरक वह कहलाता है जब व्यक्ति वायु को इस प्रकार अन्दर ग्रहण करता है, जैसे कोई कमल-नाल से जल को अपने मुँह में लेता हो।

प्राणायाम का वर्गीकरण

पूरक, रेचक और कुम्भक की प्रक्रियाओं को घटाने-बढ़ाने से विविध प्राणायाम प्राप्त होते हैं। नौ मुख्य शास्त्रीय प्राणायाम हैं – नाड़ी शोधन, भस्त्रिका, कपालभाति (एक षट्कर्म भी), शीतली/शीतकारी, भ्रामरी, उज्जायी, मूर्च्छा, सूर्यभेद और चन्द्रभेद। इनमें से कुछ प्राणायाम शरीर का ताप बढ़ाते हैं और कुछ शीतल करते हैं। कुछ प्राणायाम स्नायु तन्त्र को उत्तेजित करते हैं, जबकि अन्य उसमें सामंजस्य लाते तथा शिथिल करते हैं। नाड़ी शोधन संतुलनकारी हैं, भस्त्रिका एवं कपालभाति सक्रिय बनाते हैं और भ्रामरी तथा उज्जायी शिथिल करते हैं। शीतली/शीतकारी और चन्द्रभेद शरीर के आन्तरिक तापमान को कम करते हैं; सूर्यभेद और मूर्च्छा शरीर के तापमान को बढ़ा देते हैं।

प्राणायाम की सभी विधियाँ सामान्य श्वसन की दर को बदल देती हैं, लेकिन कुछ विधियाँ अन्य विधियों से अधिक बदल देती हैं। भस्त्रिका और कपालभाति पूरक और रेचक को तीव्र कर देते हैं। इन्हें अतिसंवातन की विधि माना जा सकता है, क्योंकि इनमें लम्बे समय तक त्वरित श्वसन का अभ्यास किया जाता है। इसी प्रकार भ्रामरी, उज्जायी, शीतली और शीतकारी को न्यूनसंवातन की विधि कहा जा सकता है, क्योंकि इनमें धीमे श्वसन, प्रायः पाँच श्वास प्रति मिनट की दर से अभ्यास किया जाता है।

अतिसंवातन विधियाँ शक्तिवर्द्धक प्राणायामों की श्रेणी में आती हैं। त्वरित तथा गहरा श्वसन कूपिका (ऐलवियोलर) संवातन को बढ़ाता है और फेफड़ों

के शीर्ष पर तथा उन क्षेत्रों में जहाँ रक्त का संचार धीमा और निष्क्रिय है, रक्त प्रवाह को उत्प्रेरित करता है। त्वरित पेशीय गति और शरीर के सभी भागों में चयापचय की दर में हुई वृद्धि के कारण इनका सम्पूर्ण शरीर पर उद्दीपक प्रभाव पड़ता है। ये विधियाँ फेफड़ों और उदर का व्यायाम करती हैं तथा स्नायु तन्त्र को संतुलित करने और शक्तिशाली बनने के लिए उद्दीपित करती हैं। शरीर और मन पर इनका शोधक और तापक प्रभाव भी पड़ता है।

न्यून संवातन की विधियाँ धीमी और सूक्ष्म होती हैं। इनसे श्वसन की क्षमता का क्रमश: विस्तार होता है। ये सामान्यत: प्रशान्तक प्राणायाम होते हैं और इनका प्रभाव लगभग अतिसंवातन के विपरीत होता है। ये विधियाँ चयापचय की दर के साथ-साथ मस्तिष्क तरंगों की आवृत्ति को कम कर देती हैं, जिससे ध्यान की शिथिलतापूर्ण अवस्था प्राप्त होती है। इस प्रकार स्नायु तन्त्र पर नियन्त्रण की अनुभूति होती है। इन अभ्यासों से कार्बन-डाइऑक्साइड के स्तर में किंचित् वृद्धि हो सकती है, हालाँकि ऑक्सीजन का स्तर सामान्य ही रहता है।

पूरक तथा रेचक की दर में चेतन रूप से किया गया परिवर्तन उपर्युक्त सभी प्रक्रियाओं के नियन्त्रण में सुधार लाता है। ऑक्सीजन का स्वीकरण और कार्बन-डाइऑक्साइड का निष्कासन चेतन तथा सफल ढंग से होने के साथ-साथ मानसिक एवं भावनात्मक स्थितियों में भी सुधार होता है। पूरक एवं रेचक पर नियन्त्रण प्राणायाम की प्रारम्भिक स्थिति है। इसका उद्देश्य पूर्ण स्वास्थ्य और प्राणशक्ति में सुधार लाना, और साधक को बाद की अवस्थाओं के लिए तैयार करना है। अच्छा स्वास्थ्य, कुशल श्वसन क्रिया और बढ़ी हुई प्राण-शक्ति प्राणायाम के उच्च अभ्यासों के लिए, जिनमें कुम्भक का समावेश होता है, सुदृढ़ आधार का निर्माण करते हैं।

कुम्भक क्या है?

कुम्भ का अर्थ है घड़ा, एक पात्र, जो कुछ धारण कर सकता है। प्राणायाम के संदर्भ में इसे श्वास को रोकना कहा जाता है। कुम्भक पूरक के बाद (अन्तर्कुम्भक) और रेचक के बाद (बहिर्कुम्भक) लगाया जा सकता है। कुम्भक के दो प्रकार हैं– सहित कुम्भक, जिसे उद्देश्यपूर्वक किया जाता है तथा केवल कुम्भक, जिसमें श्वास सहज रूप से रुक जाती है। कुम्भक प्राणायाम के सभी अभ्यासों का एक अंग है। योगसूत्र में महर्षि पतंजलि ने

प्राणायाम का वर्णन कुम्भक के रूप में किया है। प्राणायाम के सभी अभ्यासों का उद्देश्य केवल कुम्भक लगाना होता है, जो समाधि की अवस्था के तुल्य होता है। अमृतनाद उपनिषद् के अनुसार (श्लोक 13–14) –

नोच्छ्वसेन्न च निश्वासेन्नैव गात्राणि चालयेत् ।
एवं भावं नियुञ्जीयात् कुम्भकस्येति लक्षणम् ॥
अन्धवत् पश्य रूपाणि शब्दं बधिरवच्छृणु ।
काष्ठवत् पश्य वै देहं प्रशान्तस्येति लक्षणम् ॥

जब कोई श्वास या प्रश्वास नहीं हो और शरीर गतिहीन, केवल एक स्थिति में रहे तो उसे कुम्भक कहते हैं। तब वह अन्धे के समान रूपों को देखता है, बधिर के समान शब्दों को सुनता है और काष्ठ के समान शरीर को मानता है। ये उसके लक्षण हैं जिसने प्रशान्ति की अवस्था प्राप्त कर ली हो।

कुम्भक का शरीर-क्रियाविज्ञान

कुम्भक के अभ्यास के दौरान शरीर में ऑक्सीजन के स्तर का कम होना और कार्बन-डाइऑक्साइड के स्तर का बढ़ना इस पर निर्भर रहता है कि चयापचय की गति क्या है और व्यक्ति कितना शिथिल या तनावयुक्त है। मूल मस्तिष्क नली से प्राप्त हुए संकेत व्यक्ति को अगली श्वास लेने के लिए बाध्य करने लगें, इसके पहले कुम्भक का मुख्य कार्य होता है स्नायु तन्त्र को शरीर में कार्बन-डाइऑक्साइड के बढ़े हुए स्तर के प्रति सहनशील होने के लिए प्रशिक्षित करना। मस्तिष्क की अनेक रक्त केशिकाएँ निष्क्रिय पड़ी रहती हैं और जब अधिक रक्त की आवश्यकता होती है तब वे सक्रिय हो जाती हैं। कार्बन-डाइऑक्साइड का बढ़ा हुआ स्तर मस्तिष्क की केशिकाओं को फैलने के लिए उद्दीप्त करता है। इस प्रकार मस्तिष्क की अधिक केशिकाएँ सक्रिय होकर मस्तिष्क के रक्त संचार में सुधार लाती हैं।

मस्तिष्क में कार्बन-डाइऑक्साइड की एक निश्चित मात्रा संचित रहती है, जो फेफड़ों को पर्याप्त ऑक्सीजन के आदान-प्रदान के योग्य बनाती है और उनकी धारक क्षमता को बढ़ाती है। प्राय: जब कोई व्यक्ति गहरी श्वास नहीं ले पाता है, तो इसका अर्थ होता है कि मस्तिष्क में कार्बन-डाइऑक्साइड की मात्रा कम हो गयी है। फेफड़ों में कोई गड़बड़ी नहीं हुई है, बल्कि मस्तिष्क के ऊतकों में कार्बन-डाइऑक्साइड की सान्द्रता इतनी कम हो गयी है कि गहरी श्वसन

प्रक्रिया सम्भव नहीं हो पा रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति ने मस्तिष्क में कार्बन-डाइऑक्साइड के संचयन की सुविधा श्वसन की प्रवृत्ति को उत्प्रेरित करने और ऑक्सीजन के उपभोग की प्रक्रिया को अधिक सक्षम बनाने के लिए प्रदान की है। कुम्भक मस्तिष्क के ऊतकों में कार्बन-डाइऑक्साइड के स्तर को बनाये रखता है ताकि परिसंचरण तन्त्र ऑक्सीजन को पूरी तरह अवशोषित कर सके। इसके अतिरिक्त, जब मस्तिष्क में कार्बन-डाइऑक्साइड संचित रहती है, तब यह आयनों के स्वीकरण की क्षमता को बढ़ाती है।

रक्त में कार्बन-डाइऑक्साइड की बढ़ी हुई मात्रा से चेतना की अवस्थाओं में परिवर्तन तथा इसके विस्तार जैसे अनुभव हो सकते हैं। यह एक रोचक तथ्य है कि शोधकर्ता जे.वॉल्प (साइकोथेरेपी बाइ रेसिप्रोकल इन्हिबीशन, स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटि प्रेस, 1958) ने CO_2 द्वारा उपचार की सलाह दी है। अपने प्रयोगों के आधार पर उन्होंने तनाव के उपचार के लिए 65% कार्बन-डाइऑक्साइड और 35% ऑक्सीजन प्रदान करने का सुझाव दिया, जिससे यह संकेत मिला कि इस प्रकार एक से चार बार अन्त:श्वसन कुछ लोगों के तनाव को कुछ घंटों या कुछ लोगों के तनाव को कई हफ़्तों के लिए दूर कर देता है। दूसरे प्रयोग में अत्यंत चिन्ताग्रस्त लोगों के तीन समूह बनाये गये। एक समूह ने कार्बन-डाइऑक्साइड के मिश्रण का अन्त:श्वसन किया, दूसरे का अतिसंवातन किया गया और तीसरे ने केवल वायु को श्वास में लिया। पहले समूह में तनाव का स्तर प्रत्यक्षत: कम हो गया। चौबीस घंटे की अवधि के बाद भी उनमें तनाव के कम होने की प्रवृत्ति पायी गयी, जो अन्य दो समूहों में उपस्थित नहीं थी।

इस आलोक में कुम्भक को आत्म-प्रदत्त CO_2 उपचार कहा जा सकता है। यद्यपि एक निश्चित स्तर तक ही इसका प्रभाव लाभदायक होता है। इससे अधिक मात्रा में यह स्पष्ट रूप से हानिकारक हो सकता है, यहाँ तक कि इसके कारण आत्म-विस्मृति और मतिभ्रम भी हो सकता है। इसीलिए हमेशा इस बात पर जोर दिया जाता है कि कुम्भक का अभ्यास किसी अनुभवी शिक्षक के मार्गदर्शन में ही किया जाना चाहिए। चयापचय के स्तर और मस्तिष्क की क्रिया को इस प्रकार अनुकूलित करना चाहिए कि उससे अनुकूलतम स्थिति उत्पन्न हो; तभी यह लाभप्रद हो पायेगा।

कुम्भक का दूसरा पक्ष यह है कि यह व्यक्ति को मस्तिष्क के उस भाग पर नियन्त्रण का प्रशिक्षण देता है जो अनैच्छिक प्रक्रियाओं को नियन्त्रित करता है। हम हाथों को हिला सकते हैं, हाइपोथैलेमस को नहीं। यद्यपि कुम्भक के अभ्यास

से मस्तिष्क को अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप कार्य करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। इसकी क्रियाओं को रोका या तीव्र किया जा सकता है। इसी प्रकार अनेक योगी अपने हृदय की गति को अनेक बार रोकने और पुन: चलाने में सक्षम रहे हैं। हृदय एक स्वतन्त्र अंग नहीं है; यह मस्तिष्क के हाइपोथैलेमस के एक उन्नत केन्द्र द्वारा नियन्त्रित होता है। मस्तिष्क के नियन्त्रण के साथ हृदय के व्यवहार, शरीर के तापमान, पाचन तन्त्र इत्यादि को स्वत: नियन्त्रित किया जा सकता है। कुम्भक की उन्नत अवस्थाओं में श्वास को रोक रखने की अवधि को तब तक बढ़ाया जा सकता है जब तक कि सारी महत्त्वपूर्ण क्रियायें बन्द न प्रतीत होने लगें। इस प्रकार श्वास को लगातार कई दिनों के लिए भी रोका जा सकता है। योगियों को प्राय: शीतनिद्रा की स्थिति में पृथ्वी के अन्दर कई दिनों के लिए दबा दिया जाता रहा है, जिसे भू-समाधि कहा जाता है।

केवल कुम्भक

सहज रूप से श्वास को रोके रखना केवल कुम्भक कहलाता है, जिसमें साधक बिना किसी चेतन प्रयास के श्वास को रोक लेता है। इस प्रकार के श्वास अवरोधन में पूरक एवं रेचक नहीं होते हैं तथा इसमें स्थान, समय और संख्या का प्रतिबन्ध नहीं होता है। यदि प्राणायाम का अभ्यास नहीं भी कर रहे हों, तो भी केवल कुम्भक किसी को भी, कहीं भी, किसी भी समय लग सकता है। इसमें कोई ख़तरा नहीं होता है, क्योंकि यह शरीर में सहज रूप से हो जाता है। जब केवल कुम्भक लगता है तब भ्रूमध्य में एक प्रकाश-बिन्दु उत्पन्न होता है और सम्पूर्ण चिदाकाश में फैल जाता है। मस्तिष्क का अग्रभाग ज्योतिर्मय हो जाता है, मानो सबेरा हुआ हो, और सामान्यत: बन्द आँखों के सामने छाये हुए अन्धकार से व्यक्ति बाहर आ गया हो। हठयोग प्रदीपिका (2: 73) में कहा गया है –

प्राणयामोऽयमित्ययुक्त: स वै केवलकुम्भक:।
कुंभके केवले सिद्धे रेचपूरकवर्जिते ॥

केवल कुम्भक के सिद्ध होने पर पूरक और रेचक से मुक्ति मिल जाती है। ऐसे प्राणायाम को वास्तव में केवल कुम्भक कहते हैं।

केवल कुम्भक के दौरान योगी बुद्धि के स्तर से ऊपर, ध्यान की सीमाओं से परे स्थित होते हैं। स्वामी शिवानन्दजी कहते हैं, "(केवल कुम्भक के द्वारा)

योगी का ऐसे तथ्यों से सामना होता है, जिसे सामान्य चेतना नहीं समझ सकती है। इसे उपयुक्त प्रशिक्षण के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है और शरीर की सूक्ष्म शक्तियों को प्रभावित कर उनसे मन का उच्च तलों पर आरोहण करवाया जाता है। जब मन का उत्कर्ष बोध की पराचेतन अवस्था तक हो जाता है, तब वह वहाँ से कार्य करना आरम्भ कर देता है और उच्च ज्ञान की अनुभूति प्राप्त करता है। प्राणायाम का परम उद्देश्य यही है, जिसे नियन्त्रण के द्वारा प्राप्त किया जाता है। वह, जो प्राणायाम और केवल को जानता है, वास्तविक योगी है।"

जिसने केवल कुम्भक में दक्षता प्राप्त कर ली है, वह श्वास को जितनी देर चाहे रोक कर रख सकता है। वह हठ योग में दक्ष हो चुका है और राज योग की अवस्था में पहुँच गया है। जो केवल कुम्भक में दक्ष हो गया है, उसमें अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्रकट होने लगती हैं। वह दर्द से अप्रभावित रहता है, उसके उत्सर्जन और नींद में कमी आ जाती है, तथा उसके शरीर और मुख से दुर्गन्ध नहीं आती है। वह दुबला-पतला होता है, लेकिन उसके मुखमण्डल पर चमक होती है। दत्तात्रेय के योग शास्त्र श्लोक (146 – 147) में कहा गया है –

केवले कुम्भके सिद्धे रेच-पूरक-वर्जिते ।
न तस्य दुर्लभं किंचित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥

जिसने बिना रेचक और पूरक के केवल कुम्भक में सिद्धि प्राप्त कर ली है, उसके लिए तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

हठयोग प्रदीपिका ने भी इसी धारणा की पुष्टि की है (2:74) –

न तस्य दुर्लभं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
शक्तः केवलकुंभेन यथेष्टं वायुधारणात् ॥

जिसे केवल कुम्भक सिद्ध हो गया है और जो इच्छानुसार अपनी श्वास को रोक सकता है, उसके लिए तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

कुम्भक एवं समाधि

कुम्भक के समय जब शरीर, श्वास और मन स्थिर तथा शान्त हो जाते हैं, तब प्राण की मात्रा में वृद्धि होती है। स्थिर तथा शान्त रहने से ठीक उसी

प्रकार प्राण और चेतना में प्रबलता आ जाती है, जिस प्रकार प्रेशर कुकर में दबाव निर्मित होता है – शरीर के अन्दर ऊर्जा और ताप की तीव्रता बढ़ जाती है, क्योंकि वे उससे बाहर नहीं निकल पाते हैं। जब तक कुम्भक लगा रहता है, तब तक यह दबाव बना रहता है, जिससे प्राण और चेतना का अविच्छिन्न प्रवाह प्राणमयकोश में होता रहता है।

प्राण के विस्तार का मन पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। मानसिक शक्ति में वृद्धि होती है और सजगता तीव्र हो जाती है। स्थिरता के कारण मन की क्षमता बढ़ जाती है, क्योंकि किसी प्रकार की अस्थिरता या अशान्ति नहीं रहती है। जिस प्रकार प्रकाश को लेज़र की किरण में रूपान्तरित किया जाता है, उसी प्रकार मन पूर्णत: एकाग्र हो जाता है। इस अवस्था में मन की वृत्तियों का पूरी तरह अन्त हो जाता है। मन का विक्षेप समाप्त हो जाता है। मानसिक बोध तथा प्राणिक संरचना भौतिक शरीर से अपना सम्बन्ध विच्छिन्न कर लेती हैं। इस समय तीव्रता का पूर्ण अनुभव होता है – शान्ति की तीव्रता, मन की तीव्रता, प्राण की तीव्रता और अभ्यास की तीव्रता। अभ्यास की तीव्रता साधक को एकाग्र होने में सक्षम बनाती है, और समाधि का मार्ग प्रशस्त करती है।

शरीर-क्रियाविज्ञान की दृष्टि से भी इस प्रक्रिया की व्याख्या की जा सकती है। कुम्भक से मस्तिष्क के अन्दर कार्बन-डाइऑक्साइड के स्तरों में वृद्धि हो जाती है। इसके प्रतिक्रियास्वरूप, स्नायु कोशिकाएँ शरीर को श्वास लेने की चेतावनी देने के लिए मस्तिष्क में स्नायु आवेशों को प्रेषित करती हैं। स्नायु आवेश के प्रेषण में एक से अधिक स्नायु कोशिकाएँ संलग्न रहती हैं; इसमें अन्तर्ग्रथन (वह बिन्दु जहाँ एक आवेश एक स्नायु कोशिका से दूसरी में जाता है) और स्नायुसम्प्रेषक की, जो संश्लिष्ट स्नायु कोशाएँ होती हैं, आवश्यकता होती है। कुम्भक जितनी अधिक देर तक किया जायेगा, उतने ही अधिक स्नायु आवेश उत्पन्न होकर सम्प्रेषित होंगे।

जब कुम्भक को लगाया जाता है, तब आवेशों के उत्पन्न होते रहने से मस्तिष्क में प्रचुर मात्रा में एकत्र होती हुई स्नायु ऊर्जा नये स्नायविक मार्गों की रचना और निष्क्रिय केन्द्रों को सक्रिय करने के लिए बाध्य करती है। मस्तिष्क वास्तव में प्रकाशित और सजग हो उठता है। इसके अतिरिक्त मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों के बीच की महीन झिल्ली, कॉर्पस कैलोसम कुम्भक के अभ्यास के दौरान सक्रिय हो जाती है। ये स्नायु तन्तु बायें तथा दायें गोलार्द्धों के बीच सूचनाओं के आदान-प्रदान में सहायक होते हैं, अर्थात्

सम्पूर्ण मस्तिष्क कार्य कर सकता है और प्रत्यक्ष ज्ञान केवल एक कार्यप्रणाली तक सीमित नहीं रहता है।

योग सूत्र (2:52) में महर्षि पतंजलि ने प्रसुप्त केन्द्रों को प्रकाशित करने वाली कुम्भक की क्षमता का उल्लेख करते हुए कहा है –

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥

इस प्रकार प्रकाश का आवरण विलुप्त हो जाता है।

जब मस्तिष्क की सुप्त क्षमताएँ जाग्रत हो जाती हैं, तब साधक अपने अस्तित्व की गहराइयों और आयामों को जितनी गहनता से समझने लगता है, वह सामान्य अनुभव से परे होता है। सजगता के इस विस्तार का कुछ अंश विभिन्न प्रकार से प्रकट होने वाली सूक्ष्म शक्ति के रूप में प्राण को अनुभव करने की क्षमता प्रदान करता है, जिसे कुम्भक के दौरान चिदाकाश में दृश्यमान प्रकाश के रूप में देखा जाता है।

जब आन्तरिक क्षेत्रों में ऐसी व्यापक क्रिया चलती रहती है, तब बाह्यगत क्रियायें पूरी तरह बन्द हो जाती हैं। दूसरे लोगों को योगी एक शिला के समान स्थिर प्रतीत होता है, लेकिन वास्तव में वह उन क्षेत्रों में चला जाता है जहाँ तर्कपूर्ण बुद्धि की पहुँच नहीं होती। परन्तु यदि योगी प्रकाश के बदले अन्धकार में प्रवेश कर जाए, तो अभ्यास को रोक देना ही बेहतर होगा। यह जड़ समाधि का संकेत है, यह ऐसी अवस्था है जब बाहर और अन्दर सब कुछ थम जाता है, जहाँ कोई विकास नहीं हो पाता है। सभी क्षमताएँ अस्थायी रूप से कार्य वंचित हो जाती हैं, इसके साथ ही, बिना सहायता के इस स्थिति से बाहर निकलने की क्षमता नहीं रहती है।

कुम्भक एवं कुण्डलिनी

कुण्डलिनी जागरण में कुम्भक की प्रक्रिया किस प्रकार सहायक होती है, इसे अन्य परिप्रेक्ष्य में भी देखा जा सकता है। कुम्भक के अभ्यास के दौरान शरीर के अन्दर कुछ घटित होता रहता है। शरीर का तापमान बदल जाता है, त्वचा की प्रतिरोधशक्ति बदल जाती है, मस्तिष्क तरंगों की आवृत्ति निम्न हो जाती हैं और हृदय नाममात्र को क्रिया करता है। ऐसे में पिट्युटरी ग्रंथी से कुछ विशेष एन्ज़ाइम या हॉरमोन निकल कर रक्तप्रवाह में चले जाते

हैं। परिणामस्वरूप ऑक्सीजन के उपयोग की आवश्यकता नहीं रहती। जब ऑक्सीजन के उपयोग को रोक दिया जाता है, तब शरीर के अवयव एक प्रकार के श्वासावरोध को व्यक्त करते हैं।

मूलाधार चक्र कुण्डलिनी शक्ति का निवास स्थान है। सामान्यत: कुण्डलिनी मूलाधार में सुषुप्त रहती है, लेकिन कुम्भक के दौरान मूलाधार के तापमान में वृद्धि हो जाती है। जब ऑक्सीजन का उपभोग घट कर नगण्य हो जाता है, तब कुण्डलिनी को भीषण घुटन होने लगती है। जब मस्तिष्क तरंगें न्यूनतर होती हैं, तब मूलाधार में लहरें उमड़ने लगती हैं और यही कुण्डलिनी का जागरण है।

इसे दूसरे प्रकार से भी समझाया जा सकता है। पूरक करते समय प्राण वायु मणिपुर से ऊपर विशुद्धि की ओर प्रवाहित होती है। रेचक करते समय अपान वायु नीचे की ओर मणिपुर से मूलाधार की ओर प्रवाहित होती है। कुम्भक से अपान और प्राण के साथ समान का योग होता है जिससे मणिपुर में, जोकि प्राण का भंडार है, अत्यधिक दबाव बन जाता है। इन तीन प्राणों का एक प्रबल शक्ति के रूप में विलयन उदान एवं व्यान की धाराओं को क्रियाशील बना देता है। पाँच प्राणों के सक्रिय होने और मणिपुर में सजगता के केन्द्रित होने के साथ ही कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है। यह प्राणायाम की पराकाष्ठा है। प्राण की आरोही धारा और अपान की अवरोही धारा साम्यावस्था में आकर थम जाती हैं। श्वास अस्तित्व के किसी स्तर पर बिना किसी क्रिया के संकेत के या तो बाहर, या अन्दर ही सहज रूप से अवरुद्ध हो जाती है। हठयोग प्रदीपिका (2:41) में कहा गया है –

विधिवत्प्राणसंयामैर्नाडीचक्रे विशोधिते ।
सुषुम्नावदनं भित्त्वा सुखाद्विशति मारुत: ॥

प्राण को विधिवत् संयत कर नाड़ियों एवं चक्रों को विशुद्ध किया जाता है। इस प्रकार प्राण सुषुम्ना का द्वार भेदता है और सरलता से उसमें प्रवेश कर जाता है।

कुम्भक के लिए मार्गदर्शन

कुम्भक को बढ़ाने के लिए प्राणायाम का विधिवत् अभ्यास किया जाना चाहिए। नियमित भोजन होना चाहिए और कब्ज नहीं रहनी चाहिए, ताकि

शरीर में विषाक्त-तत्त्व नहीं पनप सकें। साधक को यौन सुख को भी नियन्त्रित रखना चाहिए, क्योंकि यह क्रिया विषाक्त-तत्त्व उत्पन्न करने वाले हॉरमोनों को पैदा करती है।

कुम्भक का अभ्यास करते समय श्वास को बिना भय के या शरीर में कम्पन के बिना रोक कर रखना चाहिए। कुम्भक को पूरा करने के बाद बिना किसी तनाव के श्वास को धीरे-धीरे, संतुलन के साथ बाहर निकाल देना चाहिए। श्वास को रोक रखने के लिए इच्छाशक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, लेकिन श्वास अन्दर लेते हुए वायु को अन्दर रुके रहने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए। अपनी सीमाओं को बढ़ाने का प्रयास नहीं करना चाहिए। अभ्यास के क्रम में पूरक, रेचक और कुम्भक के निर्धारित अनुपात का पालन करना चाहिए।

कुम्भक के दौरान एक प्रतीक पर ध्यान केन्द्रित कर एकाग्रता प्राप्त की जा सकती है, और प्रकाश सर्वोत्तम प्रतीक है। श्वास को रोक कर रखते समय भ्रूमध्य में प्रकाश का मानस-दर्शन किया जाना चाहिए। यदि कोई प्रकाश का मानस-दर्शन करने में असमर्थ हो, तो उसे अभ्यास आरम्भ करने के पूर्व कुछ समय के लिए मोमबत्ती पर त्राटक का अभ्यास कर लेना चाहिए। यदि कुम्भक के अभ्यास के उपरान्त चिदाकाश अन्धकारपूर्ण हो जाता है, तो यह नकारात्मक लक्षण है। यदि यह अधिक-से-अधिक प्रकाशमान हो जाता है, तो यह सकारात्मक लक्षण है।

कुम्भक का अभ्यास तभी प्रारम्भ करना चाहिए, जब पूरक और रेचक के अनुपातों में दक्षता प्राप्त हो जाये। इस प्रकार नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं और कुम्भक लगाये रखने योग्य हो जाती हैं। योग चूड़ामणि उपनिषद् (श्लोक 93) में कहा गया है कि कुम्भक का अभ्यास तभी करना चाहिए जब रेचक की लम्बाई छब्बीस अंगुल हो जाये। इस दूरी को आसानी से मापा जा सकता है। इसके लिए दोनों हाथों को चेहरे के सामने इस प्रकार रखना चाहिए कि हथेलियाँ नीचे की ओर रहें और अंगुलियाँ सीधी रहें।

प्राणायाम के लाभ

जो शरीर योग की प्रक्रियाओं से गुजरता रहता है, वह वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु से मुक्त हो जाता है।

– श्वेताश्वतर उपनिषद्

प्राणायाम भौतिक शरीर के अन्दर एक ऐसी प्रक्रिया को उत्प्रेरित करता है, जिससे ऊर्जा के अणु तथा मानसिक शक्तियाँ (जो जीवन में एक-दूसरे के साथ अंत:क्रिया करती हैं) एवं चेतना रूपान्तरित हो जाती हैं। जब मन के अणु रूपान्तरित होते हैं, तब प्रेम, करुणा और एकता जैसे उच्च गुण प्रकट होते हैं। पदार्थ ऊर्जा है, इसलिए भौतिक शरीर को ऊर्जा में रूपान्तरित किया जा सकता है। शरीर केवल अस्थि, मज्जा, स्नायु और श्लेष्मा की गठरी नहीं है। इसलिए हमें पुन: विश्लेषण कर शरीर सम्बन्धी अपनी अवधारणा को पुन: पारिभाषित करना चाहिए और यह जानना चाहिए कि इसे किस सीमा तक रूपान्तरित किया जा सकता है।

क्या इस शरीर को प्रकाशकणों में परिवर्तित किया जा सकता है? इसे विज्ञान की दृष्टि से समझा जाना चाहिए, न कि आस्था या विश्वास के आधार पर। यदि शरीर का रूपान्तरण और अणुओं की अवस्था में परिवर्तन सम्भव है, तो कैसे? इसका उत्तर यह है कि शरीर को योग की प्रकिया के माध्यम से तदनुसार रूपान्तरित करके अत्यन्त सूक्ष्म और शुद्ध बनाना होगा। प्राणायाम इसकी कुंजी है। जब योग शास्त्र यह कहते हैं कि व्यक्ति प्राणायाम के द्वारा अपनी परिस्थितियों तथा चरित्र को नियन्त्रित कर सकता है, और व्यक्तिगत जीवन को ब्रह्माण्डीय जीवन के साथ समन्वित कर सकता है, तो वे आन्तरिक रूपान्तरण करने वाले प्राणायाम की शक्ति का उल्लेख कर रहे होते हैं।

जो साधक प्राणायाम के अभ्यासों को नियमित रूप से जारी रखता है, वह पाता है कि उसके अस्तित्व का हर पक्ष हर स्तर पर प्रभावित होता जा रहा है। वह जैसे-जैसे अभ्यासों की गहरायी में उतरता है, उसकी शारीरिक संरचना, त्वचा और शरीर की गंध में परिवर्तन आने लगते हैं। वह हमेशा नयी ऊर्जा से परिपूर्ण रहता है, उसकी इन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं और उनकी बहिर्मुखी प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है। अशुद्धियाँ न केवल भौतिक एवं प्राणिक शरीरों से, बल्कि मानसिक, आत्मिक और कारण शरीर से भी दूर हो जाती हैं। परिणामत: बौद्धिक क्षमता में वृद्धि होती है, और मन तथा विचार अधिक शक्तिशाली हो जाते हैं। प्राण ज्योंही उन्मुक्त होकर अस्तित्व के सभी स्तरों में प्रवाहित होने लगता है, नकारात्मक प्रवृत्तियाँ धीरे-धीरे स्वत: समाप्त होने लगती हैं। पहले जो छोटी-छोटी बातें व्यक्ति को अनियन्त्रित कर देती थीं, वे कहीं विलीन हो जाती हैं, और ब्रह्माण्डीय प्राण के साथ संयुक्तता और अनुभव प्रगाढ़ तथा दृढ़ हो जाते हैं।

प्राणिक ऊर्जा का जागरण

प्राणायाम का एक मौलिक लाभ यह है कि व्यक्ति की प्राणिक ऊर्जा में वृद्धि होती है। अत: शरीर के अन्दर क्रियाशील विभिन्न प्रणालियों का शक्तिवर्द्धन होता है, जिसके फलस्वरूप समग्र स्वास्थ्य उत्तम हो जाता है। अभ्यास व्यक्ति को ऊर्जा के स्रोत के साथ जोड़ते हैं, ताकि उसकी शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जाएँ क्षीण नहीं हो पायें। इससे निरन्तर जागरूकता और तन्दुरुस्ती, गत्यात्मकता तथा स्फूर्ति आती है। प्राणायाम का उद्देश्य यह सीखना नहीं है कि श्वास कैसे लें या अच्छी तरह श्वास कैसे लें, बल्कि अपने अन्दर की अन्तर्ज्ञात शक्ति या प्राण को जगाना है।

प्राणायाम के द्वारा शक्ति संचरण या ऊर्जान्वित करने की प्रक्रिया को दूसरे परिप्रेक्ष्य में भी समझा जा सकता है। प्राणायाम शरीर में स्थिर-विद्युत उत्पन्न करता है, जो वातावरण से श्वास के साथ लिए गये धनात्मक आयनों को पुन:आवेशित करता और उन्हें ऋणात्मक आयनों में परिवर्तित करता है। इसका प्रभाव वर्षा और तूफ़ान से भरे बादलों की गड़गड़ाहट से उत्पन्न होने वाले प्रभाव के समान होता है। गर्मी और उमस से भरे मौसम में आलस्य का अनुभव होता है, लेकिन वर्षा के साथ हवा ताज़ी और स्वच्छ हो जाती है तथा उसके बाद स्फूर्ति का अनुभव होता है। वर्षा और बिजली-तूफ़ान वातावरण के धनात्मक आयनों को आवेशित कर देते हैं और उन्हें ऋणात्मक आयनों में परिवर्तित

कर देते हैं। इसी प्रकार प्राणायाम शरीर में अत्यन्त अल्प मात्रा में स्थिर-विद्युत उत्पन्न करता है और तब बढ़ी हुई ऊर्जा के साथ स्फूर्ति का अनुभव होता है।

शारीरिक लाभ

जब ऋषियों ने प्राणायाम विज्ञान का आविष्कार किया, तब उनके मन में योग चिकित्सा का विचार नहीं आया था, हालाँकि अभ्यासों के असंख्य शारीरिक लाभ हैं। प्राणायाम का चिकित्सात्मक पक्ष संयोगवश उत्पन्न हुआ उपोत्पादन है। प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य मानव चेतना के उच्च केन्द्रों को जाग्रत करने के लिए प्राणिक तथा मानसिक शक्तियों की पारस्परिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं को संतुलित करना है। फिर भी साधक को शारीरिक स्तर पर अनेक लाभों का अनुभव होगा। इन प्रभावों का वैज्ञानिक प्रलेखन किया गया है, और यह पाया गया है कि प्राणायाम शरीर के लगभग सभी अंगों और प्रणालियों को प्रभावित करता है, जिनका उल्लेख नीचे किया गया है।

श्वसन तंत्र – प्राणायाम गहरे, त्वरित या धीमे श्वसन की प्रक्रिया के माध्यम से श्वसन तंत्र और फेफड़ों की मांसपेशियों को व्यायाम कराता है। वक्ष पूरी तरह हल्का हो जाता है और फेफड़े पूरी तरह फैल जाते हैं। यह श्वसन पेशियों की शक्ति को बढ़ाता है और फेफड़ों को अधिक लचीला बना देता है, फलत: श्वसन प्रक्रिया अधिक स्वस्थ हो जाती है।

प्राणायाम के क्रम में अधिक मात्रा में ऑक्सीजन अवशोषित नहीं होती है। वास्तव में प्राणायाम के एक चक्र के दौरान ऑक्सीजन की अवशोषित मात्रा सामान्य श्वसन में अवशोषित मात्रा से कम होती है। एक औसत व्यक्ति सामान्य श्वसन के एक मिनट में वायु का 7,000 घन सेंटीमीटर अन्दर लेता है; जबकि प्राणायाम के दौरान वह एक मिनट में लगभग 3,700 घन सेंटीमीटर वायु को श्वास में लेता है। चूँकि प्राणायाम में कम वायु अन्दर ली जाती है, इसलिए ऑक्सीजन का अवशोषण भी कम मात्रा में ही होता है। यद्यपि अभ्यासों के क्रम में ऑक्सीजन को रक्त प्रवाह में विलीन होने का और श्वसन तंत्र को श्वास एवं रक्त से अपशिष्ट पदार्थ को बाहर निकालने का अधिक समय मिलता है। प्राणायाम के अभ्यास के द्वारा श्वसन अंगों और पेशियों को दिया जाने वाला प्रशिक्षण उन्हें सारे दिन दक्षतापूर्वक कार्य करने के लिए तैयार करता है। अधिक कार्यकुशल श्वसन उपकरण के साथ पूरे दिन में सामान्य स्थिति से अधिक ऑक्सीजन की मात्रा का अवशोषण होता है।

पाचन एवं उत्सर्जन संस्थान – पाचन, अवशोषण एवं उत्सर्जन अंगों को भी समान लाभ मिलते हैं। प्राणायाम के माध्यम से आमाशय, अग्न्याशय, यकृत, आँतों और वृक्कों का व्यायाम हो जाता है और मध्यपट तथा उदरीय पेशियों के द्वारा इनकी मालिश हो जाती है। सामान्य श्वसन में भी ऐसा होता है, लेकिन प्राणायाम के दौरान पेशियों की गति और इनके परिणामस्वरूप होने वाली मालिश कई गुना अधिक होती है। सभी सम्बद्ध पेशियों और तंत्रिकाओं को शक्ति प्राप्त होती है और वे अधिक स्वस्थ हो जाती हैं। कब्ज दूर होती है और सभी अंग बेहतर ढंग से कार्य करने लगते हैं। बेहतर ढंग से क्रियाशील पाचन और उत्सर्जन संस्थानों में अवशोषण अधिक सफलता से होने लगता है, जिससे रक्त पोषक तत्त्वों के द्वारा संवर्धित होता है।

हृदय तंत्र – सन् 1968 में भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय ने बिहार योग विद्यालय से हृदय रोगों एवं योग पर शोध करने को कहा। ऐन्जाइना, मायोकार्डियल इन्फेक्शन और अन्य हृदय रोगों से पीड़ित लगभग एक हजार रोगियों को योग एवं प्राणायाम के अभ्यासों का निर्देश दिया गया। अध्ययन की अवधि के अन्त में पाया गया कि प्राणायाम से प्रत्येक रोगी को लाभ हुआ था, लेकिन ऐन्जाइना और इस्कीमिया से पीड़ित रोगियों को विशेष लाभ हुआ। अन्य अनेक शोध अध्ययनों ने यह प्रमाणित किया है कि प्राणायाम हृदय के लिए अत्यधिक लाभदायक है। हृदय तंत्र पर दैनिक जीवन में पड़ने वाले दबाव को ये अभ्यास कम कर देते हैं। धीमी, गहरी और लम्बी श्वासों के साथ श्वसन करने से हृदय को विश्राम मिलता है। हृदय के अनेक रोगों को प्राणायाम के द्वारा संभाला जा सकता है।

विशेष रूप से नाड़ीशोधन प्राणायाम से सम्पूर्ण हृदय तंत्र का व्यायाम होता है। इस अभ्यास में 1:2 के अनुपात में किये गये पूरक और रेचक का सीधा सम्बन्ध हृदय के प्रकुंचक और प्रसारक आवर्तन से होता है। जब हृदय क्षतिग्रस्त हो जाता है तब प्रकुंचक और प्रसारक आवर्तन का अनुपात 2:1, 3:1 या 5:1 भी हो जाता है; यद्यपि नाड़ीशोधन के नियमित अभ्यास से सही आवर्तन को पुन: प्राप्त किया जा सकता है। नब्ज़ के द्वारा यह देखा जा सकता है कि हृदय-गति श्वास के साथ बढ़ती और प्रश्वास के साथ घट जाती है। 1:2 के अनुपात में श्वसन करने पर मस्तिष्क तथा शरीर के ऊतकों में ऑक्सीजन की आपूर्ति कम हुए बिना हृदय की पेशियाँ शिथिल हो जाती हैं। हालाँकि प्रश्वास की लम्बाई को अधिक बढ़ाने पर शिथिलीकरण का प्रभाव समाप्त हो

जाता है। उदाहरण के लिए, यदि 1:4 के अनुपात में श्वसन किया जाये तो रक्त में ऑक्सीजन की घटी हुई आपूर्ति के प्रतिक्रियास्वरूप मस्तिष्क हृदय की गति को तेज कर देता है।

प्राणायाम के अभ्यासों के दौरान हृदय की पेशियों की मालिश हो जाती है, जिससे रक्त संचार बेहतर हो जाता है। भस्त्रिका एवं कपालभाति के फलस्वरूप होने वाला कम्पन सम्पूर्ण परिसंचरण तन्त्र के अन्तर्गत शिराओं, धमनियों तथा केशिकाओं तक को प्रभावित कर देता है, जिससे वे अधिक कुशलतापूर्वक कार्य करने लगती हैं। प्राणायाम हृदय की कार्यविधि को समुचित प्रशिक्षण देता है और आध्यात्मिक साधक के लिए इसका अभिप्राय भिन्न होता है। जब साधक प्राणायाम के अभ्यास के उपरान्त ध्यान की अवस्था में प्रवेश करता है, तब हृदय पर कोई दबाव नहीं पड़ता और शरीर बिना किसी प्रतिकूल प्रभाव के चेतना की उच्च अवस्थाओं का सामना करने में सक्षम होता है।

अन्तःस्त्रावी संस्थान – अन्त:स्त्रावी ग्रंथियाँ व्यवहार, प्रतिक्रियाओं, व्याख्याओं और यहाँ तक कि स्वाभाविक अनुक्रियाओं को भी प्रभावित करती हैं। प्राणायाम इन ग्रंथियों से होने वाले स्त्रावों को व्यवस्थित, शुद्ध तथा प्रतिसंतुलित करता है, और तदनुसार विचार एवं आचरण को प्रभावित करता है। अन्त:स्त्रावी संस्थान का पूरा स्वास्थ्य मुख्यत: रक्त की श्रेणी और ग्रंथियों में उसके वितरण पर निर्भर रहता है। प्राणायाम के दौरान, विशेषकर ऊर्जान्वित करने वाले अभ्यासों के दौरान रक्त-संचार अत्यन्त तीव्र हो जाता है और रक्त उत्तम कोटि का हो जाता है। अन्त:स्त्रावी ग्रंथियों में रक्त की बेहतर और प्रचुर आपूर्ति इनकी क्रियाशीलता में वृद्धि करती है, और नियन्त्रित श्वसन अन्त:स्त्रावी संस्थान को संतुलित रखने में मदद करता है।

पीनियल ग्रंथि के संदर्भ में अन्त:स्त्रावी संस्थान पर प्राणायाम के अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ते हैं। यह रहस्यमय ग्रंथि, मस्तिष्क के तीसरे निलय (वेन्ट्रिक्ल) के पीछे आज्ञा चक्र के क्षेत्र में स्थित है। सामान्यत: यौवनारम्भ के साथ इसका क्षय होने लगता है। पीनियल ग्रंथि पीयूष (पिट्युटरी) ग्रंथि के लिए नियन्त्रक का कार्य करती है, जिसका सम्बन्ध अन्य अन्त:स्त्रावी ग्रंथियों की वृद्धि और क्रियाओं को नियन्त्रित करने से होता है। यदि पीयूष ग्रंथि को अल्पावस्था में ही नियंत्रित नहीं किया गया, तो शारीरिक तथा मानसिक विकास के बीच असंतुलन उत्पन्न हो जाता है और इसके पहले कि भावनाओं को संभालना आये, वे परिपक्व हो जाती हैं। इसलिए पीयूष ग्रंथि की क्रिया

को लम्बे समय तक कायम रखने के लिए भारत में बच्चों को सात-आठ वर्ष की अवस्था से ही प्राणायाम का अभ्यास आरम्भ करा दिया जाता है ताकि वे बाल्यावस्था से युवावस्था में सहज रूप से प्रवेश कर सके।

तंत्रिका तंत्र – मस्तिष्क, मेरुदण्ड, कपालीय एवं मेरुदण्डीय तंत्रिकाओं को प्राणायाम के द्वारा बेहतर और प्रचुर मात्रा में रक्त प्रवाह से बहुत लाभ होता है। इसके अतिरिक्त दीर्घ पूरक के दौरान मध्यपट तथा उदरीय पेशियों की क्रियायें मेरुदण्ड के निचले भाग को ऊपर की ओर खींचती हैं। यदि प्राणायाम के अभ्यास के साथ जालन्धर बन्ध भी जोड़ दिया जाये तो मेरुदण्ड का ऊपरी भाग भी ऊपर की ओर खिंच जाता है। सम्पूर्ण मेरुदण्ड के ऊपर खींचे जाने से मेरुदण्डीय तंत्रिकाओं की जड़ों की मालिश हो जाती है और पूरे तंत्रिका तंत्र को प्रबल परिधीय उद्दीपन प्राप्त होता है। यदि प्राणायाम को तीनों बन्धों के साथ संयुक्त कर दिया जाये, तो उच्च आन्तर्वक्षीय (इन्ट्राथोरैसिक), आन्तर्फुप्फुसीय (इन्ट्रापल्मोनरी) और आन्तर्उदरीय (इन्ट्राऐबडॉमिनल) दबाव उदर एवं वक्ष में स्थित विभिन्न स्नायु जालिकाओं को परिधीय उद्दीपन देता है।

श्वसन मनोदशाओं के उतार-चढ़ाव को भी, जोकि मन के सूक्ष्म आचरण हैं, नियन्त्रित करता है। मस्तिष्क की तंत्रिका-कोशिकीय स्मृति मनोदशाओं की अभिव्यक्ति पर असर डालती है। जब व्यक्ति व्यवस्थित तथा समन्वित ढंग से धीमा और गहरा श्वसन करता है, तब तंत्रिका-कोशिकाओं की क्रिया अधिक लयात्मक होती है और मस्तिष्क के विभिन्न केन्द्रों के बीच की विद्युतीय अन्योन्यक्रिया अधिक नियमित हो जाती है। मस्तिष्क तरंगों का अनियन्त्रित उतार-चढ़ाव सुव्यवस्थित हो जाता है तथा मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों के बीच संतुलन स्थापित हो जाता है। इसे ई.ई.जी. पर लम्बी अल्फ़ा तरंगों और क्षीण हुई बीटा तरंगों के निस्सरण के रूप में देखा जा सकता है। अल्फ़ा तरंगें मस्तिष्क के साथ ही हृदय, श्वसन एवं परिसंचरण तंत्रों में सामंजस्य लाती हैं। उच्च रक्तचाप से पीड़ित लोग मस्तिष्क की अल्फ़ा तरंगों के व्यवहार को प्रभावित कर लाभान्वित हो सकते हैं।

मन को नियन्त्रित करने के लिए भी प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है और इस उद्देश्य के लिए चक्र को प्राय: बायीं नासिका से आरम्भ किया जाता है, जो इड़ा नाड़ी या मानसिक ऊर्जा का प्रतीक है। इसके विपरीत योगनिद्रा में सजगता के परिभ्रमण को पहले दायीं ओर से आरम्भ किया जाता है ताकि पिंगला, प्राणिक ऊर्जा और शरीर के ताप को शान्त किया जा सके। कुछ वर्षों

तक प्राणायाम का विधिवत् अभ्यास करने से स्नायु तंत्र की संरचना में क्रमशः परिवर्तन आ जाता है। अन्ततः एक ऐसा समय आता है जब साधक आँखें बन्द करता है, अन्तर्मुखी होता है और ध्यान की अवस्था में प्रवेश कर जाता है।

गहन एकाग्रता

योग सूत्र (2:53) में महर्षि पतंजलि ने कहा है –

धारणासु च योग्यता मनसः ॥

(प्राणायाम के अभ्यास के द्वारा) मन ध्यान के लिए तैयार हो जाता है।

प्राणायाम का संचित प्रभाव यह होता है कि मन एक शान्त कमरे में जलती हुई मोमबत्ती के समान स्थिर हो जाता है। बाधक ऊर्जाएँ समाप्त हो जाती हैं और प्राण आकाश तत्त्व में विचरण करता है। मन की गति धीमी हो जाती है, लेकिन इसकी शक्ति बढ़ जाती है। रजस और तमस वश में हो जाते हैं तथा मन के विक्षेप समाप्त हो जाते हैं। मन केन्द्रित हो जाता है और धारणा तथा ध्यान की अवस्था को प्राप्त करता है।

प्राणायाम के माध्यम से ध्यान में प्रवेश करने का लाभ यह होता है कि मन गत्यात्मक बना रहता है और निद्राजनक स्थिति में नहीं जाता है। कुछ प्रकार के ध्यानयोग को यदि अधिक देर तक किया जाता है तो नींद आने लगती है। प्राणायाम इसे रोकता है और मन को ध्यान की अवधि में विचलित होने से बचाता है। प्रायः ध्यान के दौरान मन भटकने लगता है और दिनभर की पारस्परिक प्रतिक्रियाओं तथा मनोभावों का विवेचन करने लगता है। इसे पुनः ध्यान में लगाया जा सकता है, लेकिन यह बार-बार विचलित होता रहता है। जब प्राणायाम के साथ ध्यान का अभ्यास किया जाता है, तब मन की भटकने की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है, क्योंकि प्राणायाम की प्रक्रिया मन को शान्त करती है और इसे केन्द्रित कर देती है।

उच्च चेतना की अनुभूति

प्राणायाम के अभ्यास मानवीय चेतना के गुणों का विकास करते हैं और इसी दृष्टिकोण से इन्हें अपनाया जाना चाहिए। नियमित और विधिवत् अभ्यास से मन पर नियन्त्रण प्राप्त किया जाता है, ताकि साधक शरीर, मस्तिष्क और मन

की अनैच्छिक प्रक्रियाओं को संचालित करने में सक्षम हो। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य अब स्वयं अपना तथा अपनी नियति का स्वामी बन जाता है। शारीरिक स्तर पर प्राणायाम के अभ्यासों के दौरान स्नायु तंत्र पर डाला गया उच्च दबाव और उसका उद्दीपन चेतना को अन्तर्मुख होने के लिए प्रेरित करता है, ताकि परा-सम्वेदी बोध सम्भव हो सके। जब शारीरिक संरचना में एक बार परिवर्तन आ जाता है, तब मानसिक तत्त्व स्वत: परिवर्तित हो जाते हैं।

योग की स्थूल से सूक्ष्म अनुभूतियों की ओर जाने के लिए प्राणिक स्तर पर प्राण शक्ति का जागरण एक सेतु का काम करता है। चेतना के जो स्तर पहले अन्धकारमय थे, उनमें प्राण का प्रवाह होने के कारण वे प्रदीप्त हो उठते हैं। साधक अस्तित्व के इन उच्च आयामों में अनुभव के साथ प्रवेश करने में सक्षम हो जाता है। अनहद नाद स्पष्ट रूप से सुनाई देता है और उस क्षण मन का विलोप हो जाता है। प्राणायाम के अभ्यासी को उच्छृंखल और अनियन्त्रित मन के साथ संघर्ष नहीं करना पड़ता है; यह स्वयं ही शान्त और नियन्त्रित हो जाता है।

जब प्राण मस्तिष्क तथा मन के अन्धकारपूर्ण क्षेत्रों में संचरण करता है, तब व्यक्ति के विकास की प्रक्रिया उत्प्रेरित होती है और उच्च बुद्धि प्रकट होती है। कुण्डलिनी जाग उठती है और साधक को ध्यान करने की आवश्यकता नहीं होती है। ध्यान की अवस्था स्वयं उत्पन्न हो जाती है, और साधक चेतना के नये क्षेत्र में प्रवेश करता है। उसे प्रकाश से परिपूर्ण क्षेत्र की अनुभूति होती है; इतना महान् है प्राणायाम का विज्ञान।

गुरुत्व के साथ सम्बन्ध में परिवर्तन

योग के शास्त्रीय ग्रन्थों में कहा गया है कि कुम्भक करते समय नासिकाग्र पर ध्यान करने से प्राण को नियन्त्रित किया जा सकता है। कुम्भक के दौरान नाभि पर ध्यान करने पर सभी रोग दूर हो जाते हैं। यदि पैर के अँगूठे पर ध्यान किया जाये, तो शरीर में हल्कापन आ जाता है। जब योगी तीन घंटे तक कुम्भक करता है, तब वह स्वयं को अपने अँगूठे पर संतुलित रख सकता है। यह अंतिम कथन इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि प्राणायाम के अभ्यास से गुरुत्व के साथ सम्बन्ध में परिवर्तन आ जाता है। सम्भव है इसका अनुभव नहीं किया जा सके, लेकिन इसे वैज्ञानिक उपकरणों से मापा जा सकता है।

गुरुत्व के साथ आकर्षण का सम्बन्ध होता है। प्राणायाम के अभ्यास के द्वारा इस आकर्षण की तीव्रता कम होती जाती है और गुरुत्व का नियम पूरी

तरह कार्यान्वित नहीं हो पाता है। इससे भारहीनता का अनुभव होता है, जो धीरे-धीरे आकाशगमन में परिवर्तित हो जाता है। प्राणायाम के दौरान या उसके बाद हल्केपन का अनुभव होना असामान्य नहीं है। कभी-कभी ऊपर उठने या झूलने का अनुभव भी हो सकता है। सामान्यत: यह केवल एक अनुभूति होती है; शरीर भूमि पर ही रहता है। हालाँकि यदि शरीर सचमुच पृथ्वी से ऊपर उठता तो स्नायु तंत्र पर इसका महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता। नींद, स्वप्न और विचार का स्वरूप गुरुत्व के साथ उनके विशेष सम्बन्ध पर आधारित होता है। यदि वह सिद्धान्त बदल जाये, तो विचार एवं भाव के स्वरूप में भी परिवर्तन आ जायेगा।

गुरुत्व का सम्बन्ध आसक्ति एवं बद्धमूलता जैसी स्वाभाविक प्रवृत्तियों से भी होता है, जो मृत्यु का भय और जिजीविषा उत्पन्न करती हैं। इसलिए जब गुरुत्व के साथ समीकरण बदलता है, तब स्वाभाविक रूप से अनासक्ति उत्पन्न हो जाती है और मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है। आध्यात्मिक साधक के लिए मृत्यु के भय पर विजय प्राप्त कर लेना एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। महर्षि पतंजलि के योग सूत्र में मृत्यु के भय या अभिनिवेश को पाँच मूल क्लेशों की सूची में रखा गया है। आत्मज्ञान प्राप्त होने के पूर्व इन क्लेशों को दूर कर लेना होता है। हठयोग प्रदीपिका (2:39) में भी कहा गया है –

ब्रह्मादयोऽपि त्रिदशा: पवनाभ्यासतत्परा: ।
अभूवन्नंतकभयात्तस्मात्पवनमभ्यसेत् ॥

यहाँ तक कि ब्रह्मा तथा अन्य देवता भी स्वर्ग में अपना कुछ समय प्राणायाम के अभ्यास में व्यतीत करते हैं, क्योंकि यह मृत्यु के भय का नाश करता है। अत: इसका (प्राणायाम का) अभ्यास करना चाहिए।

आज बहुत कम ऐसे साधक हैं, जो योग शास्त्रों में वर्णित प्राणायाम की प्रवीणता से प्राप्त होने वाली सिद्धियों का, जैसे कि एक अणु के समान सूक्ष्मता या एक पर्वत के समान विशालता का अनुभव कर पाते हैं। फिर भी जो निपुण हो गया है, उसे कुछ-न-कुछ विशेषताएँ प्राप्त हो ही जाती हैं। उसका मुखमण्डल ऐसा प्रभावशाली हो जाता है कि वह भीड़ के बीच भी सबसे अलग दिखता है। शरीर पतला, तन्दुरुस्त और स्वस्थ हो जाता है, तथा चर्बी घट जाती है। उसकी आवाज़ मधुर और सुरीली हो जाती है। उसके चेहरे पर कान्ति होती

है और आँखें चमकने लगती हैं। क्षुधा तीव्र हो जाती है; मलोत्सर्जन और मूत्र में कमी आ जाती है। स्वयं को तरोताज़ा करने के लिए कुछ घंटों की नींद की आवश्यकता होती है। तदनुसार शिव संहिता (3:44) में कहा गया है –

अरोगित्वमदीनत्वं योगिनस्तत्त्वदर्शिन: ॥

योगी (जिसने कुम्भक में सफलता प्राप्त कर ली है) रोगमुक्त तथा विषादमुक्त अवस्था को प्राप्त करता है।

कर्मों का शुद्धिकरण

प्राणायाम शुद्धता देता है, और ज्ञान का प्रकाश चमकने लगता है। प्राणायाम से अधिक प्रबल शुद्धिकरण की कोई क्रिया नहीं है। कर्म, जो ज्ञान के प्रकाश को आच्छादित कर देता है और पुनर्जन्मों के बन्धन में बाँध देता है, प्राणायाम में प्रवीण होने पर प्रभावहीन हो जाता है और अन्ततः समाप्त हो जाता है। शिव संहिता (3:49) में कहा गया है –

पूर्वार्जितानि कर्माणि प्राणायामेन निश्चितम ।
नाशयेत्साधको धीमानिहलोकोद्भवानि च ॥

बुद्धिमान् साधक निश्चित रूप से अपने सभी कर्मों का, भले ही वे इस जन्म में या पूर्व जन्म में अर्जित किये गये हों, श्वास के नियमन द्वारा नाश कर देते हैं।

तत्पश्चात् यह आगे कहता है (3:51) –

पापतूलचयानाहोप्रदहेत्प्रलयाग्निना ।
ततः पापविनिर्मुक्तः पश्चात्पुण्यानि नाशयेत् ॥

जिस प्रकार विध्वंस की अग्नि सब कुछ जला डालती है, उसी प्रकार प्राणायाम पापों के ढेर को विनष्ट कर देता है। योगी को उसके पापों से मुक्त करने के बाद यह उसके पुण्यों का भी नाश कर देता है।

यह उस अवस्था का वर्णन है जहाँ योगी द्वन्द्व के खेल से ऊपर उठ चुका होता है और अपनी आत्मा में, पूर्ण संतोष में स्थित हो जाता है।

श्वास एवं प्राणायाम पर अनुसन्धान

चिकित्सा विज्ञान ने पिछले कई दशकों में प्राणायाम के प्रभावों पर अनेक अनुसन्धान किये हैं। लेकिन जब प्राणायाम का अनुवाद 'श्वसन व्यायाम' के रूप में हो गया, तब समस्त विश्व के वैज्ञानिकों ने इसे शरीर में नयी जान डालने वाली प्रक्रिया को अनुप्राणित, अभिवर्धित एवं त्वरित करने वाले साधन के रूप में पहचाना। ऑस्ट्रेलिया, रूस, तुर्की, जर्मनी, संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत तथा अन्य देशों में प्राणायाम पर किये गये शोध-अध्ययनों को प्रकाशित किया गया है। अन्तर्बोध एवं अनुभवों की गहराई से प्रकट हुए प्राचीन विज्ञान को आधुनिक विज्ञान ने जिस रूप में समझा है, उसे कुछ अध्ययनों के सार के रूप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्वसन

विश्वव्यापी सर्वेक्षणों ने यह पाया है कि अधिकतर लोग सही ढंग से श्वास नहीं लेते हैं। जनसंख्या का अधिकांश भाग शरीर तथा मस्तिष्क की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त श्वसन नहीं करता है। श्वसन हृदय के साथ-साथ शरीर की सभी क्रियाओं को प्रभावित करता है। उन योगियों पर अनुसन्धान किये गये हैं जो अपनी इच्छा से हृदय की गति को रोक सकते हैं। यह पाया गया कि जब हृदय रुक गया, तब श्वास भी बन्द हो गयी, लेकिन योगी जीवित रहा।

सन् 1977 में ऐसा ही प्रयोग 102 वर्ष के एक योगी पर किया गया। उन्हें नौ दिनों के लिए पृथ्वी के अन्दर गाड़ दिया गया और छः दिनों के बाद उन्हें चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से मृत घोषित कर दिया गया। उनकी नब्ज़ की दर को मापने वाले इलेक्ट्रोड ने संकेत दिया कि हृदय रुक गया है, जिसका अर्थ यह हुआ कि उनके मस्तिष्क को ऑक्सीजन प्राप्त नहीं हो रही है। नौवें

दिन वे अपनी 'क़ब्र' से पूरी तरह स्वस्थ अवस्था में बाहर निकले, जिसे चिकित्सकों तथा वहाँ उपस्थित वैज्ञानिकों ने प्रमाणित किया।

यह कोई महान् आध्यात्मिक उपलब्धि नहीं थी, लेकिन विज्ञान की दृष्टि से यह अवश्य ही एक चमत्कारिक एवं प्रेरक घटना थी। श्वास के द्वारा शरीर, मस्तिष्क एवं मन की अनैच्छिक प्रक्रियाओं पर नियन्त्रण पाया जा सकता है। इन प्रक्रियाओं को नियन्त्रित कर लेने पर अपने जीवन की मुख्य धारा एवं जीवन-मृत्यु से जुड़ी अपनी नियति की दिशा को निर्देशित किया जा सकता है। अब यह भी सिद्ध हो चुका है कि चेतन श्वसन अग्र मस्तिष्क में अंकित होता है (जिसका सम्बन्ध विकासक्रम और उच्च सजगता से होता है), जबकि सहज श्वसन आद्य मस्तिष्क में होता है; यह पुनः यौगिक आविष्कार की यथार्थता को प्रमाणित करता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के टेक्सास में स्टीफ़ेन इलियट ने जो शोध किया, उसमें पाया गया कि श्वास की गति का हृदय गति से सीधा सम्बन्ध होता है। श्वसन के सामान्य स्वरूप का हृदय की सामान्य दशा पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यह उच्च रक्तचाप या विश्रान्ति का कारण बन सकता है, और व्यक्ति के सर्वांगीण स्वास्थ्य तथा उसकी दीर्घायु को प्रभावित करता है। वे इस बात से सहमत थे कि जिन्हें धीमे, गहरे उदर श्वसन (प्राणायाम जैसे अभ्यासों के द्वारा) की आदत है, वे अधिक स्वस्थ हैं। वर्षों तक व्यक्तिगत स्तर पर किये गये योगाभ्यास के उपरान्त इलियट अपने निष्कर्ष पर पहुँचे और उन्होंने श्वास तथा मनोदशा के बीच अन्योन्य सम्बन्ध स्थापित किया। अपेक्षाकृत धीमे, गहरे और समकालिक श्वसन से स्वैच्छिक संतुलन की प्राप्ति को इलेक्ट्रोमायोग्राफ़ी की सहायता से प्रमाणित किया गया।

पूरे विश्व में खेल-कूद की संस्थाएँ भी प्रदर्शन पर श्वसन के प्रभाव पर शोध कर रही हैं। प्रारम्भिक शोधकर्ताओं में बोवरमैन और ब्राउन (1971) ने यह सुझाव दिया कि गति पर नियन्त्रण पाने के लिए खिलाड़ियों को नियमित तथा लयबद्ध श्वसन करना चाहिए। उन लोगों ने यह सीखने की सलाह दी कि पृथ्वी पर पैर का पड़ना और रेचक एक साथ हो, और फेफड़ों में कार्बन-डाइऑक्साइड/ऑक्सीजन के बेहतर आदान-प्रदान के लिए रेचक के पूर्व गालों को फुलाने (दूसरे शब्दों में, कुम्भक) का भी सुझाव दिया। ब्रैम्ब्ल और कैरियर (1983) ने भी यह पाया कि जिन धावकों के प्रदर्शन का स्तर बेहतर था, उनमें पैरों के साथ समन्वित लयबद्ध रेचक की प्रवृत्ति थी।

एक व्यायाम प्रशिक्षक थॉमस मिलर ने एक अनुसन्धान किया, जिसमें उन्होंने अनुभवी धावकों के दो समूह बनाये और उन पर कुछ प्रयोग किये। उन्होंने अपनी पुस्तक '*प्रोग्राम्ड टु रन*' में यह वर्णन किया है कि किस प्रकार एक समूह को श्वसन का प्रशिक्षण दिया गया, जबकि दूसरे समूह को केवल व्यायाम का प्रशिक्षण दिया गया। प्रशिक्षण के उपरान्त परिणामों से यह परिलक्षित हुआ कि यद्यपि दोनों समूहों में समान शारीरिक लक्षण थे, फिर भी श्वसन का प्रशिक्षण पाने वाला समूह दूसरे समूह की अपेक्षा ट्रेडमिल पर अधिक समय तक चलता रहा और 10 कि .मी. के समय-परीक्षण में उस समूह ने प्रगति की। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि श्वसन पर ध्यान देने से वे उनकी अपेक्षा अधिक कुशल हो गये, जिन्होंने केवल प्रयास किया। सही श्वसन का प्रशिक्षण प्राप्त धावकों में अपनी परिस्थितियों (जैसे, ट्रेडमिल की बढ़ी हुई गति) के प्रति अधिक सजगता देखी गयी कि और पाया गया कि वे गति को लम्बे समय तक कायम रखने के लिए श्वसन को अनुकूलित कर सकते हैं।

उपचार के रूप में प्राणायाम

जिन योगियों ने प्राणायाम के अभ्यासों को प्रतिपादित किया, वे जानते थे कि लम्बे समय तक विधिवत् किया गया अभ्यास साधक को विभिन्न रोगों से मुक्त करेगा। हठयोग प्रदीपिका (2:17) में कहा गया है – "प्राण वायु में अशान्ति के कारण हिचकी, दमा, खाँसी, सरदर्द, कान और आँखों की पीड़ा तथा ऐसी ही अनेक बीमारियाँ बिन बुलाये आ जाती हैं।" यह भी ज्ञात है कि हिमालय पर रहने वाले योगी थोड़े ही भोजन और पानी पर जीवित रहते हैं, तथा बिना किसी पारम्परिक रोधन-विधि के भी अत्यधिक शीत का सामना करते हैं।

पुराने सोवियत संघ में इस दृष्टिकोण से यौगिक अभ्यासों पर अनुसन्धान किये गये थे। वैज्ञानिकों ने न केवल बाह्य या आंतरिक तत्त्वों को लेकर प्रतिरोधशक्ति और प्रतिरक्षण पर प्राणायाम के प्रभाव पर शोध किया, बल्कि ग्रहों के प्रभावों को लेकर भी किया। अंतरिक्ष यात्रियों को प्राणायाम में प्रशिक्षित करके अंतरिक्ष में भेजा गया और पाया गया कि वे उन लोगों की अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह परिवर्तित बाह्य वातावरण को सहन कर पा रहे थे, जिन लोगों को कोई प्रशिक्षण नहीं दिया गया था। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्राणायाम का अभ्यास उन सारी प्रणालियों की प्रतिरक्षण शक्ति को बेहतर बनाता है, जिनकी आवश्यकता शरीर को बाहरी तत्त्वों से सुरक्षित रखने के लिए होती है।

प्राणायाम पर किये गये अनेक अध्ययनों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि इसके अभ्यास तनाव और उच्च रक्तचाप को कम करते हैं, रक्तचाप (उच्च और निम्न, दोनों) को सामान्य बनाते हैं, हृदय रोगों को कम कर देते हैं, फेफड़ों की शक्ति तथा क्षमता को बढ़ाते हैं, और मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों के बीच संतुलन स्थापित करते हैं। यह भी पाया गया है कि प्राणायाम के परिणामस्वरूप अल्फ़ा, डेल्टा और थीटा तरंगें समकालिक होकर प्रवाहित होती हैं, जिससे मस्तिष्क तथा हृदय की क्रियाएँ समस्वर हो जाती हैं।

चिरकालिक रोगों पर किये गये कुछ प्रयोगों में आसनों तथा/या शिथिलीकरण के अभ्यासों के साथ प्राणायाम के अभ्यासों से महत्त्वपूर्ण, और कुछ मामलों में तो अद्भुत् सुधार परिलक्षित हुए। हृदय रोग तथा उच्च रक्तचाप ने सबसे अधिक ध्यान आकृष्ट किया है। फेफड़ों के चिरकालिक रोगों के मामले में भी सार्थक परिणाम आये हैं।

धीमे, गहरे और मध्यपटीय श्वसन के तनाव दूर करने वाले लाभों से यह पता चलता है कि प्राणायाम के अभ्यास समग्र उपचार कार्यक्रम के बहुत उपयोगी और महत्त्वपूर्ण अंग हैं। *ए.एल.स्कॉप* के अध्ययन के द्वारा यह पाया गया कि यौगिक श्वसन एवं शारीरिक शिथिलीकरण की प्रक्रिया के संयुक्त प्रभाव से चिन्ता की स्थिति और उसके लक्षण में जो महत्त्वपूर्ण कमी आयी, वह दोनों के अलग-अलग प्रभाव की अपेक्षा अधिक कारगर थी।

नाड़ीशोधन पर अनुसन्धान

नाड़ीशोधन प्राणायाम योग के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अभ्यासों में से एक है। सन् 2002 में भारत में मुंगेर स्थित योग रिसर्च फ़ाउन्डेशन ने स्वस्थ व्यक्तियों पर नाड़ीशोधन के मौलिक मनोकायिक प्रभावों का अध्ययन करने के लिए एक शोध किया। छः महीने की अवधि में 19 से 62 वर्ष वय के बीच के बिहार योग विद्यालय के बाईस अंतेवासी विद्यार्थियों का अध्ययन किया गया। विद्यार्थियों ने प्रतिदिन 1:1 (10:10 की गिनती) के अनुपात के साथ और उसके बाद 1:2 (10:20 की गिनती) के अनुपात के साथ नाड़ीशोधन का दस चक्र अभ्यास किया। शोध का मानदण्ड इस प्रकार था – गणित के ढंग से आवृत्तिमूलक निष्पादन की गति, श्वास को रोकने की अवधि, रेचक के शीर्ष पर गति, प्रसारक एवं प्रकुंचक रक्त दबाव, नब्ज़ की दर, स्वर पर प्रभाव तथा प्राणिक अनुभव।

कुल मिलाकर यह पाया गया कि पूरे समूह में गणित के ढंग से आवृत्तिमूलक निष्पादन की गति में वृद्धि हुई और श्वास रोकने की अवधि तथा रेचक के शीर्ष पर गति में पूर्णतया सुधार आया। यह तथ्य रोचक है कि मध्यवर्ग के लोगों या युवाओं की तुलना में वृद्धों को श्वास रोकने की अवधि से अधिक लाभ मिला। चूँकि श्वास रोकने की अवधि हृदय और श्वसन तंत्रों के स्वास्थ्य की संकेतक है, इसलिए ऐसा हो सकता है कि वृद्धों के संवहन-तंत्र में अवरोध की जो सम्भावना रहती है, उस पर नाड़ीशोधन प्राणायाम का अधिक शोधक प्रभाव पड़ा हो। चूँकि प्रयोग में संलग्न व्यक्ति श्वसन के पूर्वनिश्चित स्वरूप को पाने का प्रयास कर रहे थे, इसलिए समग्र संवहनी प्रभाव ने आरम्भिक अवस्थाओं में उद्दीपन का संकेत दिया। उनके शरीर उस स्वरूप से अनुकूलित हो गये थे, इसलिए स्वैच्छिक स्नायु तंत्र में संतुलन सुस्पष्ट हो गया। स्वर की दृष्टि से दोनों नासिकाओं में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन के रूप में संतुलित प्रवाह अंकित किया गया। मूलाधार की अपेक्षा आज्ञाचक्र में प्राणिक अनुभूतियाँ अधिक स्पष्ट थीं।

सन् 2007 में योग रिसर्च फ़ाउन्डेशन ने राष्ट्रीय सामूहिक संस्था *भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड* के साथ मिल कर भोपाल में उच्चरक्तचाप से पीड़ित 30 वयस्कों पर एक अन्य अध्ययन किया। उसके परिणामस्वरूप पाया गया कि एक महीने तक नाड़ीशोधन प्राणायाम के अभ्यास (बिना कुम्भक के 1:1 के अनुपात में) ने प्रसारक एवं प्रकुंचक, दोनों रक्त दबावों को कम कर दिया। प्रसारक रक्तचाप दो मिनट के बाद औसतन 10 मि.मी.नीचे उतरा और अभ्यास के दौरान तथा उसके बाद भी (कुल 14.5 मि.मी.) नीचे उतरता गया। प्रकुंचक रक्तचाप ने भी कुल 4.2 मि.मी. का समानान्तर परिवर्तन प्रदर्शित किया। इससे यह संकेत मिला कि अभ्यास के द्वारा प्रयुक्त-व्यक्तियों की अनुकम्पी अधिकता में कमी आई।

उज्जायी पर अनुसन्धान

सन् 2006 में भी योग रिसर्च फ़ाउन्डेशन ने भोपाल में उज्जायी प्राणायाम के प्रभावों पर एक अध्ययन किया था। बाईस दमा के रोगियों, ग्यारह उच्च रक्तचाप के रोगियों तथा सात स्वस्थ व्यक्तियों ने एक महीने से अधिक समय तक प्रतिदिन पाँच मिनट उज्जायी प्राणायाम का अभ्यास किया। दमा के रोगियों को सबसे अधिक लाभ हुआ। ऑक्सीजन की संतृप्ति या रक्त में घुलने

वाली ऑक्सीजन की मात्रा 0.75% से बढ़कर 5% (अधिकतम) हो गयी, जबकि औसतन दो प्रतिशत चिकित्सीय दृष्टि से पर्याप्त प्रतिशत है।

उज्जायी प्राणायाम कंठ के आंशिक रूप से निरन्तर संकुचित रहने के कारण वायुमार्ग में धनात्मक दबाव उत्पन्न करता है और रेचक के अन्त में छोटी श्वास नलिकाओं को बन्द होने से रोकता है। यह दमा के रोगियों में ऑक्सीकरण में सुधार लाने के लिए और फेफड़ों को पूरी तरह से खाली कर देने में (वायु रुद्धता का न्यूनीकरण) विशेष रूप से सहायक होता है, जिससे अगला पूरक अधिक प्रभावकारी होता है। धीमे श्वसन से स्तरित या स्थिर प्रवाह उत्प्रेरित होता है, जो श्वास नलिकाओं में आयी जकड़न के दौरान अस्तव्यस्त प्रवाह के विपरीत होता है। इससे वायुप्रवाह के लिए वायुमार्ग में अवरोध कम हो जाता है, इसलिए श्वसन पेशियों को कम परिश्रम करना पड़ता है। दमा के रोगी को श्वास लेने में कम मेहनत करनी पड़ती है और दमा की तीव्रता के दौरान उसे कम थकावट का अनुभव होता है। इन कारणों से उज्जायी प्राणायाम दमा की आक्रामक स्थिति में बहुत लाभदायी होता है।

उच्चरक्तचाप के रोगियों में उज्जायी के अभ्यास के फलस्वरूप प्रसारक रक्तचाप में (20 मि.मी.) और प्रकुंचक रक्तचाप में (5 मि.मी.) महत्त्वपूर्ण गिरावट आयी, जो अभ्यास के उपरान्त भी दो मिनट तक कायम रही।

भ्रामरी पर अनुसन्धान

सन् 1993 में भारत के मुंगेर अस्पताल को बिहार योग विद्यालय के साथ मिलकर भ्रामरी पर एक चिकित्सीय शोध करने का आधार मिला। डॉ.विभा सिंह ने एक वर्ष में 448 गर्भवती स्त्रियों का परीक्षण किया। सबका एक समान उपचार किया गया (चिकित्सीय परीक्षण, आहार सम्बन्धी सुझाव, पूर्व प्रसव निर्देश इत्यादि)। लेकिन उनमें से 112 स्त्रियाँ सम्पूर्ण गर्भावस्था की अवधि में प्रतिदिन 1–2 बार 5–10 मिनट भ्रामरी का अभ्यास करती रहीं, जिसे उन लोगों ने प्रसव की प्रथम अवस्था तक जारी रखा। भ्रामरी करने वाले समूह से निम्नलिखित परिणाम प्राप्त हुए–

- नियन्त्रित समूह में उच्चरक्तचाप के साथ 25% की तुलना में सभी का सामान्य रक्तचाप (गर्भावस्था में उच्चरक्तचाप का होना सामान्य घटना है)
- कम गर्भपात की संख्या (8% की तुलना में 2%)
- कम कालपूर्व-प्रसूति (5% की तुलना में 2.6%)

- प्रसव-वेदना की अवधि 25% कम। सामान्यत: कम प्रसव-वेदना
- नियन्त्रित समूह के 4% की तुलना में केवल 1% के लिए शल्यक्रिया
- किसी नवजात शिशु को ऑक्सीजन की कमी नहीं थी (12% की तुलना में 0%)
- नवजात शिशुओं का अधिक वजन (2850 ग्राम की तुलना में 3325 ग्राम)

परिणामों से यह संकेत मिलता है कि गर्भावस्था में भ्रामरी का नियमित अभ्यास चिंता और तनाव को दूर करता है। स्त्री का हॉरमोन सन्तुलन अधिक नियन्त्रित रहता है, जिससे स्वस्थ बच्चों के जन्म की सम्भावना अधिक रहती है।

डॉ. सिंह द्वारा भ्रामरी पर किये गये एक अन्य अध्ययन से पता चला कि स्त्रियों पर की गयी शल्यक्रिया में घाव भरने में अपेक्षाकृत कम समय लगा, कम संक्रमण हुआ, कम निश्चेतक की आवश्यकता हुई और कुल मिलाकर शल्यक्रिया के उपरान्त होने वाली समस्याएँ भी कम थीं।

भ्रामरी तनाव दूर करता है, इसके अनेक प्रमाण हैं। ध्वनि के गुंजन का मस्तिष्क के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ता है, जो चिंता को दूर करता है और मन को शान्त करता है। भ्रामरी हाइपोथैलेमस, पीनियल और पिट्यूटरी ग्रन्थियों को भी उत्प्रेरित करता है।

भ्रामरी के उपशामक प्रभाव के कारण की ओर सन् 1959 में संयुक्त राज्य अमेरिका के *येल स्कूल ऑफ़ मेडिसिन* के त्वचा विशेषज्ञ ए.बी. लर्नर और उनके सहयोगियों ने संकेत किया था। वे त्वचा के कैंसर मिलेनोमा का कारण ढूँढ़ रहे थे, जो मिलेनिन की अधिकता से हो जाता है। उन्होंने पाया कि पीनियल ग्रन्थि से एक हॉरमोन का स्राव होता है, जिसे अब मिलेटानिन के नाम से जाना जाता है, वह मिलेनिन के निर्माण को रोकता है। हालाँकि उन्होंने यह पाया कि इस हॉरमोन की सूई देने पर प्रयोगशाला के जानवर सो जाते थे। दर्दनाशक ऐन्डॉर्फ़िन्स की तरह मिलेटोनिन एक प्राकृतिक उपशामक है जो शरीर द्वारा उत्पन्न किया जाता है। चूँकि भ्रामरी पीनियल ग्रन्थि को उद्दीप्त करता है, यह अपना विशेष प्रभाव उत्पन्न करने में सक्षम होता है।

कपालभाति तथा भस्त्रिका पर अनुसन्धान

सामान्यत: अतिसंवातन का शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिससे सिर में चक्कर आने और अन्य प्रकार के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। हालाँकि अध्ययनों से यह पाया गया है कि जब भस्त्रिका एवं कपालभाति जैसी त्वरित

यौगिक श्वसन विधियों का अभ्यास किया जाता है, तब प्रतिकूल लक्षण प्रकट नहीं होते हैं। एक शोध पत्र में वेंगर तथा बाग्ची ने बताया है कि कपालभाति करते समय हृदय गति, अँगुलियों का तापमान और नब्ज़ का आयतन सामान्य अतिसंवातन के प्रारूप से भिन्न थे। कुवलयानन्द तथा करमबेलक ने भी बताया कि कपालभाति के बाद ऐल्वियोलर वायु में कार्बन-डाइऑक्साइड की सान्द्रता का मध्यमान विश्राम की अवधि के समान ही था, अतिसंवातन के समय जो कमी आ जाती है, वैसा नहीं हुआ। सन् 2004 में योग रिसर्च फ़ाउन्डेशन द्वारा मुंगेर में किये गये एक अध्ययन में यह पाया गया कि जब 21 स्वस्थ वयस्कों ने भस्त्रिका का अभ्यास किया (पाँच सप्ताह तक क्रमिक ढंग से पाँच चक्र), तो अभ्यास के बाद नब्ज़ की दर और रक्तचाप के पठन में अधोगामी प्रवृत्ति का संकेत था। यह तब विशेष रूप से सही पाया गया जब भस्त्रिका का अभ्यास बहिर्कुम्भक तथा बन्धों के साथ किया गया था।

फ्रौस्टेल, पाण्डे तथा हेडेन्स्टीर्ना ने पाया कि मुख्य रूप से भस्त्रिका के वक्षीय रूपान्तर के दौरान औसत धमनीय कार्बन-डाइऑक्साइड का आंशिक दबाव सामान्य सीमा के अन्दर ही कुछ (14%) कम हो गया। सभी शोध इंगित करते हैं कि कपालभाति के दौरान का औसत ज्वार-आयतन विश्राम के दौरान के ज्वार-आयतन का लगभग 35 से 55% होता है। सभी इस तथ्य से सहमत थे कि रेचक में कार्बन-डाइऑक्साइड की सान्द्रता सामान्य श्वसन की अपेक्षा त्वरित यौगिक श्वसन के दौरान कम होती है, क्योंकि कार्बन-डाइऑक्साइड के उत्पादन की अपेक्षा संवातन अधिक होने लगता है।

यह भी पाया गया है कि यौगिक श्वसन के अभ्यास के आरम्भ के 20 से 40 सैकण्डों में हृदय गति में वृद्धि हो जाती है और उसके बाद शीघ्र ही वह सन्तुलित हो जाती है। हृदय गति में वृद्धि त्वरित श्वसन की तीव्रता एवं उसके प्रकार के आधार पर परिवर्तित होती है। कपालभाति तथा भस्त्रिका के द्वारा एक स्वस्थ वयस्क की श्वसन पेशियों का अच्छा व्यायाम हो जाता है, जिसमें शरीर को समग्रत: कम ही परिश्रम करना पड़ता है। कपालभाति करते समय ऑक्सीजन का उपभोग शान्ति से बैठने की अवस्था से 1.1 से 1.8 गुणा अधिक होता है। यह भी बताया गया है कि जब त्वरित श्वसन की अवधि एक मिनट से बढ़कर पाँच मिनट हो जाती है, तब ऑक्सीजन का औसतन उपभोग बढ़ जाता है। शोध के द्वारा पाया गया कि जब भस्त्रिका को 4 श्वास प्रति सैकण्ड की दर से 30 से 60 मिनट की अवधि तक जारी रखा गया, तब उस समय ऑक्सीजन

का उपभोग शान्ति से बैठे रहने की अवस्था की अपेक्षा तीन गुणा अधिक था, जो अधिकतम एयरॉबिक क्षमता का 23% था और श्वसन क्रिया में दो सौ गुणा वृद्धि हुई थी। उसी प्रकार भस्त्रिका के दौरान अवलोकन करने पर हृदय गति की उच्च दर को कम कठिन कार्य की अपेक्षा सामान्य कठिनाई वाले कार्य के सुसंगत पाया गया। योग रिसर्च फ़ाउन्डेशन (2004) के अध्ययन ने पाया कि जब भस्त्रिका के त्वरित श्वसन के बाद बहिर्कुम्भक का अभ्यास किया गया, तो ऑक्सीजन की संतृप्तता में कमी आ गयी। जब बहिर्कुम्भक को महाबन्ध के साथ संयुक्त कर दिया गया, तो उसका गहरा प्रभाव हुआ और ऑक्सीजन की संतृप्तता में 54% (अधिकतम) तक की कमी आ गयी।

ये अभ्यास फेफड़ों के चिरकालिक अवरोधी रोगों से पीड़ित व्यक्तियों के लिए तब लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं जब इन्हें कुशल निर्देशन में किया जाये, क्योंकि उनकी क्रियायें श्वसन पेशियों की सहनशक्ति के द्वारा सीमित हो सकती हैं। हालाँकि उन्हें सावधानी के साथ त्वरित श्वसन करना चाहिए, क्योंकि यह पाया गया है कि अनियन्त्रित अभ्यास स्थिति को बिगाड़ सकता है। जब योग रिसर्च फ़ाउन्डेशन के अध्ययन ने प्रयोग के चौथे सप्ताह में पल्स ऑक्सीमीटर का उपयोग किया तो पाया कि भस्त्रिका की विभिन्न अवस्थाओं (जिनमें बहिर्कुम्भक और महाबन्ध सम्मिलित थे) में नब्ज़ की दर और रक्त में ऑक्सीजन की संतृप्तता बहुत तेज थी। यह अभ्यास के लिए बारम्बार दी गयी चेतावनी की पुष्टि करता है, क्योंकि इस प्रकार का उतार-चढ़ाव दुर्बल हृदय पर भार बढ़ायेगा और हृदय, परिसंचरण, श्वसन और मस्तिष्क के रोगों से पीड़ित व्यक्ति उन्हें सहन नहीं कर सकेगा। उसी प्रकार जब कोई अंग क्षतिग्रस्त हो जाता है तब ऑक्सीजन की आपूर्ति में आने वाली कमी उसके कार्य को और अधिक बाधित कर देती है।

यह भी सूचित किया गया है कि कपालभाति, भस्त्रिका, सूर्यभेद और मूर्च्छा प्राणायामों के अभ्यास को करते समय केन्द्रीय स्वैच्छिक तंत्र में अतिरिक्त विद्युत आवेग उत्पन्न हो जाते हैं, जिनके फलस्वरूप मस्तिष्क में अतिरिक्त क्रियायें होने लगती हैं। उस विद्युत की शक्ति (वोल्टेज) सामान्य से कम-से-कम बीस गुणा अधिक होती है। यौगिक शब्दावली में यह सुषुम्ना के जागरण का संकेत है। इसे योग रिसर्च फ़ाउन्डेशन (2004) के अध्ययन ने प्रमाणित किया है, जिसमें यह प्रदर्शित हुआ कि अधिकतर मामलों में अभ्यास के बाद स्वर में परिवर्तन सुषुम्ना की ओर आया।

कुम्भक पर अनुसन्धान

कुम्भक प्रबल परानुकम्पी तथा अनुकम्पी प्रतिक्रियाओं को प्रेरित कर सकता है। कुम्भक के दौरान कुल मनोकायिक प्रभाव विभिन्न शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक मापदण्डों पर अत्यधिक निर्भर रहता है। यह पाया गया है कि कुम्भक के कारण रक्त में कार्बन-डाइऑक्साइड की सांद्रता बढ़ जाती है, जिससे नासिकाओं का वायुमार्ग खुल जाता है। यदि अधिकतम पूरक के बाद श्वास को रोका जाये, तो एक निष्क्रिय व्यक्ति में हृदय गति में सामान्यत: मोटे तौर पर 10% की कमी आती है। यदि स्वाभाविक रेचक के बाद कुम्भक किया जाये तो हृदय गति में थोड़ा परिवर्तन आता है, और यदि कुम्भक अधिकतम रेचक के बाद किया जाये तो इसमें वृद्धि होती है या थोड़ा ही परिवर्तन आता है। यह तथा अन्य अध्ययन प्रमाणित करते हैं कि रेचक की अपेक्षा पूरक के बाद लम्बे समय तक कुम्भक किया जा सकता है।

कुम्भक के दौरान बन्द वायुमार्ग में रेचक का दबाव अनुकम्पी क्रिया को प्रेरित करता है और हृदय गति में वृद्धि कर देता है; जबकि पूरक का दबाव परानुकम्पी क्रिया को प्रेरित करता है और हृदय गति को कम कर सकता है। प्रबल रेचक का दबाव हृदय गति को सामान्य से 30% अधिक बढ़ा देता है। फेफड़ों में दबाव का नियन्त्रण सावधानी से किया जाना चाहिए, क्योंकि यदि श्वसन पेशियाँ पूरक के बाद शिथिल हों तो श्वसन तंत्र का लचीलापन रेचक का दबाव उत्पन्न करता है। इस प्रकार कुम्भक के द्वारा धीमी होती हुई हृदय गति को तब समाप्त किया जा सकता है, जब तक कि श्वसन पेशियों में तनाव कायम रखा जाये।

कुम्भक के कारण वाहिकाएँ संकीर्ण हो जाती हैं और अंगों में रक्त का प्रवाह कम हो जाता है, लेकिन मस्तिष्क तथा हृदय में नियमित प्रवाह होता रहता है। परिधीय रक्त प्रवाह कुम्भक के दौरान रेचक के दबाव से प्रबल हो जाता है। मनोवैज्ञानिक कारक भी कुम्भक के प्रति होने वाली अनुक्रिया को प्रबल कर सकते हैं। कुम्भक के समय मानसिक विचलन या तल्लीनता हृदयसंवहन की प्रतिक्रिया को या तो क्षीण कर देती है या विलुप्त कर देती है।

शिमट ने पाया कि एक प्रयोज्य में, जिसे पाँच वर्षों से अधिक का अनुभव था, उन्नत प्राणायाम के अभ्यासों के दौरान हृदय गति और रक्तचाप में अत्यधिक लयात्मक परिवर्तन आये। नाड़ीशोधन (1:4:2 का अनुपात, एक श्वास प्रति मिनट की दर से) के दौरान हृदय गति में कुम्भक करते समय लगभग 120 स्पन्दन प्रति मिनट की वृद्धि हुई और धीमे रेचक से शीघ्रतापूर्वक

वह घटकर लगभग 60 स्पन्दन प्रति मिनट हो गयी। कुम्भक के समय बाहुक धमनी में रक्तचाप घटकर लगभग 55/30 पारे का मि.मी.(प्रसारक/प्रकुंचक) हो गया और धीमे रेचक के दौरान यह शीघ्रतापूर्वक बढ़कर लगभग 150/65 पारे का मि. मी. हो गया। विश्राम की सीमारेखा पर हृदय गति लगभग 70 स्पन्दन प्रति मिनट और रक्तचाप लगभग 105/50 पारे का मि.मी. हो गया।

यह भी देखा गया है कि प्राणायाम के अभ्यासों से ऊर्जा में वृद्धि का अनुभव, मानसिक तथा शारीरिक संतुलन, शान्ति और मानसिक स्पष्टता कई वर्षों के अभ्यास के बाद बहुत अधिक बढ़ जाती है। उन्हीं विधियों का अनुपालन करने पर भी नये अभ्यासियों को उतने प्रबल शारीरिक परिवर्तनों का अनुभव नहीं होता है।

शारीरिक या मानसिक असामान्यताओं वाले लोगों के स्वास्थ्य पर कुम्भक द्वारा होने वाले प्रतिकूल प्रभावों पर भी शोध किये गये हैं। यह पाया गया है कि श्वास रोकने पर हृदय के कई प्रकार के एरिद्मिया उत्पन्न हो सकते हैं, लेकिन इससे उन लोगों के स्वास्थ्य को ही खतरा हो सकता है, जिनके हृदय में पहले से ही कोई असामान्यता हो। इस प्रकार कुम्भक की विधियों को कुशल मार्गदर्शन में ही धीरे-धीरे अपनाया जाना चाहिए, यह यौगिक सावधानी तब और वैज्ञानिक रूप से प्रामाणिक प्रतीत होती है, जब हृदय के सम्पूर्ण परीक्षण का अभाव हो। जब इन्हें सामान्य स्वास्थ्य वाले व्यक्तियों के लिए सही ढंग से और धीरे-धीरे अपनाया जाता है, तब इन विधियों में कोई खतरा नहीं होता है।

बन्ध के साथ कुम्भक पर अनुसन्धान

जब अपेक्षाकृत अनुभवहीन प्रयोज्यों द्वारा बन्ध के साथ कुम्भक किया जाता है तब हृदय गति में या तो कोई परिवर्तन नहीं आता है या उसमें अल्प वृद्धि होती है। एक प्रयोग में यह पाया गया कि पूर्ण पूरक के बाद जालन्धर बन्ध के साथ कुम्भक लगाने से औसत हृदय गति औसत सीमारेखा दर की तुलना में लगभग 8% अधिक हो गयी। छः प्रयोज्यों को बन्ध के साथ कुम्भक का लगभग सात सप्ताहों का अनुभव था। एक अध्ययन में आठ महीनों से कम प्रशिक्षण प्राप्त 39 प्रयोज्यों में उड्डियान बन्ध के दौरान उनकी हृदय गति की औसत दर में सीमारेखा दर से कोई अन्तर दिखाई नहीं दिया।

एक दूसरे अध्ययन में, जिसमें मूलबन्ध सम्मिलित था, 28 प्रयोज्यों की हृदय गति की औसत दर में लगभग 10% की वृद्धि हुई। बिना किसी पूर्व

अनुभव के प्रयोज्यों तथा छः महीने का प्रशिक्षण प्राप्त किये हुए प्रयोज्यों की हृदय गति की समान अनुक्रिया हुई। हालाँकि कुछ प्रयोज्यों में कुम्भक के दौरान हृदय गति में स्पष्ट रूप से कमी आ सकती है। उड्डियान बन्ध के साथ कुम्भक का अभ्यास तीन सप्ताहों तक करने के बाद इक्कीस वर्षीय स्वस्थ युवक की हृदय गति 34 स्पन्दन प्रति मिनट परिलक्षित हुई। हृदय गति अभ्यास के पहले और बाद भी सामान्य थी।

विकिरण-चिकित्सा विज्ञान तथा प्रत्यक्ष अवलोकनों ने संकेत दिया है कि महाबन्ध (जालन्धर, उड्डियान और मूलबन्धों का मिश्रण) के अभ्यास के दौरान फैली हुई छाती का दबाव हृदय तथा रक्त वाहिनियों पर नहीं हुआ, और सिर की ओर जाने वाला और वापस आने वाला रक्त का प्रवाह कायम रहा। शोधकर्ताओं ने यह भी सूचित किया कि हृदय के आकार से शिराओं के द्वारा पर्याप्त रक्त की वापसी का पता चला। उदरीय पेशियों का संकुचन शिराओं के द्वारा रक्त की वापसी और हृदय की कार्यक्षमता में अत्यधिक वृद्धि कर देता है। वास्तव में वायुयान चालकों ने पहले ही यह खोज निकाला था कि उदरीय पेशियों को कस लेने और गहरा श्वसन करने पर गुरुत्वाकर्षण के अवांछित प्रभाव को आंशिक रूप से दूर करते हुए हृदय की ओर शिराओं में वापस आने वाले रक्त में वृद्धि की जा सकती है।

निष्कर्ष

प्राणायाम को वैज्ञानिक आधार पर प्रमाणित करने तथा स्वस्थ रहने के लिए उससे मिलने वाली मदद को समझने के लिए और अधिक अनुसन्धान किये जाने की आवश्यकता है। यहाँ उल्लिखित अध्ययनों में से कुछ प्रारम्भिक अवस्था में ही हैं। प्रायः धन के अभाव में तथा अभ्यासियों तक नहीं पहुँच पाने और उपकरणों की कमी के कारण शोध बाधित हो जाते हैं। प्रवर्तकों ने सूक्ष्म परिवर्तनों को मापने के लिए नयी विधियों एवं प्रक्रियाओं का विकास किया है, लेकिन यह भी आवश्यक है कि विभिन्न तत्त्वों को एक साथ मिलाया जाये। जब विज्ञान योगियों के हजारों वर्षों के अनुभवों का उपयोग करता है, तब वह साधनों के विशाल भंडार के द्वार को खटखटा रहा होता है, जहाँ जीवन में नयी अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो सकती है और यह भी पता चल सकता है कि वह किस प्रकार कार्य करती है।

प्राणायाम के अभ्यास

I : प्राणायाम के पूर्व-प्रशिक्षण

सजग श्वसन

योगी अपनी आयु को वर्षों की संख्या से नहीं, बल्कि श्वासों की संख्या से मापता है।

– स्वामी शिवानन्द

श्वसन एक सामान्य प्रक्रिया है तथा इसकी सामान्य दर 15 श्वास प्रति मिनट, 900 श्वास प्रति घंटे और 21,600 श्वास प्रति चौबीस घंटे है। जब श्वसन की दर बढ़ जाती है तब आयु क्षीण होती है। पन्द्रह श्वास प्रति मिनट की दर से व्यक्ति 75 से 80 वर्षों तक जीवित रह सकता है। दस श्वास प्रति मिनट होने पर जीवनावधि बढ़कर लगभग 100 वर्षों की हो सकती है। जब श्वसन की दर 15 श्वास प्रति मिनट से अधिक होती है तब जीवन की अवधि कम हो जाती है। जैसा कि एक कुत्ते के जीवन में होता है, उसकी आयु 10 से 15 वर्षों की होती है। त्वरित, उथला श्वसन वृद्धावस्था का लक्षण है, साथ-ही-साथ यह शारीरिक, भावनात्मक स्वास्थ्य, सामंजस्य और सन्तुलन के लिए हानिकर भी है। व्यक्ति को श्वास के प्रति सजग रहना चाहिए और पन्द्रह श्वास प्रति मिनट की सामान्य श्वसन दर को कायम रखना सीखना चाहिए। यदि व्यक्ति शरीर को शिथिल कर ले, चिंता करना बन्द कर दे और कुछ मिनटों के लिए श्वास के प्रति सजग हो जाये, तो श्वसन की दर घटकर पंद्रह हो जायेगी।

त्रुटिपूर्ण और अनियमित श्वसन से प्राय: शरीर और मन की अव्यवस्थित स्थिति का भान होता है। दर्द या प्रबल भावनाओं के कारण श्वसन के स्वरूप के विच्छिन्न होने से हम परिचित हैं। दु:ख भरी सिसकी, चौंकने पर श्वास का रुक जाना और क्रोध में फुफकारने जैसी श्वास, ये सब इस बात के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं कि किस प्रकार भावनायें श्वसन को प्रभावित करती है। यह प्रक्रिया इसके

विपरीत भी काम करती है। सही श्वसन शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य में पूरी तरह सुधार लाता है। अत: प्राणायाम के लिए प्रथमत: सजग श्वसन पूर्वापेक्षित है, ताकि सही श्वसन की आदत डालना सम्भव हो सके। सजग श्वसन का विकास करने के लिए मन को भावनात्मक तनाव से मुक्त कर लेना चाहिए।

शायद श्वसन ही एक ऐसी शारीरिक प्रक्रिया है जो स्वैच्छिक या अनैच्छिक हो सकती है। व्यक्ति सजगता के साथ श्वास ले सकता है और श्वसन प्रक्रिया को नियन्त्रित कर सकता है अथवा वह सहज या अचेतन रूप से श्वास ले सकता है। यदि श्वास अचेतन रूप से चलती है, तो यह मस्तिष्क के आद्य अंगों के द्वारा नियन्त्रित होती है, जहाँ ऐसी भावनाएँ, विचार एवं अनुभूतियाँ भी अपना प्रभाव डालने लगती हैं, जिनके प्रति व्यक्ति बहुत कम सजग रहता है या बिल्कुल सजग नहीं रहता। हालाँकि ज्योंही व्यक्ति सजगता के साथ श्वास लेने लगता है, अग्रमस्तिष्क विभिन्न गोलार्द्धों को नियन्त्रण की क्षमता प्रदान करता हुआ श्वास को अंकित करने लगता है।

स्वाभाविक श्वास की सजगता

श्वास को व्यक्ति की सतत् सजगता का एक अंग बन जाना चाहिए। इसके लिए सबसे पहले केवल श्वसन प्रक्रिया के प्रति सजग हो जाना चाहिए। बिना सजगता के श्वास सम्बन्धी किसी भी प्रक्रिया में कुछ भी उपलब्ध नहीं हो पाता है। यद्यपि श्वसन प्रक्रिया चौबीसों घंटे चलती रहती है, फिर भी व्यक्ति में न तो इसकी सजगता होती है और न ही यह महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया उसके नियन्त्रण में होती है। निम्नलिखित विधियों द्वारा श्वसन प्रक्रिया के प्रति सजगता का विकास किया जा सकता है।

श्वास को गिनना

आराम से बैठ जायें या शवासन में लेट जायें और कुछ क्षणों तक कायास्थैर्यम् का अभ्यास करें।

सामान्य श्वास के प्रति सजग हो जायें।

श्वास के स्वरूप को बदलने का प्रयास नहीं करें; केवल अन्दर और बाहर आने-जाने वाली स्वाभाविक श्वास के प्रति सजग हो जायें।

इस स्वाभाविक प्रक्रिया का अवलोकन करें, जो आपके सम्पूर्ण जीवन में चलती रही है और जिसे ऐसा ही मान लिया गया है। आप दिन-रात

श्वास लेते रहते हैं, फिर भी सामान्यत: आप एक भी श्वास के प्रति सजग नहीं होते हैं।

अब प्रत्येक श्वास के प्रति सजग हो जायें। अपने श्वसन की स्वाभाविक लय में हस्तक्षेप नहीं करें; केवल प्रत्येक श्वास को देखते जायें।

धीरे-धीरे श्वास के प्रति अधिक सजग होते जायें; स्वयं को इसके निरंतर अबाध प्रवाह के साथ शिथिल हो जाने दें।

श्वास के और निकट आते जायें और देखें कि यह किस प्रकार प्रवाहित हो रही है। श्वास तेज है या धीमी? उथली है या गहरी? नियमित है या अनियमित? क्या श्वासों के बीच कोई अन्तराल है? क्या आप श्वास लेते समय हाँफते भी हैं?

किसी भी प्रकार श्वास को रूपान्तरित या नियन्त्रित नहीं करें।

केवल एक मौन साक्षी की भाँति प्रत्येक श्वास का अवलोकन करें और इस बात का ध्यान रखते जायें कि आप किस प्रकार श्वसन कर रहे हैं।

एक भी श्वास से ध्यान हटाये बिना, प्रत्येक पूरक और रेचक की सजगता बनाये रखें।

स्वयं से मानसिक रूप से कहें, "मैं जानता हूँ कि मैं श्वास ले रहा हूँ; मैं जानता हूँ कि मैं श्वास छोड़ रहा हूँ।" इसी प्रकार अभ्यास जारी रखें।

अब 27 से शून्य तक श्वास की उल्टी गिनती करें।

मानसिक रूप से कहें, "मैं जानता हूँ कि मैं श्वास ले रहा हूँ; मैं जानता हूँ कि मैं श्वास छोड़ रहा हूँ, 27। मैं जानता हूँ कि मैं श्वास ले रहा हूँ; मैं जानता हूँ कि मैं श्वास छोड़ रहा हूँ, 26।"

इसी प्रकार गिनते जायें जब तक कि आप शून्य तक न पहुँच जायें।

यदि किसी समय आप गिनती भूल जाते हैं तो पुन: 27 से आरम्भ करें। शून्य तक पहुँचना नहीं, बल्कि प्रत्येक श्वास पर सजगता बनाये रखना आपका उद्‌देश्य है। हर संख्या आपकी सजगता में अंकित हो जानी चाहिए।

श्वास की सजगता आपको शिथिल करती है, लेकिन जब आप यह सजगता खो देते हैं, तो तनाव होता है। इसलिए बिना सजगता खोये और बिना किसी त्रुटि के गिनते जायें।

जब आप शून्य तक पहुँच जाते हैं, तब अभ्यास बन्द कर दें।

श्वास की सजगता को छोड़ दें और शरीर के प्रति सजग हो जायें।

धीरे-धीरे सजगता को बहिर्मुख करें और धीरे से आँखों को खोल लें।

श्वसन की प्रक्रिया

किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें और कुछ क्षणों के लिए कायास्थैर्यम् का अभ्यास करें। अथवा वैकल्पिक रूप से आप शवासन में लेटकर सम्पूर्ण शरीर को शिथिल कर सकते हैं।

श्वास में बिना कोई परिवर्तन लाये, स्वाभाविक श्वसन प्रक्रिया के प्रति सजग हो जायें।

श्वास के सहज और लयात्मक प्रवाह के प्रति पूरी तरह सजग हो जायें।

अब सजगता को नासिकाओं में श्वास पर केन्द्रित करें।

इस तथ्य के प्रति सजग हो जायें कि आप नासिकाओं से श्वास ले रहे हैं।

अनुभव करें कि श्वास नासिकाओं से प्रवेश कर रही है और नासा मार्ग से ऊपर की ओर प्रवाहित हो रही है।

पूरक के समय श्वास जब नासिकाओं में प्रवेश करती है तो शीतलता का अनुभव होता है और रेचक के समय नासिकाओं में ऊष्णता का अनुभव होता है।

इस प्रक्रिया का अवलोकन एक तटस्थ द्रष्टा के रूप में करें।

अब नासिकाओं के पीछे गले में वायु के मार्ग का अनुभव करें। श्वास के इस प्रवाह से उत्पन्न हुई अनुभूति के प्रति सजग हो जायें।

मुँह के पीछे श्वास का अनुभव करें।

कि श्वास गले से नीचे जाती और वापस ऊपर आती है।

पूरक के समय वायु को गले से नीचे और रेचक के समय ऊपर की ओर प्रवाहित होता हुआ अनुभव करें।

अब सजगता को छाती में केन्द्रित कर दें। प्रत्येक पूरक के साथ फेफड़ों के फैलाव और रेचक के साथ उनके संकुचन के प्रति सजग हो जायें।

जब आप पूरक करते हैं तो अनुभव करें कि ऑक्सीजनयुक्त श्वास फेफड़ों में जा रही है और अवशोषित हो रही है।

जब आप रेचक करते हैं तो अनुभव करें कि कार्बन-डाइऑक्साइड एकत्र होकर फेफड़ों से बाहर जा रही है।

प्रत्येक श्वास के साथ पसलियों के फैलाव तथा संकुचन के प्रति सजग हो जायें।

इन क्रियाओं में बलप्रयोग नहीं करें; सम्पूर्ण प्रक्रिया को सहज रूप से चलने दें।

अपनी सजगता को नीचे की ओर पेशियों की परत, मध्यपट पर लायें, जो फेफड़ों को उदरीय अंगों से अलग करता है।

मध्यपट की गतिविधि के प्रति सजग हो जायें। जब आप पूरक करते हैं, तो इसकी नीचे की ओर गति का और जब रेचक करते हैं तो इसकी ऊर्ध्व गति का अनुभव करें। अपनी सजगता को इस गतिविधि पर ले जायें।

आप पायेंगे कि मध्यपट की गति से उदर क्षेत्र में एक प्रकार की लयात्मक गति उत्पन्न हो रही है।

नासिका से उदर तक सम्पूर्ण श्वसन प्रक्रिया के प्रति सजग हो जायें।

श्वसन प्रक्रिया के प्रत्येक अंग के प्रति सजग हो जायें।

कुछ समय तक इस अभ्यास को जारी रखें।

अब अभ्यास को समाप्त करें और इस श्वसन प्रक्रिया के प्रति सजगता का त्याग कर सजगता को अपने सम्पूर्ण शरीर पर वापस ले आयें।

बाहरी वातावरण के प्रति सजग हो जायें और अपनी आँखों को खोल दें।

श्वास की सजगता में वृद्धि

उपर्युक्त अभ्यास श्वास के प्रति प्रारम्भिक सजगता लाते हैं। आगे जिन अभ्यासों का उल्लेख किया गया है, वे सजगता में गम्भीरता लाते हैं, श्वसन-तंत्र के प्रति संवेदशीलता को बढ़ाते हैं और सम्पूर्ण श्वसन के प्रति सजगता का विकास करते हैं। यह साधक को श्वसन प्रक्रिया की सूक्ष्मताओं का अनुभव करने के लिए तैयार करता है ताकि प्राणायाम के प्रभावों को समझा जा सके।

श्वसन तंत्र की सजगता

शवासन में लेट जायें या आरामदायक आसन में बैठ जायें।

ध्यान रहे कि मेरुदण्ड और सिर एक सीध में हों, साथ-ही कन्धे, पीठ, गर्दन और हाथ शिथिल हों।

सम्पूर्ण शरीर और शिथिलता के प्रति सजग हो जायें।

अब उदर से लेकर नाक के क्षेत्र के प्रति सजग हो जायें। केवल इसी क्षेत्र के प्रति सजग रहें और एक इकाई के रूप में इसका अनुभव करने का प्रयास करें।

उदर से लेकर नाक तक श्वसन का क्षेत्र है। इस क्षेत्र के प्रति सजगता का विकास करें।

अब सजगता को नाक और नासिकाओं में श्वास पर ले जायें।
मानसिक रूप से नासा मार्ग के बालों को देखें, जो धूल और गंदगी को छन्ने की तरह रोक लेते हैं।
श्लेष्मा झिल्ली को देखें, जो नासा गुहाओं में अस्तर का कार्य करती है और अन्दर आने वाली वायु को गरम तथा नम करती है, ताकि वह फेफड़ों के लिए उपयुक्त हो जाये।
अनुभव करें कि श्वास नाक के बालों और श्लेष्मा झिल्ली से होकर जा रही है, जो तंत्रिकाओं द्वारा मस्तिष्क से जुड़ी हुई है और सूक्ष्म रूप से सम्पूर्ण तंत्रिका तंत्र को प्रभावित कर रही है।
अब सजगता को नाक के पीछे की साइनस गुहा में ले जायें।
साइनस गुहा के अन्दर घुमावदार हड्डियाँ होती हैं और जटिल वायुमार्ग होता है। इस गुहा में प्रवाहित होती हुई वायु का अनुभव करें।
जब आप पूरक करते हैं, तो आपको कैसी गंध मिलती है? गंध के प्रति इस सजगता को तीव्र करें।
नासिका गुहाओं से नीचे गले की ओर जायें।
गला मुख के पीछे कोमल तालू के ऊपर खुलता है।
फ़ैरिंक्स से होते हुए गले का विस्तार कंठ की ओर होता है, जहाँ स्वर-तंत्रियाँ स्थित हैं। अनुभव कीजिए कि गले के पीछे स्वर-तंत्रिकाओं तथा श्वासनलिका के द्वारा श्वास ऊपर आती और नीचे जाती है।
छाती के अन्दर श्वासप्रणाल में श्वास के नीचे जाने का अनुभव करें।
उरोस्थि के ठीक पीछे, ग्रासनली के सामने श्वासप्रणाल दो श्वास नलिकाओं में बँट जाता है। उनमें से एक बायें फेफड़े में और दूसरी दायें फेफड़े में प्रवेश कर जाती है। प्रत्येक श्वास नलिका वृक्ष की शाखाओं-प्रशाखाओं के समान छोटी होती हुई बँटती जाती है।
मानस-दर्शन कीजिए कि वायु के श्वासप्रणाल से नीचे दोनों ओर छोटी-से-छोटी नलिकाओं तक जा रही है।
उन लघुतम श्वास नलिकाओं के चारों ओर वायु की नन्हीं-नन्हीं थैलियाँ होती हैं, जिन्हें कूपिका (ऐल्वियोलाइ) कहा जाता है।
ये सब मिलकर स्पॉन्ज जैसे पदार्थ का निर्माण करते हैं, जिसे फेफड़ा कहा जाता है। उन वायु थैलियों में वायु के पहुँचने का और उसके अवशोषित होने का अनुभव करें।

श्वास की ऑक्सीजन वायु थैलियों के माध्यम से छनकर रक्त वाहिनियों में चली जाती है। वे इस पुष्टिकारक रक्त को हृदय तक पहुँचाती हैं। हृदय पम्पक्रिया के द्वारा रक्त को शरीर के सभी भागों में भेजता है।

रक्त वाहिनियाँ कार्बन-डाइऑक्साइड से परिपूर्ण अशुद्ध रक्त को प्रश्वास के साथ बाहर निकालने के लिए भी फेफड़ों में ले जाती हैं। इस अदला-बदली का भी मानस-दर्शन करें।

कुछ मिनटों तक नासिकाओं से फेफड़ों में श्वास के अन्दर आने, उसके बाद फेफड़ों से नासिकाओं में श्वास के बाहर जाने की प्रक्रिया का अवलोकन करें।

स्वयं को श्वास की प्रत्येक क्रिया के साथ पूरी तरह समन्वित कर लें– नासा मार्गों से वायु का प्रवाह और कूपिकाओं में ऑक्सीजन एवं कार्बन-डाईऑक्साइड की अदला-बदली।

अब अपनी सजगता को और बढ़ायें। शरीर की प्रत्येक कोशिका में भी श्वसनक्रिया होती है।

अनुभव कीजिए कि ऑक्सीकृत रक्त फेफड़ों से हृदय में जाता है और वहाँ से शरीर के प्रत्येक हिस्से में – गहरे तथा दूर के सभी अंगों में जाता है। प्रत्येक कोशिका तक सजगता का विस्तार करें।

बाह्य और आन्तरिक, दोनों श्वसन का पूर्णता के साथ अनुभव करें।

अभ्यास को समाप्त करें और पुन: सामान्य श्वसन के प्रति सजग बन जाएँ।

सजगता को शरीर पर वापस ले आयें।

धीरे-धीरे बाह्य वातावरण के प्रति सजग हो जायें।

फेफड़ों को सुग्राही बनाना

निम्नलिखित दो विधियाँ फेफड़ों की अधिकतम क्रियाशीलता के लिए वक्ष गुहा को फैलाती हैं। ये वक्ष के विकास, प्राणायाम की तैयारी या पसलियों के अन्दर फेफड़ों की क्रियाओं के प्रति सजगता का विकास करने के लिए उपयोगी हैं। पहली विधि प्रत्येक फेफड़े में अलग-अलग सजगता का विकास करती है।

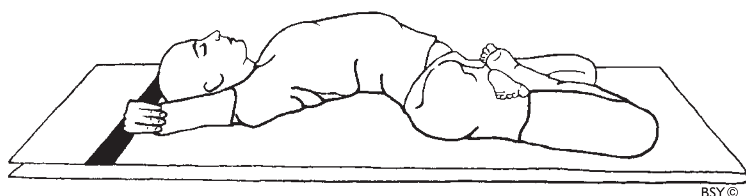
विधि 1 – प्रत्येक फेफड़े में अलग-अलग सजगता

वज्रासन में बैठकर सिर और मेरुदण्ड को एक सीध में कर लें।

हाथों की अँगुलियों को आपस में फँसाकर गरदन के पीछे रखें और बिना

कन्धे उचकाये या सामने झुके कमर से दाहिनी ओर आराम से अधिक से अधिक झुकें।
दस बार गहरा पूरक एवं रेचक करते हुए इसी अवस्था में रहें।
इस अवस्था में मुख्य रूप से बायें फेफड़े के उपयोग का अनुभव करें।
केवल बायें फेफड़े की गति के प्रति सजग हो जायें।
सीधी अवस्था में वापस आते हुए पूरक करें। फिर बायीं ओर आराम से अधिक से अधिक झुकते समय रेचक करें।
दस बार गहरी श्वास-प्रश्वास करने तक इसी अवस्था में रहें। मुख्य रूप से दाहिने फेफड़े के उपयोग का अनुभव करें।
प्रत्येक ओर तीन बार इस अभ्यास की पुनरावृत्ति की जा सकती है।

विधि 2 – फेफड़ों को फैलाना



दोनों पैरों को पद्मासन या पालथी की स्थिति में रखते हुए पीठ के बल लेट जायें।
दोनों भुजाओं को सिर के ऊपर ले जाकर हाथों से दूसरी केहुनी को पकड़ लें। दोनों भुजाएँ जमीन पर समतल रहें।
कूल्हों को फैलाते हुए घुटनों को जमीन के अधिक-से-अधिक निकट रखने का प्रयास करें।
इस अवस्था में मेरुदण्ड धनुषाकार हो जाता है, जिससे वक्ष में खिंचाव आता है और फेफड़ों का अधिकतम विस्तार होता है।
फेफड़ों के विस्तार का अनुभव करते हुए प्रत्येक श्वास की सजगता के साथ धीमे-धीमे गहरी श्वास लें।
फेफड़ों में श्वास की सजगता को बढ़ायें।
तीन से पाँच मिनट तक गहरा और नियमित श्वसन जारी रखें।

मौलिक श्वसन विधियाँ

सजगतापूर्वक श्वास लेना सीख लेने के बाद, फेफड़ों की पूरी क्षमता का उपयोग करते हुए पूर्ण श्वसन करना सीखना आवश्यक है। श्वसन की तीन मौलिक विधियाँ हैं–1) उदर या मध्यपट-श्वसन, 2) वक्ष-श्वसन और 3) हँसली या स्कन्ध श्वसन। मध्यपट-श्वसन तब होता है जब मध्यपट अधिक क्रियाशील हो जाता है और वक्षीय गुहा का आकार छोटा हो जाता है। जबकि वक्ष एवं स्कन्ध श्वसन पसलियों के प्रसार तथा संकुचन से होते हैं। एक सामान्य व्यक्ति का स्वाभाविक श्वसन वक्ष एवं स्कन्ध श्वसन का मिश्रण होता है। तीनों का मिश्रण पूर्ण यौगिक श्वसन कहलाता है, जो प्राणायाम के लिए पूर्वापेक्षित है।

मध्यपट या उदर श्वसन

मध्यपट फेफड़ों को उदरीय गुहा से अलग करता है। स्वाभाविक श्वसन में यह बहुत कम क्रियाशील होता है, लेकिन गहरे श्वसन के दौरान निपुणतापूर्वक श्वसन को प्रोत्साहित करते हुए यह पूरक के समय नीचे उदर की ओर और रेचक के समय ऊपर की ओर फैलता है। मध्यपट-श्वसन में कम प्रयास में ही समान वायु की मात्रा उपलब्ध हो जाती है। शिशु तथा छोटे बच्चे श्वसन के लिए केवल मध्यपट का ही उपयोग करते हैं। वक्ष की अस्थियों के विकसित एवं परिपक्व हो जाने के बाद ही वक्ष-श्वसन होता है।

मध्यपट-श्वसन का तब तक प्रतिदिन अभ्यास करते रहना चाहिए जब तक यह एक सहज आदत न बन जाये। हालाँकि आजकल तनाव, हानिकर आदतों, गलत तरीके से बैठने और कसे हुए कपड़े पहनने के कारण कम ही लोग उदर श्वसन कर पाते हैं। इस विधि में दक्षता प्राप्त करने पर शारीरिक

एवं मानसिक स्वास्थ्य में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाये जा सकते हैं। फेफड़ों के चिरकालिक, प्रतिरोधात्मक रोगों से पीड़ित लोगों को विशेष रूप से मध्यपट-श्वसन करने की सलाह दी जाती है। किसी भी मानसिक तनाव को दूर करने का सबसे आसान तरीका है, मध्यपट-श्वसन, क्योंकि यह परानुकम्पी हृदयसंवहनियों के प्रभाव को बढ़ाता है। कठिन कार्यों, जैसे कि कठिन शारीरिक कार्य या स्पर्धापूर्ण खेलों के दौरान फेफड़ों को अधिक ऑक्सीजन अवशोषित करने की आवश्यकता होती है और तब पूर्ण श्वसन आवश्यक होता है। अधिकांश दैनिक परिस्थितियों में सामान्य उदर श्वसन ही पर्याप्त होता है।

उदर श्वसन में उदरीय प्रसार के कारण नीचे की पसलियाँ कम गतिशील होती हैं, लेकिन पसलियों की पेशियों के द्वारा इस हेतु बल प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। मध्यपट की गति उदरीय अंगों की मालिश करती है और उदर की दीवार की पेशियों को सशक्त बनाती है, जिससे पाचन, चयापचय और उत्सर्जन की क्रियाओं में सुधार आता है। उदर श्वसन के दौरान हृदय को कम परिश्रम करना पड़ता है। खड़े होकर अभ्यास करते समय उदरीय अंगों पर गुरुत्व का प्रभाव मध्यपट की अधोमुखी क्रिया में सहायक होता है।

चूँकि मध्यपट-श्वसन फेफड़ों के निचले भाग को नीचे की ओर खींचता है, वक्ष-श्वसन की तरह फेफड़ों के दोनों ओर से नहीं, इसलिए शुद्ध वायु का वितरण सम्पूर्ण फेफड़ों में समान रूप से होता है। दक्षतापूर्वक श्वसन नहीं होने पर अशुद्ध वायु फेफड़ों के पिण्डों में रुकी रह जाती है। मध्यपट-श्वसन में ज्वारीय आयतन अधिक होता है और अपूर्ण रूप से ऑक्सीजन की आपूर्ति वाले स्थानों में कमी आ जाती है। इसके अतिरिक्त, चूँकि फेफड़ों के निचले भाग में गुरुत्वाकर्षण के कारण रक्त का प्रवाह अधिक होता है, इसलिए पर्याप्त रूप से ऑक्सीजन की आपूर्ति होने के कारण गैसों के अन्तरण की क्षमता में वृद्धि हो जाती है।

हृदय एवं फेफड़ों के आधार मध्यपट की ऊपरी सतह से जुड़े रहते हैं, जबकि यकृत, प्लीहा, आमाशय और पक्वाशय इसके ठीक नीचे रहते हैं और वे इसकी निचली सतह से जुड़े रहते हैं। मध्यपट के अधिक क्रियाशील होने के कारण इन अंगों में रक्त संचार बेहतर हो जाता है, जिससे इनकी कार्यक्षमता में सुधार आ जाता है। यह शरीर के निचले भाग से रक्त को हृदय में लौटने में भी मदद करता है, जो हृदय की क्रिया और क्षमता को बनाए रखने के लिए

आवश्यक है, और यह उपमध्यपटीय लिम्फ़ैटिक तंत्र के निर्गमन में सहायक होता है। ऐसा माना जाता है कि यह उदरीय अंगों, हृदय तथा फेफड़ों को मस्तिष्क से जोड़ने वाली परानुकम्पी वेगस तंत्रिका की मालिश करता है और उसे शक्ति भी प्रदान करता है।

मध्यपट की गति के एक्स-रे द्वारा किये गये अवलोकनों ने दर्शाया कि विश्राम, सुखद विचार एवं अनुभूतियाँ इसकी गति को बढ़ा देते हैं, श्वसन अत्यन्त धीमा और गहरा हो जाता है। मध्यपट की गति का व्यापक विस्तार धीमे, गहरे श्वसन में परिणत होता है, जबकि इसकी संकुचित गति उथले, त्वरित श्वसन में परिणत होती है। न केवल तनावमुक्त विचार पेशियों को शिथिल करते और मध्यपटीय गति को बढ़ाते हैं, बल्कि धीमा, शिथिल श्वसन भी मन को शान्त करता है। जिन विधियों से ऐसा हो सकता है, उनमें से एक है एन्डॉर्फ़िन्स का मुक्त होना। ऐसा पाया गया है कि गहरे श्वसन के द्वारा एन्डॉर्फ़िन्स रक्त प्रवाह में आ मिलते हैं। एन्डॉर्फ़िन्स मस्तिष्क के प्रभावशाली रसायन, तंत्रिका नियन्त्रक हैं, जो दर्द को सहने में मदद करते हैं और ऐसे रचनातन्त्र हैं जो भय एवं चिन्ता का सामना करते तथा उन्हें दूर करते हैं।

सही श्वसन को पुन: सीखने के लिए सबसे पहले उदर श्वसन में दक्षता हासिल करनी होगी। कुछ लोगों को यह आरम्भ में कठिन प्रतीत हो सकता है, लेकिन अभ्यास के साथ यह सहज और स्वाभाविक हो जाता है। उदर श्वसन का अभ्यास पहले शवासन में, उसके बाद बैठ कर या खड़े होकर करना चाहिए।

स्वाभाविक उदर श्वसन

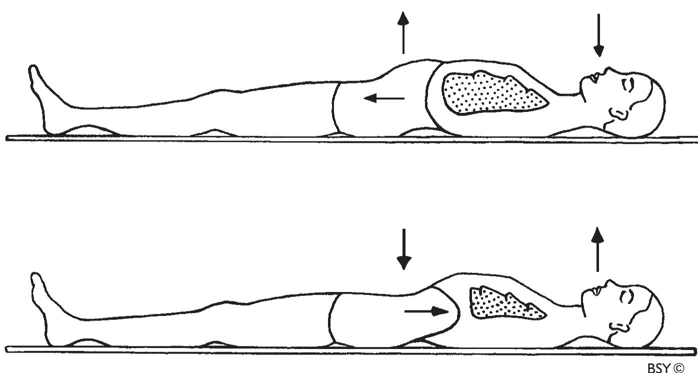
शवासन में लेट जायें और पूरे शरीर को शिथिल कर लें।

श्वास को सहज, नियमित एवं समान हो जाने दें।

इसे स्वाभाविक बने रहने दें, किसी भी प्रकार से न तो जोर डालें, न ही नियन्त्रित करें।

अपना ध्यान मध्यपट पर ले जायें और फेफड़ों के नीचे एक पेशीय चादर के रूप में इसका मानस-दर्शन करें। अपनी सजगता को स्थिर करने के लिए उरोस्थि सर्वोत्तम स्थान है।

श्वास अन्दर लेते समय इस गुम्बद के आकार की पेशीय चादर के समतल होने का और इसके नीचे के उदरीय अंगों पर इसके द्वारा नीचे



की ओर पड़ने वाले दबाव का मानस-दर्शन करें। इसके साथ-ही श्वास फेफड़ों के अन्दर चली जाती है।

श्वास के बाहर निकलने के साथ ही मध्यपट शिथिल हो जाता है। साथ-ही अनुभव करें कि यह उरोस्थि के नीचे अपने गुम्बद आकार को पुन: प्राप्त करते हुए ऊपर उठता, वायु को फेफड़ों के बाहर निकालता और उदरीय अंगों के दबाव को मुक्त करता है।

वक्ष तथा उदर के बीच इस अन्तरापृष्ठ की गति के प्रति सजगता को बढ़ायें। अनुभव करें कि इसकी लयबद्ध गति किस प्रकार स्वत: उदर श्वसन के लिए प्रेरित करती है।

किसी भी प्रकार बलपूर्वक श्वास को अन्दर नहीं ठेलें; उदरीय या वक्षीय पेशियों में कोई तनाव नहीं होना चाहिए। यदि कोई तनाव अनुभव होता है तो उसे विलीन हो जाने दें।

मध्यपट-श्वसन उदरीय पेशियों द्वारा प्रेरित नहीं होता है।

मध्यपट की गति का अनुभव प्रतिरोधरहित, स्वाभाविक तथा आरामदायक होना चाहिए।

स्वाभाविक, उदर श्वसन को कुछ समय तक जारी रखें।

अब अपने दाहिने हाथ को नाभि के ठीक ऊपर, उदर पर रखें और बायें हाथ को वक्ष के केन्द्र में रखें।

उदर श्वसन में आप अपने दाहिने हाथ को पूरक के साथ ऊपर उठता हुआ और रेचक के साथ नीचे जाता हुआ अनुभव करेंगे।

उदर में कोई तनाव नहीं होना चाहिए।

उदर की गति पर बल प्रयोग नहीं करें।
श्वास के साथ आपका बायाँ हाथ नहीं हिलना चाहिए। श्वास के माध्यम से फेफड़ों के प्रसार तथा संकुचन का अनुभव करने का प्रयास करें।
कुछ समय तक यह अभ्यास जारी रखें, जब तक आप यह अनुभव न करने लगें कि श्वसन प्रक्रिया के साथ केवल मध्यपट क्रियाशील हो रहा है।

नियन्त्रित उदर श्वसन

शवासन में लेट जायें और पूरे शरीर को शिथिल कर लें।
यदि आप चाहें तो एक हाथ को उदर पर, नाभि के ऊपर रख सकते हैं।
उदर श्वसन आरम्भ करें और अनुभव करें कि उदर ऊपर और नीचे की ओर गतिमान हो रहा है।
साथ ही उदर एवं वक्ष पेशियाँ पूर्णत: शिथिल रहनी चाहिए।
मध्यपट का उपयोग करते हुए धीरे-धीरे पूरी तरह श्वास को बाहर निकालें।
अनुभव करें कि मध्यपट के कारण ही उदर में गति हो रही है।
जब आप श्वास बाहर निकालते हैं तब अनुभव करें कि उदर और नाभि, अन्दर मेरुदण्ड की ओर जा रहे हैं।
रेचक के अन्त में मध्यपट पूरी तरह शिथिल हो जायेगा और उदरीय पेशियों में बिना किसी संकुचन के वक्ष गुहा में ऊपर की ओर उठ जायेगा।
कुछ क्षणों के लिए बिना किसी तनाव के श्वास को बाहर ही रोक कर रखें।
मध्यपट के द्वारा धीरे-धीरे गहरी श्वास लें।
प्रयास करें कि वक्ष फैले नहीं या कन्धे हिलें नहीं।
अनुभव करें कि उदर फैल रहा है और नाभि ऊपर उठ रही है।
पसलियों को बिना फैलाए फेफड़ों के निचले पिण्डों को वायु से अधिक से अधिक भर दें।
बिना किसी प्रयास के कुछ क्षणों के लिए वायु को अन्दर रोक कर रखें।
उसके बाद, नियन्त्रण के साथ सम्पूर्ण वायु को फेफड़ों से पूरी तरह धीरे-धीरे बाहर निकालें।
पुन: अनुभव करें कि नाभि मेरुदण्ड की ओर जा रही है।
रेचक के अन्त में उदर पूरी तरह तनावमुक्त होगा, नाभि मेरुदण्ड की ओर दबी हुई होगी।

कुछ क्षणों तक श्वास को बाहर रोकने के बाद श्वास अन्दर लें।
सम्पूर्ण प्रक्रिया को दुहरायें।
इस अभ्यास को 50 श्वासों तक या दस मिनट तक करें।

वक्ष-श्वसन

वक्ष-श्वसन पसलियों के प्रसार एवं संकुचन की एक विधि है। वक्ष-श्वसन में यह प्रसार एवं संकुचन पसलियों से जुड़ी हुई पेशियों और शरीर के विभिन्न भागों द्वारा और साथ-ही पसलियों के बीच कार्यरत पेशियों द्वारा होता है। पूरक के लिए इन पेशियों का एक समूह पसलियों को ऊपर, सामने और बाहर की ओर खींच कर वक्षीय गुहा को फैलाता है और वायु को फेफड़ों के अन्दर आने देता है। वे पेशियाँ जब शिथिल होती हैं तब पसलियाँ बिना किसी प्रयास के स्वत: अपने स्थान पर वापस आ जाती हैं, जिससे रेचक की क्रिया होती है। यदि फेफड़ों से वायु को पूरी तरह निकालना होता है, तो प्रारम्भिक स्थिति से पेशियों का दूसरा समूह पसलियों पर अतिरिक्त दबाव डालता है।

वक्ष-श्वसन उदर श्वसन की अपेक्षा कम सामर्थ्य वाला श्वसन है, लेकिन इसकी आवश्यकता कठिन शारीरिक कार्यों के समय तब होती है जब फेफड़ों में अत्यधिक वायु आवश्यक हो जाती है। वायु की समान मात्रा के लिए उदर श्वसन की तुलना में वक्ष-श्वसन में पेशियों को अधिक उद्यम करना पड़ता है। वक्ष-श्वसन का सम्बन्ध प्राय: मानसिक दबाव और तनावपूर्ण स्थितियों से होता है, क्योंकि इसका कार्य तनावपूर्ण स्थिति में फेफड़ों को अधिक वायु प्राप्त करने में मदद करना होता है। हालाँकि तनावपूर्ण स्थिति के समाप्त हो जाने के बाद भी इस प्रकार के श्वसन की प्रवृत्ति बनी रह जाती है, जो त्रुटिपूर्ण श्वसन की आदत डाल देती है। वास्तव में शोध के द्वारा यह पाया गया है कि सामान्य जनसमुदाय के 20% से अधिक व्यक्तियों में आदतन वक्ष-श्वसन करने की प्रवृत्ति होती है।

वक्ष-श्वसन में कौशल की कमी होती है, क्योंकि यह प्रचुर वायु को फेफड़ों के बीच वाले पिण्डों में ले जाता है, जहाँ रक्त की पर्याप्त आपूर्ति नहीं होती है। फेफड़ों की बाहरी सतह की श्वास नलिकाओं में अपनी अधिकतम सीमा से भी अधिक फैलने की प्रवृत्ति होती है, जबकि केन्द्रीय श्वास नलिकाएँ पूरी तरह नहीं खुल पाती हैं, इससे गैस का प्रसरण असमान

हो जाता है। यदि बाहरी श्वास नलिकाएँ आवश्यकता से अधिक खुलती हैं, जैसा कि दमा तथा वातस्फीति (एम्फ़िसेमा) में होता है, तो वे अपना लचीलापन गँवा देती हैं। उसके बाद वे खुली हुई, एक निश्चित स्थिति में ही रहती हैं और वायु को अन्दर लेने में अधिक क्रियाशील नहीं हो पाती हैं। वक्ष फैला हुआ और एक पीपे के समान दिखता है, लेकिन फेफड़े श्वसन के समय समुचित गति नहीं कर पाते हैं। इसीलिए वक्ष-श्वसन करने वालों को बीच-बीच में गहरी श्वास लेने की आवश्यकता होती है, ताकि फेफड़े ऊपर से नीचे तक पूरी तरह भर जायें।

यदि हृदय-वक्षीय तंत्र के परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो वक्ष-श्वसन से परानुकम्पी शक्ति में कमी आ जाती है और अनुकम्पी प्रधानता बढ़ जाती है, जो बढ़ी हुई हृदय गति और हृदय के अधिक उद्यम, वाहिका-विस्फारण (वासोडाइलेशन), मस्तिष्क एवं हृदय में रक्त प्रवाह और ऑक्सीजन की आपूर्ति में कमी, और हृदय की प्रमुख असामान्यताओं की सम्भावनाओं में वृद्धि के रूप में परिलक्षित होती है। रक्त में कार्बन-डाइऑक्साइड की सान्द्रता में कमी ही उपर्युक्त प्रभावों के लिए मुख्य शरीर-क्रियात्मक कारण है।

कुछ लोग अपनी कामवासना, भय, आक्रामकता और अन्य प्रबल भावनाओं को रोके रखने के लिए अपने मध्यपट को स्थिर कर देते हैं और श्वसन के लिए शरीर के ऊपरी हिस्से का उपयोग करते हैं। चूँकि ये भावनाएँ मूलाधार, स्वाधिष्ठान एवं मणिपुर चक्रों से सम्बद्ध होती हैं, इसलिए मध्यपट को कड़ा कर लेने पर ये भावनाएँ शरीर के निचले भाग में ही रुद्ध होकर सजगता क्षेत्र से बाहर हो जाती हैं। यद्यपि विशेष उद्देश्य के लिए वक्ष-श्वसन का उपयोग उपचार के रूप में प्रबल भावनाओं तथा तनाव को उत्पन्न करने और उन्हें दूर करने हेतु किया जा सकता है।

वक्ष-श्वसन का अभ्यास श्वसन की पूर्ण क्षमता पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए किया जाना चाहिए। यह यौगिक श्वसन एवं विशेष प्राणायामों के अभ्यास के लिए भी आवश्यक है। मार्गदर्शन के लिए निम्नलिखित विधियाँ प्रस्तुत हैं।

निष्क्रिय रेचक के साथ वक्ष-श्वसन

शवासन में लेट जायें और पूर्णत: शिथिल हो जायें।

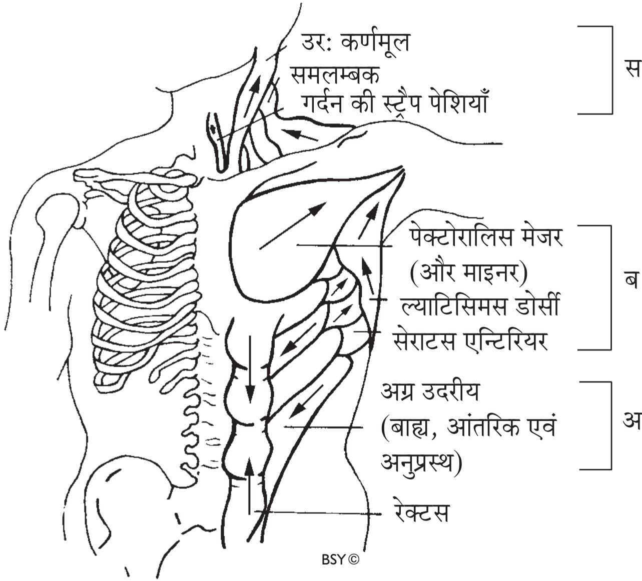
श्वास को सामान्य हो जाने दें।

श्वास की सजगता निरंतर बनी रहे।
ध्यान को वक्ष की दोनों बगल पर केन्द्रित करें।
किसी भी प्रकार से हो रहे मध्यपट-श्वसन को रोक दें।
पसलियों को फैलाते हुए धीरे-धीरे पूरक करें।
प्रत्येक पसली की बाहर और ऊपर की ओर की गति के साथ वायु के फेफड़ों में प्रवेश का अनुभव करें।
वक्ष को अधिक-से-अधिक, जितना सम्भव हो, फैलायें।
वक्ष की पेशियों को शिथिल करते हुए रेचक करें।
फेफड़ों से वायु को बलपूर्वक निकालते हुए अनुभव करें कि पसलियाँ शिथिल होकर प्रारम्भिक स्थिति में आ रही हैं।
पूर्ण सजगता के साथ धीरे-धीरे गहरा श्वसन करें।
पूरक या रेचक के लिए मध्यपट का उपयोग नहीं करें।
पूरक और रेचक के बाद कुछ क्षणों का विराम देते हुए वक्ष-श्वसन जारी रखें।
अभ्यास को 50 श्वासों तक करें।

बलपूर्वक रेचक के साथ वक्ष-श्वसन

शवासन में लेट जायें और शरीर को पूरी तरह शिथिल कर लें।
उपर्युक्त विधि से वक्ष-श्वसन करें।
कुछ मिनट तक अभ्यास करें।
अगला रेचक पूरा करने के बाद पसलियों को सामान्य स्थिति से भी अधिक संकुचित करें। आप पायेंगे कि पिछले रेचक के बाद भी फेफड़ों में शेष रह गयी वायु को बलपूर्वक निकाल दिया गया है। यह थोड़े उदरीय तनाव के द्वारा ही हो पाता है।
अब फेफड़े बिल्कुल खाली प्रतीत होते हैं।
अब पहले सामान्य रूप से पसलियों को फैलाते हुए अगला पूरक करें और उसके बाद उन्हें बलपूर्वक और अधिक फैलाते हुए पूर्ण वक्षीय पूरक करें।
अगले रेचक में पसलियों को पुन: उनकी सामान्य स्थिति से अधिक दबाकर सम्पूर्ण वायु को बलपूर्वक बाहर निकाल दें।
श्वास की धीमी और स्थिर गति को कायम रखते हुए बलपूर्वक पूरक और रेचक जारी रखें।

बलपूर्वक श्वसन



अ) बलपूर्वक उदरीय गतियाँ
ब) बलपूर्वक वक्ष की गतियाँ
स) बलपूर्वक हँसली की गति

वक्ष-श्वसन का अभ्यास करते समय सहज और बलपूर्वक किये जाने वाले रेचक के अन्तर को पूरी तरह समझने का प्रयास करें।
प्रत्येक पूरक और रेचक के बाद कुछ क्षण रुकते हुए अभ्यास को जारी रखें। अभ्यास को 50 श्वासों तक करें।

हँसली श्वसन

हँसली श्वसन में फेफड़ों के ऊपरी भाग में ऑक्सीजन की आपूर्ति होती है। इस प्रकार के श्वसन में अति अल्प प्रयास लगता है और यह सामान्यत: बैठकर किये जाने वाले कार्यों के दौरान चलता है। यौगिक श्वसन के एक अंग के रूप में यह पसलियों के पूरे फैलाव की अंतिम अवस्था है। फेफड़ों में कुछ अधिक वायु का अवशोषण करने के लिए वक्षीय पूरक के पूरा हो जाने के बाद यह

श्वसन होता है। इस प्रकार के श्वसन में ऊपरी पसलियों और हँसली को गरदन तथा गले के दोनों ओर की पेशियों के द्वारा ऊपर की ओर खींचा जाता है। दैनिक जीवन में यह या तो सिसकने के समय या दमा का दौरा पड़ने पर होता है।

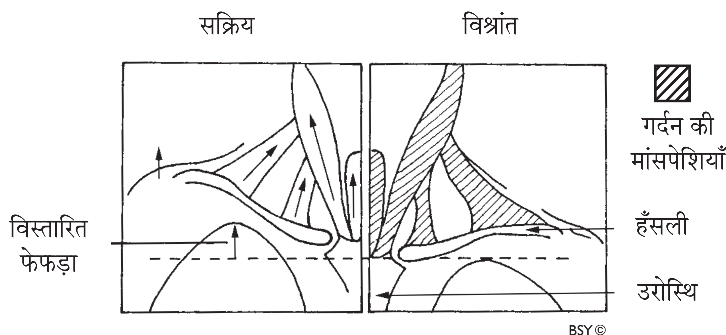
निम्नलिखित अभ्यास हँसली श्वसन की विधि को सीखने में मदद करते हैं ताकि आवश्यकता पड़ने पर दक्षतापूर्वक इसका उपयोग किया जा सके।

वक्ष-श्वसन के साथ हँसली श्वसन

शवासन में लेट जायें और सम्पूर्ण शरीर को शिथिल कर लें।
सहज रेचक के साथ वक्ष-श्वसन करें और कुछ मिनट तक जारी रखें।
उसके बाद पसलियों को फैलाते हुए पूरी तरह श्वास अन्दर लें।
जब पसलियाँ पूरी तरह फैल जायें तब और अधिक श्वास अन्दर लें। जब तक किंचित् ऊपर की ओर उठी हुई हँसलियों के ठीक नीचे फेफड़ों के ऊपरी भाग में फैलाव का अनुभव न होने लगे। इस क्षण पसलियों का अधिकतम प्रसार होता है।
पहले ऊपरी वक्ष को खाली करते हुए धीरे-धीरे रेचक करें।
अब शेष पसलियों को शिथिल कर सामान्य स्थिति में ले आयें।
कुछ और श्वासों तक अभ्यास जारी रखें।
फिर सामान्य श्वसन करते हुए अभ्यास को समाप्त करें।

अलग से हँसली श्वसन का अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं है। इसका अभ्यास उतना ही करें कि आप यौगिक श्वसन के साथ इसे भी करने में सक्षम हो जायें।

हँसली का कार्य



विरोधाभासी श्वसन

हाँफना या विरोधाभासी श्वसन तीन सामान्य श्वसन विधियों से भिन्न प्रकार की श्वसन विधि है। यह तब होता है जब अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र को प्रेरित करना अत्यंत आवश्यक होता है। व्यक्ति इतनी जोर से और जल्दी-जल्दी श्वास लेता है कि उदर की दीवार बाहर नहीं निकलती, बल्कि अन्दर चली जाती है। किसी भी प्रकार के आघात की स्थिति में ऐसा होता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति जाड़े की सुबह में बर्फ जैसे ठण्ढे पानी से स्नान करता है, तो पानी के पहले स्पर्श के साथ ही उसका मुँह खुल जायेगा और ढेर सारी हवा अन्दर चली जायेगी।

इसे विरोधाभासी श्वसन कहते हैं, क्योंकि उदर की दीवार श्वास लेते समय बाहर नहीं निकलती, बल्कि अन्दर चली जाती है और श्वास छोड़ते समय बाहर निकल जाती है। विरोधाभासी श्वसन अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र को वक्ष-श्वसन की अपेक्षा अधिक प्रेरित करता है। यदि इस प्रकार 10 – 15 श्वसन भी करने पड़े तो व्यक्ति घबरा कर अशान्त हो जायेगा, क्योंकि इससे अचानक ऐड्रिनलीन हारमोन उत्पन्न हो जाता है, जिससे 'लड़ो या भागो' जैसी प्रतिक्रिया होती है। यह अत्यधिक चिंता की स्थिति में ही होता है।

यौगिक श्वसन

दैनिक जीवन में मनुष्य का विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों से सामना होता है, जिनके अनुरूप समुचित शारीरिक एवं मानसिक प्रतिक्रिया होनी चाहिए। इसका अवलोकन ऊपर वर्णित श्वसन की बदलती हुई तीव्रता के स्वरूप में किया जा सकता है। यौगिक श्वसन का अभ्यास श्वसन की प्रत्येक विधि का अनुभव करने में सहायता करता है। यह ऑक्सीजन की आपूर्ति में वृद्धि कर देता है, चूँकि फेफड़े पूरी तरह वायु से भरे हुए होते हैं और उनके सभी खण्ड फैले हुए रहते हैं, इससे गहरे तथा पूर्ण रूप से नियन्त्रित श्वसन के अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। चूँकि श्वसन की प्रक्रिया में नियन्त्रण प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है, इसलिए सूक्ष्म मानसिक प्रक्रियाओं पर नियन्त्रण करना सम्भव हो जाता है।

यौगिक श्वसन के दौरान पूरक करते समय मध्यपट को वक्षीय गुहा के अन्दर नीचे की ओर और उदरीय पेशियों को बाहर की ओर फैलाते हुए हवा पहले फेफड़ों के निचले खण्डों में भरी जाती है। इसके बाद वक्ष-श्वसन होता है, जो फेफड़ों के मध्य खण्डों को वायु से भर देता है, और पसलियों में बाहर

और ऊपर की ओर गति उत्पन्न करता है। हँसली श्वसन के साथ पूरक होता है, जो गर्दन तथा कन्धों की पेशियों का उपयोग कर पसलियों को और ऊपर उठाते हुए फेफड़ों के ऊपरी खण्डों को वायु से भर देता है।

रेचक में ठीक इसके विपरीत प्रक्रिया होती है, जिसमें फेफड़ों पर मध्यपट तथा वक्ष के दबाव के साथ वायु का पूर्ण निष्कासन हो जाता है। अन्तर्पर्शुकाओं का संकुचन पसलियों को अन्दर की ओर ले जाता है और उदरीय पेशियों का शिथिलीकरण उदर के तत्त्वों को शिथिल मध्यपट से दूर ऊपर की ओर ले जाता है, जिससे वायु पूरी तरह निष्कासित हो जाती है। पूरक एवं रेचक, दोनों में फेफड़े अपनी पूर्ण क्षमता के साथ फैल जाते हैं। पूरक फेफड़ों के निचले खण्डों से आरम्भ होता है और ऊपरी खण्डों में पूरा होता है। रेचक में इसके विपरीत प्रक्रिया होती है। सारी अशुद्ध वायु प्रत्येक नि:श्वास के साथ बाहर निकाल दी जाती है और अगला पूरक फेफड़ों के सभी खण्डों में स्वच्छ वायु पहुँचा देता है।

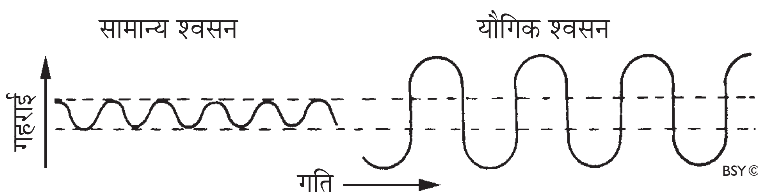
यौगिक श्वसन का उद्देश्य श्वसन प्रक्रिया पर नियन्त्रण प्राप्त करना, श्वसन की त्रुटिपूर्ण आदतों को सुधारना और जब आवश्यक हो तब ऑक्सीजन के अन्तर्ग्रहण को बढ़ाना है। यौगिक श्वसन में निपुणता प्राप्त करने का अर्थ होता है, श्वसन प्रक्रिया के सभी पक्षों का चेतन मन के नियन्त्रण में होना और इच्छानुसार उसे नियन्त्रित करना। इसका अर्थ यह नहीं है कि हमेशा यौगिक श्वसन का अभ्यास किया जाना चाहिए। अधिकांश प्राणायाम की प्रक्रियाओं के दौरान यौगिक श्वसन करने का सुझाव दिया जाता है। यद्यपि प्राणायाम में श्वास को हँसली के क्षेत्र में ले जाना आवश्यक नहीं होता है। उदर एवं वक्ष-श्वसन का संयोग सर्वोत्तम होता है, जो पूरक तथा रेचक की सुखद लयबद्ध तरंगों को उत्पन्न करता है।

यौगिक श्वसन के लाभ

यौगिक श्वसन में फेफड़े ऊर्ध्व और क्षैतिज, दोनों दिशाओं में फैलते हैं। मध्यपटीय गति में वृद्धि के कारण ऊर्ध्व दिशा में प्रसार होता है। सामान्य श्वसन के दौरान मध्यपट की गति ऊपर और नीचे लगभग एक सेन्टीमीटर होती है, जब कि यौगिक श्वसन में यह गति तीन से चार सेन्टीमीटर तक हो सकती है। बैठकर प्राणायाम करने से भी फेफड़ों में ऊर्ध्व अक्ष पर अत्यधिक प्रसार होता है।

सामान्य, शान्त और अचेतन श्वसन आधा लीटर (500 मि.ली.) वायु को फेफड़ों के अन्दर और बाहर ले जाता है (ज्वार आयतन/टाइडल वॉल्युम)। इसका लगभग एक चौथाई आयतन (150 मि.ली.) अप्रयुक्त ही रह जाता है तथा श्वासप्रणाल और नलिकाओं में, जो मात्र वायु-मार्ग हैं और जहाँ गैसों का आदान-प्रदान नहीं होता है, स्थान छेंक लेता है। इसलिए सामान्य श्वसन में प्रत्येक श्वास के साथ ताजी हवा का बहुत कम आयतन ही फेफड़ों की कूपिकाओं में प्रवेश कर पाता है। यौगिक श्वसन में वायु की कहीं अधिक मात्रा फेफड़ों तक पहुँच जाती है और अधिक कूपिकाओं के ऊतकों को फुला देती है। एक पूरक के दौरान पाँच लीटर वायु को ग्रहण किया जा सकता है। इस प्रकार रक्त में गैसों के आदान-प्रदान के लिए ऑक्सीजन की अधिक मात्रा उपलब्ध हो जाती है।

मध्यपट की ऊर्ध्व गति में वृद्धि होने से फेफड़ों की कूपिकाएँ समान रूप से खुल जाती हैं, विशेष रूप से फेफड़ों के बीच की, आधार की और शीर्ष के क्षेत्रों की। इस समान प्रसार के कारण कूपिका-झिल्लियों का अतिरिक्त प्रसार गैसों के आदान-प्रदान के लिए उपलब्ध हो जाता है। उपलब्ध क्षेत्र जितना बड़ा होगा, गैसों का आदान-प्रदान उतनी ही निपुणता से होगा। क्षैतिज प्रसार में कुछ कूपिकाएँ बन्द रह जाती हैं और उनमें स्राव जमा होने लगते हैं, जिससे उनके रोग-ग्रस्त होने की संभावना बढ़ जाती है। यौगिक श्वसन के द्वारा ऐसी सम्भावनाओं को कम किया जा सकता है।



यौगिक श्वसन

शवासन में लेट जायें और सम्पूर्ण शरीर को शिथिल कर लें।
उदर को पूरी तरह फैलाते हुए मध्यपट के सहारे पूरक करें।
इतना धीरे-धीरे और गहराई से श्वसन करें कि श्वास की ध्वनि कम-से-कम या नहीं ही सुनायी दे।

अनुभव करें कि हवा फेफड़ों के निचले खण्डों में भर रही है।
उदर के पूर्ण प्रसार के बाद वक्ष को बाहर और ऊपर की ओर फैलाएँ।
इस गति के बाद थोड़ी और श्वास अन्दर लें तथा अनुभव करें कि वायु फेफड़ों के ऊपरी खण्डों को भर रही है। कन्धों और हँसली को थोड़ा ऊपर की ओर उठना चाहिए। इसके साथ एक पूरक पूर्ण हुआ।
सम्पूर्ण प्रक्रिया एक सतत् गति के रूप में होनी चाहिए। श्वास का हर चरण दूसरे चरण में इस प्रकार मिल जाए कि दोनों के बीच कोई अन्तराल अनुभव न हो।
श्वसन बिना किसी झटके या अवांछित तनाव के, सागर की लहर के चढ़ाव-उतार के समान होना चाहिए।
अब रेचक आरम्भ करें।
पहले कन्धों और हँसली को शिथिल करें।
इसके बाद वक्ष को नीचे और अन्दर की ओर ले जाते हुए शिथिल हो जाने दें।
अब मध्यपट को वक्ष गुहा के अन्दर वापस लौट जाने दें।
उदर की दीवार को नीचे मेरुदण्ड की ओर यथासम्भव अधिक-से-अधिक खींचते हुए और साथ-ही पसलियों को सहज, समन्वित ढंग से संकुचित करते हुए फेफड़ों को खाली करने का प्रयास करें।
यह यौगिक श्वसन का एक पूरा चक्र हुआ।
प्रत्येक पूरक तथा रेचक के बाद श्वास को एक या दो सैकण्ड के लिए रोकें। अभ्यास करते समय फेफड़ों के प्रसार और संकुचन का तथा उनके प्रभाव का अनुभव करें।
यौगिक श्वसन के 10 चक्रों का अभ्यास करें।
धीरे-धीरे अभ्यास की अवधि को 10 मिनट तक बढ़ायें।
किसी भी प्रकार फेफड़ों पर दबाव न डालें।
एक बार जब शवासन में इसमें दक्षता प्राप्त हो जाये, तब बैठ कर इसका अभ्यास करें।

यौगिक श्वसन के घटकों की सजगता

वज्रासन, सिद्धासन या पालथी मार कर किसी भी आरामदायक आसन में बैठें।

पूर्ण यौगिक श्वसन का अभ्यास आरम्भ करें।
हाथों को धीरे-से उदर पर रखें और पूरक करें।
अनुभव करें कि उदर सामने की ओर फैल रहा है।
रेचक करें और शिथिल हो जायें।
इसे पाँच बार दुहरायें।
इसके बाद हाथों को नीचे की पसलियों के सामने इस प्रकार रखें कि अँगुलियों के छोर उनसे सटे हुए हों।
उदर से पूरक करें और श्वसन जारी रखते हुए श्वास को वक्ष तक ले जायें।
पूरक और रेचक करते हुए अँगुलियों के छोरों के बीच की दूरी के प्रति सजग रहें।
इसे पाँच बार दुहरायें।
अब हाथों को पसलियों के पीछे रखें और पूरक करें।
पीछे से वक्ष गुहा के प्रसार के प्रति सजग हो जायें।
रेचक करें और शिथिल हो जायें।
इसे पाँच बार दुहरायें।
अन्त में हाथों को हँसली के ठीक नीचे रखें और पूरक करें। पूरक करते समय हँसली और वक्ष के ऊपरी हिस्से को धीरे से ऊपर उठता हुआ अनुभव करें।
रेचक करें और शिथिल हो जायें।
इसे पाँच बार दुहरायें।

प्रारम्भिक श्वसन अभ्यास

प्राणायाम के तीनों तत्त्वों – पूरक, रेचक एवं कुम्भक – में से प्रत्येक को विविध प्रकार से नियन्त्रित किया जा सकता है। श्वास के प्रत्येक तत्त्व पर नियन्त्रण को बढ़ाते जाने पर प्राणायाम के अभ्यासों से अधिक लाभ उठाया जा सकता है। श्वास को नियन्त्रित करने का अर्थ है –

- पूरक, रेचक और कुम्भक की अवधि में परिवर्तन
- पूरक एवं रेचक की गहराई में परिवर्तन
- पूरक एवं रेचक के बल में परिवर्तन

अवधि का सम्बन्ध सम्पूर्ण पूरक, रेचक और कुम्भक में लगने वाले समय से होता है। गहराई का सम्बन्ध पूरक एवं रेचक के दौरान फेफड़ों के प्रसार या संकुचन की सीमा से होता है। बल का सम्बन्ध पूरक, रेचक या कुम्भक करने के लिए पेशियों द्वारा किये जाने वाले प्रयास से होता है।

जब प्राणायाम का अभ्यास उन्नत होने लगता है तब श्वसन एवं कुम्भक की अवधि में वृद्धि करने की आवश्यकता होती है। इसे तनाव या बीच-बीच में श्वास लेने की आवश्यकता के बिना ही आराम से आगे बढ़ाया जाना चाहिए। अत: अवधि के साथ ही ऑक्सीजन की मांग को पूरा करने के लिए श्वास की गहराई में भी वृद्धि की जानी चाहिए। इसके साथ ही ऑक्सीजन के उपभोग और शरीर के तनाव को कम करने के लिए श्वसन में लगने वाले बल को भी कम करना चाहिए। श्वसन की क्षमता बढ़ाने के लिए नीचे कुछ विधियाँ बतायी जा रही हैं।

गहरे श्वसन का अभ्यास

इसका अभ्यास प्रतिदिन सुबह की ताज़ी हवा में कुछ मिनटों के लिए करना चाहिए। प्रत्येक गहरी श्वास के अन्तर्गत नाक के द्वारा एक पूर्ण पूरक और

एक लम्बा स्थिर रेचक होता है। पूरी क्षमता के साथ श्वास धीरे-धीरे ली और छोड़ी जानी चाहिए। पूरक के दौरान निम्नलिखित निर्देशों का पालन करें –

- खड़े होकर हाथों को नितम्बों पर रखें। केहुनियाँ दोनों बगल में बाहर की ओर निकली हुई हों, पीछे की ओर नहीं।
- वक्ष को ऊपर की ओर खींचें। कूल्हों को हाथों से नीचे की ओर दबायें। इससे खाली जगह बन जायेगी, जिसके कारण हवा स्वयं ही फेफड़ों की ओर जायेगी।
- नासिकाओं को खुला रखें, लेकिन इनका प्रयोग चूषक पम्प की तरह नहीं करें। श्वास लेने का मार्ग नासिका होनी चाहिए।
- पूरक करते समय कोई आवाज़ नहीं होनी चाहिए। सही श्वसन ध्वनिरहित होता है।
- पीठ को धनुषाकार स्थिति में लाए बिना वक्ष को ऊपर की ओर खींचें। कन्धों को ऊपर उठायें, लेकिन उन्हें पीछे की ओर नहीं ठेलें। सिर को सीधा रखें।
- उदर को शिथिल रहने दें; इसे अन्दर की ओर नहीं खींचें।

रेचक करते समय निम्नलिखित बातों का अनुपालन करें –

- पसलियों तथा धड़ के ऊपरी भाग को क्रमश: नीचे जाने दें। उदर को धीरे-धीरे ऊपर की ओर खींचें।
- सिर, गर्दन और धड़ को एक सीध में रखें। न पीठ को पीछे मोड़ें और न ही सामने की ओर झुकें।
- वक्ष को संकुचित करें और नाक से बिना कोई आवाज़ निकाले धीरे-धीरे रेचक करें। श्वसन पेशियों को शिथिल करने पर नि:श्वास होता है। वायु के निकल जाने पर वक्ष स्वयं ही नीचे चला जाता है।
- पूरक के बाद कुम्भक नहीं करें। पूरक के पूर्ण होते ही रेचक आरम्भ कर दें।
- जब तीन गहरी श्वासों का एक चक्र पूरा हो जाये तब कुछ सामान्य श्वास लें और उसके बाद दूसरा चक्र शुरू करें। विराम के दौरान आराम की स्थिति में स्थिर खड़े रहें और हाथों को नितम्बों पर ही रखें।
- पहले सप्ताह में पाँच चक्र करें और हर सप्ताह में एक चक्र बढ़ाते जायें।

इस विधि को करने की सलाह स्वामी शिवानन्द जी ने दी थी–

> “सीधे खड़े होकर, हाथों को ऊपर उठा कर, छाती चौड़ी कर स्वयं को पैरों की अँगुलियों पर धीरे-धीरे ऊपर उठाते हुए निरंतर गहरी श्वास

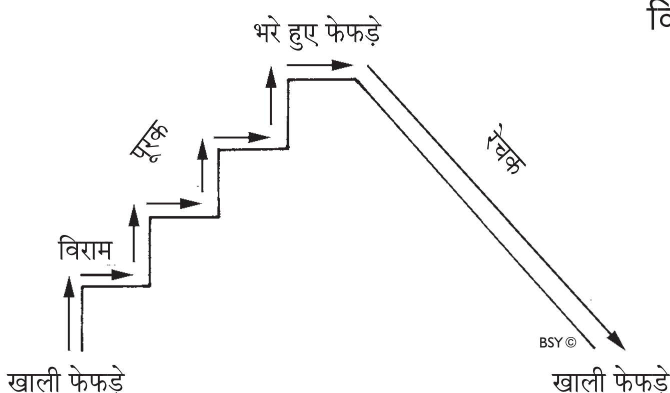
अन्दर लें। अपनी छाती को शुद्ध वायु से भर लें। उसके बाद धीरे-धीरे श्वास छोड़ें और अपनी एड़ियों तथा हाथों को नीचे ले आयें।"

विलोम प्राणायाम

विलोम प्राणायाम में श्वसन करते समय पूरक और/या रेचक बाधित होता रहता है। सामान्य श्वसन में पूरक और रेचक स्थिरतापूर्वक समान गति से होता है। यहाँ विलोम श्वास के स्वाभाविक प्रवाह में बाधा का संकेत करता है। यह अभ्यास श्वास के प्रवाह पर नियन्त्रण का विकास करता है और यह श्वास की अवधि के विस्तार की एक आसान विधि है। इसका प्रयोग नाड़ीशोधन एवं भस्त्रिका की तैयारी के लिए किया जा सकता है।

विधि 1 – बाधित पूरक

शवासन में लेट जायें या किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें।
सम्पूर्ण शरीर को शिथिल कर दें और कुछ क्षणों तक श्वास की सजगता का अभ्यास करें।
प्रत्येक पूरक एवं रेचक की सजगता के साथ धीमे, गहरे श्वसन का अभ्यास करें। श्वास को स्थिर हो जाने दें।
छोटे विरामों की शृंखला के साथ पूरक आरम्भ करें – पूरक-विराम, पूरक-विराम, पूरक-विराम। यह प्रक्रिया तब तक जारी रखें जब तक फेफड़े पूरी तरह भर नहीं जायें।
मध्यपट और उदर हर विराम के बाद दृढ़ रहने चाहिए।



कल्पना करें कि आप सीढ़ियों पर चढ़ते हुए श्वसन कर रहे हैं। यह मानस-दर्शन आपके अभ्यास को सरल बना देगा।

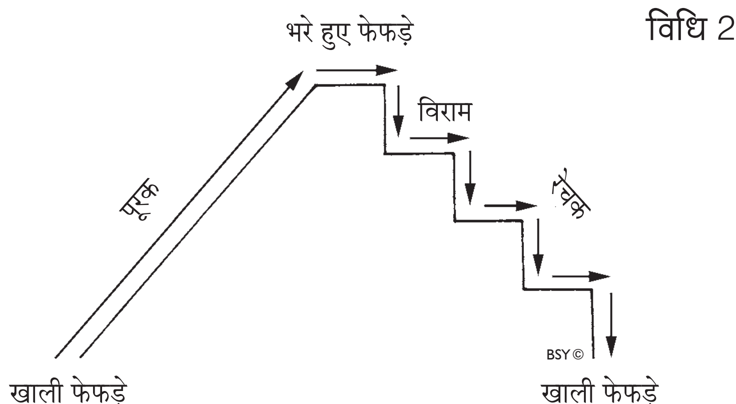
बाधित पूरक के पूरा होने पर धीरे-धीरे स्थिरतापूर्वक तब तक रेचक करें जब तक फेफड़े खाली न हो जायें। जोर न लगाएँ।

ग्यारह चक्र का अभ्यास करें, उसके बाद शिथिल होकर सामान्य श्वसन करें।

विधि 2 – बाधित रेचक

विधि 1 के समान ही अभ्यास करें, केवल पूरक अबाधित और पूरा होगा। रेचक को विरामों की शृंखला द्वारा तब तक बाधित किया जाता है जब तक फेफड़े पूरी तरह खाली न हो जायें।

विरामों की संख्या व्यक्ति की क्षमता पर निर्भर रहती है।

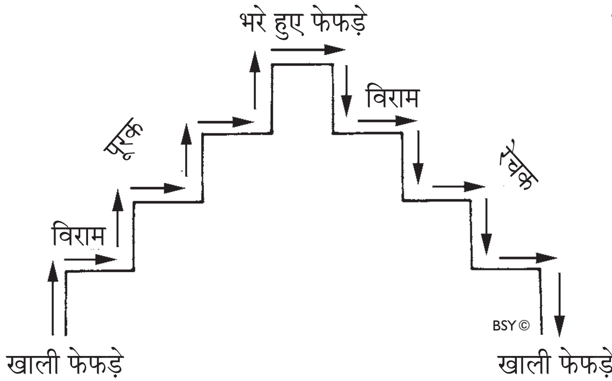


ग्यारह चक्र का अभ्यास करें, उसके बाद शिथिल होकर सामान्य श्वसन करें।

विधि 3 – बाधित पूरक तथा रेचक

यह बाधित पूरक तथा बाधित रेचक का संयुक्त अभ्यास है।

जब तक फेफड़े पूरी तरह वायु से भर न जायें तब तक विरामों की शृंखला के साथ पूरक करें। उसके बाद जब तक फेफड़े पूरी तरह खाली न हो जायें तब तक विरामों की शृंखला के साथ रेचक करें।



उदर को नियन्त्रित करने का प्रयास करें, लेकिन बल प्रयोग नहीं करें।

प्रत्येक चक्र के बाद एक बार सामान्य श्वसन करें।

ग्यारह चक्र अभ्यास करें।

अभ्यास टिप्पणी – तीनों विधियों में विरामों की संख्या में अन्तर हो सकता है, जो सामान्यत: तीन से पाँच के बीच होती है। विरामों की संख्या को बढ़ा कर श्वास पर अधिक नियन्त्रण प्राप्त किया जा सकता है। श्वास की प्रबलता को भी बढ़ाया जा सकता है। छोटी प्रबल श्वास फेफड़ों को भस्त्रिका एवं कपालभाति के लिए तैयार करती है।

लयबद्ध श्वसन

श्वसन की लय कभी एक समान नहीं रहती, बल्कि शरीर और मन की मांगों के अनुरूप परिवर्तित होती रहती है। विभिन्न गतिविधियों, जैसे – सोने, खाने, चलने, साइकिल चलाने या पढ़ने के दौरान श्वास की लय और अवधि में परिवर्तन होते रहते हैं। विभिन्न प्रकार की मानसिक स्थितियाँ भी श्वसन के स्वरूप में परिलक्षित होती हैं। दिनभर की श्वसन लय प्राय: व्यक्ति की जानकारी के बिना ही बदलती रहती है। लयबद्ध श्वसन शान्तिप्रद प्रभाव उत्पन्न करता है और इसका उपयोग तनाव तथा विक्षोभपूर्ण समय में मन को स्थिर करने के लिए किया जा सकता है। लयबद्ध श्वसन होने पर शरीर एवं मन, दोनों की ही सकारात्मक प्रतिक्रिया होती है। निम्नलिखित विधियाँ श्वसन की लय पर चेतन नियन्त्रण प्रदान करती हैं। ये सभी समान अवधि के पूरक तथा रेचक (1:1 के अनुपात) पर आधारित हैं।

विधि 1 – उदर श्वसन के साथ

सिर और मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें या शवासन में लेट जायें।

आँखें बन्द कर लें और पूरे शरीर को शिथिल कर लें।

कुछ क्षणों तक शरीर की सजगता का अभ्यास करें।

स्वाभाविक श्वास के प्रति सजग हो जायें। इस बात के प्रति सजग रहें कि आप श्वास ले रहे हैं और छोड़ रहे हैं। श्वास को किसी भी प्रकार बदलने या नियन्त्रित करने का प्रयास नहीं करें।

स्वाभाविक श्वसन के स्वरूप का अवलोकन करें और देखें कि एक श्वास अगली श्वास से छोटी या बड़ी तो नहीं है। हो सकता है कि पूरक रेचक से बड़ा हो। प्रत्येक श्वास के प्रति सजगता को बढ़ायें।

इसके प्रति सजग हों कि स्वाभाविक श्वसन का स्वरूप कितना लयबद्ध है या कितना लयहीन है। इस बोध के साथ आप श्वास का एक नियमित स्वरूप कायम कर सकेंगे।

गहरा उदर श्वसन करें। चार की गिनती तक पूरक करें और चार की ही गिनती तक रेचक करें। आप पूरक और रेचक के साथ मानसिक रूप से ॐ मंत्र की चार-चार गिनती कर सकते हैं। गले को शिथिल करें ताकि श्वास सुगमतापूर्वक श्वसन मार्ग से प्रवाहित हो सके।

श्वास निर्बाध, समान और नियमित हो।

अभ्यास को पाँच मिनट तक जारी रखें।

अब पुनः सामान्य श्वसन करें। अपने शरीर और वातावरण के प्रति सजग हो जायें और धीरे-से आँखें खोल दें।

विधि 2 – यौगिक श्वसन के साथ

सिर और मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें या शवासन में लेट जायें।

कुछ क्षणों तक शरीर की सजगता का अभ्यास करें ताकि श्वास स्थिर हो जाये।

स्वाभाविक श्वास के प्रवाह के प्रति सजग हो जायें।

यौगिक श्वसन आरम्भ करें। पहले उदर से पूरक करें, उसके बाद वक्ष को फैलाते हुए फेफड़ों को हवा से भर लें।

विपरीत क्रम में रेचक करें।
श्वसन बिना तनाव के आरामपूर्वक होना चाहिए।
एक पूरक में लगने वाले समय को गिनें।
उसके बाद उतने ही समय में रेचक करें। आप मानसिक रूप से ॐ मंत्र के उच्चारण के साथ भी यह अभ्यास कर सकते हैं।
प्रत्येक श्वास की अवधि के प्रति सजग रहें।
हवा को गले से सुगमतापूर्वक प्रवाहित होने दें।
अतिरिक्त बल का प्रयोग नहीं करें।
पाँच मिनट तक अभ्यास जारी रखें।
अभ्यास पूरा हो जाने पर पुनः सामान्य श्वसन करें। अपने शरीर और वातावरण के प्रति सजग हो जायें और धीरे-से अपनी आँखें खोल दें।

विधि 3 – श्वास एवं हृदय की गति को समकालिक बनाना

किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें या शवासन में लेट जायें।
कुछ क्षणों तक शरीर की सजगता का अभ्यास करें ताकि शरीर तथा श्वास स्थिर हो जाये।
श्वास एवं हृदय की धड़कन के प्रति सजग हो जायें और कुछ क्षणों तक इन दोनों लयों का अवलोकन करें।
ध्यान को हृदय-स्पन्दन पर केन्द्रित करें। यदि हृदय-स्पन्दन को अनुभव कर पाना कठिन हो तो अपनी कलाई से नाड़ी के स्पन्दन का अनुभव करें।
यौगिक श्वसन आरम्भ करें। प्रत्येक पूरक एवं रेचक के लिए चार हृदय-स्पन्दनों की गिनती करें। 4:1 का यह अनुपात हृदय-स्पन्दन और श्वास का सामान्य अनुपात है।
यदि आप संवेदनशील हैं, तो पूरक एवं रेचक के बीच हृदय गति में होने वाले परिवर्तन को पहचान पायेंगे; रेचक के दौरान हृदय गति धीमी हो जाती है। लयबद्ध श्वसन से उत्पन्न विश्रान्ति के कारण हृदय की गति का सामान्य रूप से मंद होना भी आप अनुभव कर सकते हैं। हृदय की गति धीमी होने पर श्वास की गति और अधिक धीमी हो जाती है।
पाँच मिनट तक इस सम्बन्ध का अवलोकन करें।
अभ्यास पूरा होने पर आँखें खोल दें और आसन से उठ जायें।

विधि 4 – श्वास की अवधि को बढ़ाना (1:1 अनुपात)

किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें या शवासन में लेट जायें।
आसन में स्थिरता के लिए कुछ क्षणों तक कायास्थैर्यम् का अभ्यास करें।
श्वास को नियमित एवं समान हो जाने दें।
चार की गिनती तक पूरक और चार की ही गिनती तक रेचक करते हुए उदर श्वसन करें।
कुछ देर तक यह प्रक्रिया जारी रखें।
अब गिनती को बढ़ा दें, पाँच की गिनती तक पूरक और पाँच की ही गिनती तक रेचक करें।
उदर श्वसन जारी रखें।
जब यह अनुपात आरामदायक हो जाये, तब पूरक की अवधि को छः की गिनती तक और रेचक की अवधि को भी छः की गिनती तक बढ़ा दें। उदर से ही श्वसन करना जारी रखें।
जैसे-जैसे एक-एक अनुपात स्थिर होता जाये, पूरक एवं रेचक की गिनती को एक-एक बढ़ाते जायें।
किसी भी प्रकार का तनाव उत्पन्न नहीं होना चाहिए।
अनुभव करें कि उदर श्वसन धीमा, गहरा और हलका हो रहा है।
यदि आप 8:8 के अनुपात तक नहीं पहुँच पाते हैं तो उतनी ही गिनती तक करें जितना आप आराम से कर सकते हैं।
श्वास की सूक्ष्म प्रकृति के प्रति सजग रहें।
यौगिक श्वसन को 6:6 के अनुपात से आरम्भ करें।
इस अनुपात को स्थिर हो जाने दें।
पूरक एवं रेचक को एक की गिनती से बढ़ायें।
गले को संकुचित नहीं करें।
ज्यों-ज्यों हर बढ़ी हुई गिनती स्थिर होती जाती है, अनुपात को एक-एक से बढ़ाते जायें, जब तक कि वह 10:10 तक न पहुँच जाये। यदि यह अनुपात आपकी पहुँच से बाहर हो तो एक आरामदायक अनुपात को ही जारी रखें।
जब पूरक एवं रेचक लम्बा हो जाये, तब अनुभव करें कि श्वास हल्की और गहरी हो रही है। नासिकाओं में श्वास के हलकेपन का अनुभव करें।
कुछ क्षणों तक यह प्रक्रिया जारी रखें।

यौगिक श्वसन बन्द कर दें और सामान्य श्वसन करें।
सजगता को शरीर पर, बाहरी ध्वनियों पर ले आयें, और अपनी आँखों को खोल लें।

विस्तारित रेचक

पूरक की गति में क्रियाशीलता रहती है, जबकि रेचक की गति में निष्क्रियता होती है, जोकि शिथिलता और विश्राम की अवस्था है। रेचक के दौरान हृदय की धड़कन पूरक की अपेक्षा धीमी रहती है। रेचक को धीरे-धीरे लम्बा करते जाने से शिथिलता की स्थिति उत्पन्न होती है, इससे शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर अनेक लाभ होते हैं। रेचक को बढ़ाते जाने पर उदर की पेशियाँ संकुचित होती हैं, जिसका शक्तिवर्धक प्रभाव होता है। रेचक के बढ़ने से दर्द भी कम होता है, जैसे, रोने और सिसकने पर रेचक थोड़ा बढ़ जाता है। यह शारीरिक तथा मानसिक दर्द को कम करने का प्राकृतिक ढंग है। निम्नलिखित अभ्यास तनाव के क्षणों के साथ-साथ अधिक अनुपातों के साथ किये जाने वाले प्राणायाम के शास्त्रीय अभ्यासों में भी मदद करेगा।

रेचक का विस्तार (1:2 का अनुपात)

सिर और मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें या शवासन में लेट जायें और सम्पूर्ण शरीर को शिथिल कर लें।
स्वाभाविक श्वास के प्रति सजग हो जायें।
पूरक एवं रेचक के प्रति सजग रहें।
कुछ क्षणों के लिए अभ्यास इसी प्रकार जारी रखें।
उदर श्वसन आरम्भ करें। अनुभव करें कि श्वास लयबद्ध हो रही है।
मानसिक रूप से 4 की गिनती तक पूरक एवं रेचक करें।
जब यह स्थिर और समान लययुक्त हो जाये तब पूरक में 4 और रेचक में 5 तक गिनती करें।
रेचक की गिनती को 6, 7 और 8 तक ले जायें।
पाँच चक्रों का अभ्यास 4:8 के अनुपात में करें।
इसी प्रक्रिया को यौगिक श्वसन के साथ करें।

अभ्यास टिप्पणी – प्राणायाम की अन्य विधियों के लिए भी 1:2 का अनुपात पर्याप्त है।

कुम्भक

कुम्भक तीन प्रकार के होते हैं – अन्तरंग कुम्भक, बहिरंग कुम्भक और केवल कुम्भक। केवल कुम्भक तब होता है जब श्वास स्वत: रुक जाती है और कोई प्रयास नहीं किया जाता है।

सामान्य श्वसन में भी कुम्भक होता है, लेकिन केवल कुछ क्षणांश के लिए और वह भी सजगता या नियन्त्रण के साथ नहीं। इस खण्ड में कुम्भक की सजगता का विकास करने के लिए विभिन्न प्रकार के प्राथमिक अभ्यास दिये गये हैं ताकि प्राणायाम की तकनीकों में आवश्यकता पड़ने पर अभ्यासी इनसे परिचित रहें। अगले चरण में प्रवेश करने के पहले पूर्व के प्रत्येक चरण में दक्षता प्राप्त होनी चाहिए।

सुझाव एवं सावधानी – कुम्भक के अभ्यास का प्रयास करने के पूर्व योग्य मार्गदर्शन प्राप्त होना चाहिए। इन विधियों के प्रत्येक चरण में धीरे-धीरे, क्रमबद्धता के साथ निपुणता प्राप्त करते हुए आराम से आगे बढ़ना चाहिए। उच्च रक्त चाप, हृदय रोगों, चक्कर आने की बीमारी, मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों और मानसिक रोगों से पीड़ित व्यक्तियों को कुम्भक का अभ्यास नहीं करना चाहिए। अन्तरंग कुम्भक आरम्भ करने के पूर्व पूरक, रेचक एवं लयबद्ध श्वसन में निपुणता प्राप्त हो जानी चाहिए। उसी प्रकार बहिरंग कुम्भक आरम्भ करने के पूर्व अन्तरंग कुम्भक में निपुणता प्राप्त हो जानी चाहिए। यदि शरीर या मन किसी भी प्रकार तनावयुक्त हो जाता हो, तो इसका अर्थ यह है कि स्वाभाविक क्षमता की सीमा का उल्लंघन किया गया है। ऐसी स्थिति में अभ्यास को रोक कर उससे पहले के चरण में लौट जाना चाहिए। धीरे-धीरे अभ्यास करने पर आधार ठोस होगा।

विधि 1 – अन्तरंग कुम्भक (1:1:1)

किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें या शवासन में लेट जायें।

सम्पूर्ण शरीर को शिथिल करें।

कुछ क्षणों तक यौगिक श्वसन का अभ्यास करें।

चार की गिनती तक पूरक एवं रेचक आरम्भ करें।

कुछ क्षणों तक यह अभ्यास जारी रखें। शरीर या मन में कोई तनाव नहीं होना चाहिए।

अब अन्तरंग कुम्भक आरम्भ करें।

चार की गिनती तक पूरक करें, श्वास को 2 की गिनती तक अन्दर ही रोक कर रखें, उसके बाद 4 की गिनती तक रेचक करें।

यदि आप किसी भी प्रकार का तनाव अनुभव कर रहे हों तो सामान्य श्वसन आरम्भ कर दें।

ग्यारह चक्रों तक यह अभ्यास जारी रखें।

जब यह अभ्यास आराम से होने लगे तब अन्तरंग कुम्भक की गिनती को 3 और फिर 4 तक बढ़ायें। यह 1:1:1 का अनुपात है।

ग्यारह चक्र अभ्यास करें और धीरे-धीरे उसे 21 चक्रों तक बढ़ायें।

यदि श्वसन लयबद्ध हो और शरीर तथा मन शिथिल हों तो अभ्यास सही है।

विधि 2 – अन्तरंग कुम्भक एवं रेचक का विस्तार (1:1:2 तथा 1:2:2)

चार के अनुपात (4:4:4) का अभ्यास तब तक करें जब तक यह अनुपात स्थिर न हो जाये।

धीरे-धीरे रेचक की गिनती को 8 तक बढ़ायें।

यह 1:1:2 का अनुपात हुआ।

यदि श्वास फूलने लगे तो प्रत्येक चक्र के बीच सामान्य श्वसन कर लें।

जिस क्षण आपको तनाव का अनुभव हो, उसी क्षण 4:4:4 के अनुपात पर लौट आयें।

जब 4:4:8 का अनुपात आराम से होने लगे, तब बीच-बीच में सामान्य श्वसन किये बिना अभ्यास को जारी रखें।

ग्यारह चक्र अभ्यास करें और धीरे-धीरे उसे 21 चक्रों तक बढ़ायें।

जब 4:4:8 का अनुपात आराम से होने लगे, तब अन्तरंग कुम्भक को धीरे-धीरे 8 की गिनती तक बढ़ाया जा सकता है। उसके बाद 4:8:8 के अनुपात के साथ अभ्यास करें।

समवृत्ति प्राणायाम

समवृत्ति का अर्थ है समान गति अथवा क्रिया। समवृत्ति प्राणायाम में श्वसन को चार समान भागों में विभक्त कर दिया जाता है। पूरक, अन्तरंग कुम्भक, रेचक और बहिरंग कुम्भक समान अवधि के होते हैं तथा उनका अनुपात

1:1:1:1 होता है। इसका अभ्यास श्वास का एकरूप और लयबद्ध प्रवाह उत्पन्न करता है। यद्यपि बहिरंग कुम्भक में दक्षता प्राप्त करना कठिन होता है। अभ्यासी को अभ्यास के दौरान मिलने वाले आन्तरिक संकेतों के प्रति सजग रहना चाहिए और अगले चक्र में प्रवेश करने के पूर्व शरीर या मन में उत्पन्न हो रहे किसी भी तनाव को दूर कर लेना चाहिए। समवृत्ति प्राणायाम में निपुण होने पर शास्त्रीय प्राणायाम के अभ्यासों को किया जा सकता है।

विधि 1

किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें और शरीर एवं मन को शिथिल कर लें।

स्वाभाविक श्वास एवं इसकी सहज लय के प्रति सजग हो जायें।

यौगिक श्वसन आरम्भ करें।

पूरक में 4, अन्तरंग कुम्भक में 4 और रेचक में 4 की गिनती करें। कुछ क्षणों तक अभ्यास इसी प्रकार जारी रखें।

अब रेचक के बाद 4 की गिनती तक श्वास को बाहर रोकें।

प्रत्येक चक्र के बीच कई बार सामान्य श्वसन करें।

जब बहिरंग कुम्भक के बाद श्वास फूलने या हाँफने की स्थिति न आये और पूरक की आवश्यकता का अनुभव न हो तो चक्रों के बीच सामान्य श्वसन करना बन्द कर दें।

ग्यारह चक्र अभ्यास करें।

विधि 2

अभ्यास को पुन: 1:1:1:1 के अनुपात में करें।

मानसिक रूप से एक वर्ग की कल्पना करें। अनुभव करें कि पूरक उस वर्ग की बायीं ओर से अवरोहण कर रहा है।

अन्तरंग कुम्भक में सजगता वर्ग के शीर्ष पर बायें से दायें चली जाती है।

रेचक वर्ग की दाहिनी ओर से होता है।

बहिरंग कुम्भक में सजगता को वर्ग के आधार में दाहिने से बायें ले जायें।

यह एक चक्र हुआ।

ग्यारह चक्र अभ्यास करें और धीरे-धीरे उसे 21 चक्रों तक बढ़ायें।

जब बिना थकान के 21 चक्र पूरे होने लगें, तब एक-एक बढ़ाते हुए गिनती को 10:10:10:10 के अनुपात तक ले जायें।

अभ्यास टिप्पणी – ऊपर वर्णित तकनीकों में किसी प्रकार का तनाव नहीं होना चाहिए। यदि अभ्यासी की श्वास फूलने लगे, उसे चक्कर आने लगे या वह बेहोश होने लगे तब उसे अभ्यास बन्द कर देना चाहिए और किसी योग शिक्षक से परामर्श लेना चाहिए। किसी भी चरण में श्वास को बहुत अधिक नहीं बढ़ाया जाना चाहिए। किसी चक्र के दौरान या अन्त में अतिरिक्त श्वास लेने की आवश्यकता यह संकेत देती है कि अभ्यासी अपनी क्षमता की सीमा को लांघ रहा है और उसे तुरन्त उस चरण में लौट जाना चाहिए, जहाँ वह आराम का अनुभव करता हो। श्वसन की क्षमता अभ्यास के साथ धीरे-धीरे बढ़ती है। फेफड़ों और पेशियों को प्रत्येक चरण के अनुकूल बनने का समय देने के लिए अनुपात में साप्ताहिक या मासिक वृद्धि की जानी चाहिए। अभ्यासी को अगले चरण में तब तक नहीं जाना चाहिए, जब तक वह वर्तमान चरण का अभ्यास आराम से न करने लगे।

सूक्ष्म श्वास की सजगता

योग एक विज्ञान है और प्राणायाम इसका एक अनुप्रयोग है। श्वसन की विधियाँ विशुद्ध रूप से यांत्रिक प्रक्रिया के रूप में शरीर, मन और आत्मा पर एक उपयुक्त प्रभाव डालती हैं। यद्यपि यह पाया गया है कि यदि इन विधियों के सूक्ष्म प्रभावों के प्रति सजगता और संवेदनशीलता हो, और साथ-ही शरीर, मन एवं ऊर्जा के पारस्परिक सम्बन्धों की गहरी समझ हो, तो इनके प्रभाव को बहुत अधिक बढ़ाया जा सकता है। बिना सजगता के भी इन विधियों के प्रयोग से अच्छे परिणाम प्राप्त होंगे, लेकिन सजगता के साथ वही प्रक्रिया अधिक सफल हो जायेगी और आन्तरिक ज्ञान प्रस्फुटित होने लगेगा।

स्थूल से सूक्ष्म स्तरों तक श्वास के प्रति संवेदनशीलता के विकास के द्वारा जीवन-चक्रों के घनिष्ठ सम्बन्धों के रहस्य समझ में आने लगते हैं। जब यह ज्ञान प्राप्त होता है तब साधक सहज ही आत्म-प्रवीण हो जाता है। हम खाते हैं, काम करते हैं, खेलते हैं, क्रोध और ईर्ष्या करते हैं, प्रसन्न होते हैं, लेकिन बिना इस सजगता के कि हम क्या कर रहे हैं या क्या अनुभव हो रहा है। सजगता का यही अभाव योग साधना में भी चला आता है। अनेक साधक दिये गये समय में अधिक-से-अधिक अभ्यास कर लेते हैं, ताकि वे नाश्ते के समय से पहले उन्हें पूरा कर लें। किन्तु वास्तव में उन्हें क्या उपलब्धि होती है? सजगता कहाँ रहती है?

श्वास के सूक्ष्म स्तरों, स्वर के प्रवाहों और पंच प्राणों के प्रति संवेदनशीलता में वृद्धि के लिए विधियाँ बतायी जा रही हैं, जो निम्नलिखित हैं। इन अभ्यासों का उद्देश्य श्वास, प्राण, शरीर और मन के विभिन्न पक्षों के प्रति अन्तर्दृष्टि जाग्रत करना है, जो सामान्यत: लौकिक सजगता के परे होते हैं। यद्यपि ये प्रारम्भिक विधियाँ मालूम पड़ सकती हैं, लेकिन इनका अभ्यास साधना के किसी भी स्तर पर किया जा सकता है।

स्वर की सजगता

नासिकाओं में श्वास के प्रवाह को ही स्वर कहा जाता है। एक नाक को दबा कर यह मालूम किया जा सकता है कि कौन-सी नासिका से स्वर प्रवाहित हो रहा है, और यह भी कि कौन-सा प्रवाह अधिक प्रबल है। नासिकाओं में श्वास का विस्तृत परीक्षण व्यक्ति की मनोशारीरिक दशा की विशिष्ट जानकारी देगा।

परीक्षण के अन्तर्गत निम्नलिखित पहलू आते हैं –

- नासिकाओं से निकलने वाले श्वास की लम्बाई
- दाहिनी या बायीं नासिका की प्रधानता
- नासिकाओं में श्वास के अन्दर और बाहर प्रवाहित होने की दिशा।

नीचे वर्णित अवलोकन की विधियाँ यह दिखायेंगी कि ये तीनों पक्ष कितने परिवर्तनशील हैं। जब स्वर का लम्बे समय तक अवलोकन किया जाता है तब जानकारियों का एक भण्डार मिल जाता है। इन विधियों का अभ्यास किसी भी समय और किसी भी परिस्थिति में किया जा सकता है। यह सुझाव दिया जाता है कि व्यक्ति विभिन्न क्रियाओं एवं अनुभवों के दौरान, जैसे, बैठे हुए, खाते हुए, चलते हुए, क्रोध, दु:ख, आनन्द, अवसाद, उल्लास, संतोष, तनाव इत्यादि का अनुभव करते हुए स्वर का अवलोकन करे। ऐसी अवस्थाओं में से प्रत्येक के पूर्व, उसके दौरान और उसके बाद श्वास का अवलोकन किया जाना चाहिए। साधक को अपने अवलोकनों को पहले से ही इड़ा/पिंगला प्रणाली, विभिन्न तत्त्वों और पंच प्राणों के विषयों में प्राप्त जानकारी के साथ सम्बद्ध करके देखना चाहिए। यह अपने आप में एक विस्तृत साधना हो सकती है।

विधि 1 – स्वर का अवलोकन

किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें।

नासिकाओं में सामान्य श्वास की सजगता पर ध्यान केन्द्रित करें। हाथ के पृष्ठ भाग को नासिकाओं के सामने रखें। हाथ के पृष्ठ भाग के रोयों पर रेचक के प्रवाह का अनुभव कर यह निर्धारित करने का प्रयास करें कि श्वास कहाँ तक जा रही है।

श्वास का अवलोकन करें और उसकी लम्बाई का निर्धारण करें।

सामान्य श्वास की लम्बाई नासिकाओं से 7 से 12 अंगुल के बीच होती है। भावुकता एवं आवेश की स्थितियों में श्वास की लम्बाई 36 अंगुल

तक हो सकती है। अत्यन्त कठिन शारीरिक श्रम के दौरान इसका विस्तार 100 अंगुल तक हो सकता है।

अगले चरण में यह अवलोकन और अधिक सूक्ष्म हो जाता है। हाथ के पृष्ठ भाग का उपयोग करते हुए यह निर्धारित करने का प्रयास करें कि नासिकाओं से निकली हुई वायु किस दिशा में जा रही है।

यह अवलोकन करें कि क्या श्वास नासिकाओं के बीच से (पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता), ऊपर की ओर (अग्नि तत्त्व की प्रधानता), नीचे की ओर (जल तत्त्व की प्रधानता), बगल से (वायु तत्त्व की प्रधानता) या किसी एक दिशा में नहीं, बल्कि चारों ओर बिखरती हुई (आकाश तत्त्व की प्रधानता) जा रही है।

इस अवस्था में साधक को यह विचार नहीं करना है कि प्रत्येक प्रवाह का महत्त्व क्या है; केवल इसके प्रति सजग हों कि उनका अस्तित्व है।

श्वास के प्रवाह को देखते जायें।

स्वर के विभिन्न प्रवाहों को सावधानी से देखते जायें।

अभ्यास टिप्पणी – नासिकाओं के सामने एक टूटे हुए पंख या सूती धागे को रख कर अधिक सूक्ष्म मापन किया जा सकता है। कुछ देर तक बाहर निकलती हुई श्वास की दिशा का अवलोकन करने से आप पायेंगे कि अलग-अलग समय में श्वास विभिन्न कोणों से निकल रही है, यहाँ तक कि दोनों नासिकाओं से विभिन्न कोणों से निकल रही है। यह बिल्कुल सामान्य घटना है।

विधि 2 – आकाश प्राणायाम

ध्यान के किसी आरामदायक आसन – सिद्धासन, सिद्धयोनि आसन या पद्मासन में बैठ जायें।

कुछ देर कायास्थैर्यम् का अभ्यास करें और उसके बाद तब तक श्वास का अवलोकन करें जब तक यह शान्त और स्थिर न हो जाये।

दृष्टि को नासिकाग्र पर स्थिर करें।

नासिकाओं में श्वास के प्रति सजग हो जायें।

लगभग पाँच मिनट तक श्वास की सजगता के साथ दृष्टि को नासिकाग्र पर ही टिका कर रखें।

अब आँखों को बन्द कर लें और नासिकाओं में श्वास के आने और जाने के प्रति सजग हो जायें।

नासिकाओं के प्रवेश द्वार पर एक महीन झिल्ली की कल्पना करें, जिससे होकर वायु शरीर के अन्दर और बाहर जाती है।
इस झिल्ली से होकर आने-जाने वाली श्वास के प्रति सजगता बनाये रखें।
अब नासिकाओं से परे सजगता का विस्तार करें और पूरक एवं रेचक के कारण नासिकाओं के बाहर श्वास द्वारा वायु में होने वाली विभिन्न गतियों का मानस-दर्शन करें।
अनुभव करें कि रेचक के द्वारा निकाली गयी वायु बाहर की वायु को विस्थापित कर रही है।
पूरक करते समय अनुभव करें कि बाहर की वायु अन्दर की ओर खींची जा रही है।
श्वास को शान्त रखते हुए इस सजगता को कुछ देर तक बनाये रखें।
श्वास को धीरे-धीरे हल्का बनायें। इससे नासा मार्ग में संकुचन या किसी प्रकार का तनाव नहीं होना चाहिए।
हल्के बल प्रयोग के साथ श्वास की अवधि को बढ़ायें। अनुभव करें कि श्वास बिना किसी प्रयास और बिना किसी ध्वनि के शरीर के अन्दर जा रही है और बाहर निकल रही है।
श्वसन इतना हल्का हो जाना चाहिए कि ऐसा प्रतीत हो मानो नासिकाओं के बाहर पूरक या रेचक के दौरान कोई हलचल नहीं हो रही है।
इस समय श्वास पूर्णत: शान्त हो जायेगी। मानसिक स्तर पर आकाश की अनुभूति होगी। ध्वनिरहित श्वसन जारी रखें और अनुभव करें कि मन मौन एवं शान्त हो रहा है।
अभ्यास को समाप्त करने के लिए तैयार हो जायें। धीरे-धीरे पुन: शरीर के प्रति सजग हो जाएँ।
सामान्य श्वसन आरम्भ करें।
धीरे-से आँखों को खोल दें।

स्वर को संतुलित करना

बायीं एवं दायीं नासिका के बीच श्वास के प्रवाह के बार-बार स्वाभाविक परिवर्तन को इड़ा और पिंगला नाड़ियों से सम्बद्ध कर देखें तो पायेंगे कि दोनों नासिकाओं में संतुलित प्रवाह कुछ क्षणों के लिए ही होता है। हालाँकि

संतुलन की इस अवधि को नासिकाओं में श्वास के परिवर्तन के द्वारा बढ़ाया भी जा सकता है, ताकि वे समान रहें। निम्नलिखित विधियाँ इस संतुलन को लाने के लिए श्वास के प्रवाह को प्रभावित करती हैं। इन अभ्यासों का उपयोग आवश्यकतानुसार किसी एक नासिका में – प्राणिक ऊर्जा के लिए (दायीं नासिका) या मानसिक ऊर्जा के लिए (बायीं नासिका) – श्वास के प्रवाह को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है।

शरीर एवं मन की अपनी आत्मनियन्त्रक विधियाँ होती हैं। ऐसा नहीं मानना चाहिए कि यदि व्यक्ति पूरे दिन मेज-कुर्सी पर बैठ कर काम करता है तो उस दौरान बायीं नासिका की प्रधानता रहेगी। कभी-कभी लोग मानसिक विक्षोभ की अवस्था (बायीं नासिका) में उलझ जाते हैं या कभी स्पर्धा और आक्रोश (दायीं नासिका) में। ऐसे क्षणों में इन विधियों का उपयोग कर स्वर की प्रधानता में परिवर्तन और ऊर्जा का दिशान्तरण किया जा सकता है। ऐसी विधियों का उपयोग आध्यात्मिक अभ्यास के दौरान सुषुम्ना में संतुलित प्रवाह कायम रखने के लिए किया जाता है। चन्द्रमा की अवस्था के अनुसार सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय बायीं या दायीं नासिका की प्रधानता हो जाती है। उस समय स्वर की क्रिया तीव्र हो जाती है, इसलिए यह परामर्श दिया जाता है कि उस दौरान उसमें परिवर्तन का प्रयास नहीं करें।

पादाधिरासन (श्वास संतुलन आसन)

वज्रासन में बैठें। शरीर सीधा और सिर सामने की ओर रहे।

प्रत्येक हाथ को विपरीत काँख में रखें, अँगूठे ऊपर की ओर रहें।

आँखों को बन्द करके नासिकाओं में सामान्य श्वास की सजगता के साथ श्वसन करें।

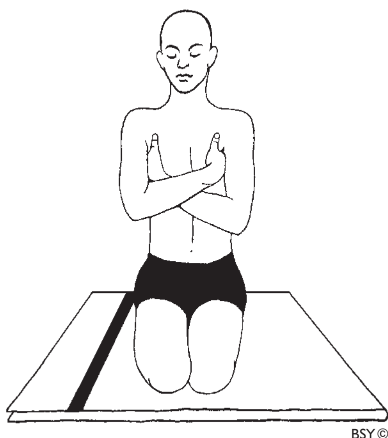
पाँच से दस मिनटों तक यह अभ्यास जारी रखें।

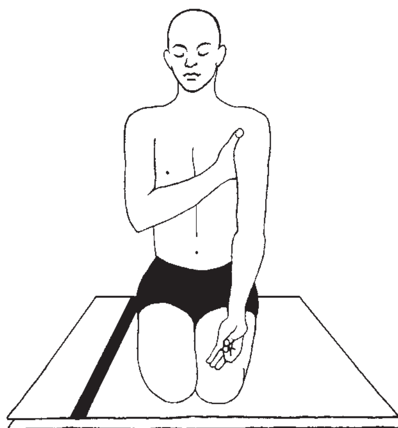
आध्यात्मिक उद्देश्य से इसका अभ्यास अधिक देर तक किया जा सकता है।

प्रकारान्तर – नासिकाओं में प्रवाह का परिवर्तन

पहले की तरह वज्रासन में बैठ जायें।

दायीं नासिका में श्वास के प्रवाह को बढ़ाने के लिए दायें हाथ को बायीं काँख के अन्दर रखें, अँगूठा बाहर और ऊपर की ओर रहे।





प्रकारान्तर

बायें हाथ को चिन् मुद्रा में बायीं जाँघ पर रखें।

इसी प्रकार बायीं नासिका में श्वास के प्रवाह को बढ़ाने के लिए बायें हाथ को दायीं काँख के अन्दर रखें, और अँगूठा बाहर की ओर रहे।

दायें हाथ को चिन् मुद्रा में दायीं जाँघ पर रखें।

आँखों को बन्द कर नासिकाओं में सामान्य श्वास की सजगता के साथ श्वसन करें।

बाँह के भार से काँख में आवश्यक दबाव पड़ने दें; अतिरिक्त दबाव की आवश्यकता नहीं है।

पाँच से दस मिनट तक, या वांछित नासिका में प्रवाह को स्थिर करने के लिए जितनी देर आवश्यक हो, तक यह अभ्यास जारी रखें।

दण्ड क्रिया

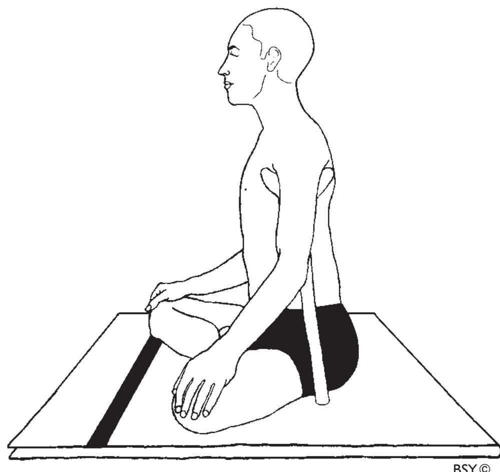
ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें और श्वास को स्थिर हो जाने दें।

बायीं नासिका में श्वास के प्रवाह को बढ़ाने के लिए योग दण्ड को दायीं काँख के नीचे खड़ा कर लीजिए, ताकि यह काँख में हल्का दबाव उत्पन्न करे।

दायीं नासिका में श्वास के प्रवाह को बढ़ाने के लिए योग दण्ड को बायीं काँख के नीचे खड़ा कर लीजिए।

नासिका में प्रवाह को बढ़ाने या घटाने के लिए काँख के अन्दर दबाव को अनुकूलित करें।

अभ्यास टिप्पणी– योग दण्ड पर्याप्त रूप से लम्बा होना चाहिए ताकि वह ध्यान के आसन में बैठने पर काँख के अन्दर आराम से चिपका रहे।



प्रकारान्तर– दो दण्ड

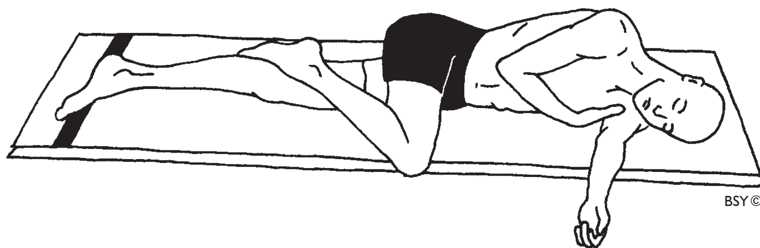
प्रत्येक बाँह के नीचे एक-एक दण्ड को खड़ा करें।

प्रवाह को संतुलित बनाये रखने के लिए आवश्यकतानुसार शरीर को दायें या बायें दण्ड की ओर थोड़ा झुकाते हुए काँख के नीचे के दबाव को परिवर्तित करें।

जितनी देर आवश्यक हो, अभ्यास करें।

अभ्यास टिप्पणी– इस अभ्यास के लिए दो दण्डों की आवश्यकता होती है, या नासिकाओं में श्वास के प्रवाह को अनुकूलित करने के लिए एक

ही दण्ड को दायीं काँख से बायीं काँख में ले जायें। लम्बे समय तक ध्यान या प्राणायाम के अभ्यास में शरीर को सहारा देने के लिए योग दण्ड के प्रयोग से अतिरिक्त लाभ होता है, फिर भी इस पर अधिक निर्भर नहीं रहना चाहिए।



करवट में लेटना

दायीं नासिका में श्वास का प्रवाह बढ़ाने के लिए बायीं करवट लेट जायें। दाहिना घुटना मुड़ा हुआ जमीन पर हो और दायाँ तलवा बायें घुटने से सटा हुआ रहे।
बायीं नासिका में श्वास का प्रवाह बढ़ाने के लिए दायीं करवट लेट जायें।

एकान्तर नासिका श्वसन

ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें।
नासिकाओं में श्वास के प्रवाह के प्रति सजग हो जायें।
दायीं नासिका में श्वास के प्रवाह को बढ़ाने के लिए बायीं नासिका से पूरक करें और दायीं से रेचक। बायीं नासिका में श्वास के प्रवाह को बढ़ाने के लिए दायीं नासिका से पूरक करें और बायीं से रेचक।
पाँच से दस मिनटों तक अभ्यास करें, स्वर में होने वाले परिवर्तन का अवलोकन करें।

ऐक्युपंक्चर बिन्दु

किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें।
हाथ के अँगूठे और तर्जनी के बीच के मांसल भाग में चिकोटी काटते हुए उस स्थान का पता लगायें जहाँ से हल्के दर्द की संवेदना उठती हो।

दायीं नासिका को खोलने के लिए दायीं हथेली में और बायीं नासिका के लिए बायीं हथेली में दबाव डालें।

स्थिर दबाव बनाये रखें या उस बिन्दु पर 5–10 मिनट तक मालिश करते रहें।

अभ्यास टिप्पणी – यह विधि बड़ी आँत से सम्बन्धित ऐक्युपंक्चर के मेरीडियन पर दबाव डालती है, जो उस बिन्दु से होती हुई सम्बद्ध नासिका तक जाती है।

स्वर का मानसिक नियन्त्रण

ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें।

नासिकाओं में श्वास के प्रति सजग हो जायें।

यदि बायीं नासिका में प्रवाह प्रबल हो तो दायीं नासिका में प्रवाहित होने वाली श्वास पर ध्यान एकाग्र करें। इसके लिए मानस-दर्शन की सहायता ली जा सकती है।

कुछ देर बाद दायीं नासिका में श्वास के प्रवाह में वृद्धि हो जायेगी।

बायीं नासिका में भी इसी प्रकार श्वास के प्रवाह को बढ़ाया जा सकता है।

अभ्यास टिप्पणी – इस विधि को शरीर पर मानसिक नियन्त्रण के एक प्रयोग के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रभाव को उत्पन्न करने के लिए आवश्यक एकाग्रता का प्रयोग अन्य विधियों में भी रचनात्मक ढंग से किया जा सकता है।

प्राणमुद्रा प्राणायाम

प्राणमुद्रा प्राणायाम सात चक्रों – मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रार की सजगता का विकास करता और उनके उत्प्रेरण से सम्बद्ध ऊर्जा की सूक्ष्म गति को बढ़ाता है। यह अभ्यास शान्ति मुद्रा के नाम से भी जाना जाता है। यह सम्पूर्ण अस्तित्व के द्वारा सूर्य और स्वर्ग की किरणों को शारीरिक एवं काल्पनिक रूप से ग्रहण करने की विनयपूर्ण मुद्रा है। यदि इच्छा हो तो इसका अभ्यास सूर्योदय के समय सूर्य की ओर मुख करके किया जा सकता है। यद्यपि यह अनावश्यक है, क्योंकि वस्तुत: अभ्यास आन्तरिक प्राणशक्ति को जाग्रत करता है। प्राणमुद्रा व्यक्तिगत शक्ति, आत्मविश्वास और स्वास्थ्य की आन्तरिक आभा का विकास करती

है। यह ध्यान के पूर्व की जाने वाली एक अद्भुत तकनीक है, लेकिन इसका अभ्यास कभी भी किया जा सकता है।

विधि

चरण 1 – ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें। मेरुदण्ड एवं सिर एक सीध में हों।

आँखों को बन्द कर लें और हाथों को भैरवमुद्रा में गोद में रख लें।

उदर की पेशियों को संकुचित करते हुए अधिक-से-अधिक गहराई से रेचक करें ताकि फेफड़ों से अधिकांश वायु निकल जाये।

रेचक करते हुए मूलाधार चक्र की सजगता के साथ मूलबन्ध लगायें।

जितनी देर सुविधापूर्वक सम्भव हो, श्वास रोकें और बन्ध लगाये रखें।

चरण 2 – मूलबन्ध खोल दें और उदर को फैलाते हुए तथा अधिक-से-अधिक वायु को फेफड़ों के अन्दर लेते हुए धीरे-धीरे पूरक करें।

इसके साथ ही हाथों को उठाते हुए नाभि के सामने ले आयें।

हथेलियाँ खुली हों और अन्दर की ओर हों। दोनों हाथों की अँगुलियाँ आमने-सामने हों, लेकिन एक-दूसरे का स्पर्श नहीं करें।

हाथों का ऊपर की ओर संचालन उदर से किये जाने वाले पूरक के साथ समन्वित होना चाहिए।

भुजाओं, हाथों और अँगुलियों को शिथिल करें।

उदर से पूरक करते समय अनुभव करें कि प्राण मेरुदण्ड में मूलाधार से मणिपुर चक्र की ओर खींचा जा रहा है।

चरण 3 – वक्ष को फैलाते हुए पूरक करते रहें।

इसके साथ ही भुजाओं को तब तक उठाते जायें जब तक वे हृदय के सामने न आ जायें।

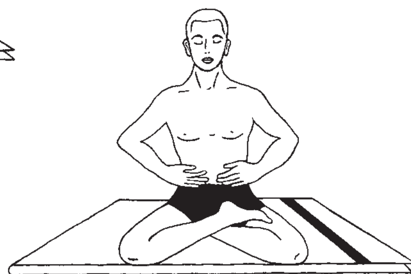
पूरक करते हुए यह अनुभव करें कि प्राणिक ऊर्जा को मणिपुर से अनाहत की ओर खींचा जा रहा है। आपको हृदय क्षेत्र में एक स्पन्दन का अनुभव भी हो सकता है।

चरण 4 – कन्धों को ऊपर उठाते हुए पूरक के साथ थोड़ी और वायु फेफड़ों में भर लें।

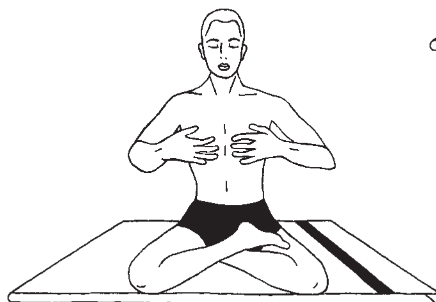
अनुभव करें कि प्राण अनाहत से विशुद्धि चक्र की ओर जा रहे हैं और आज्ञा चक्र में तरंगों के समान फैल रहे हैं।



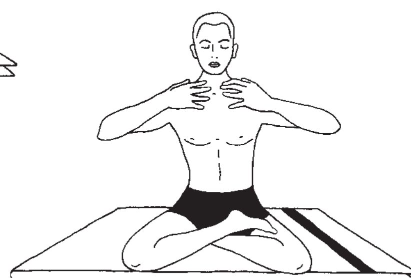
चरण 1



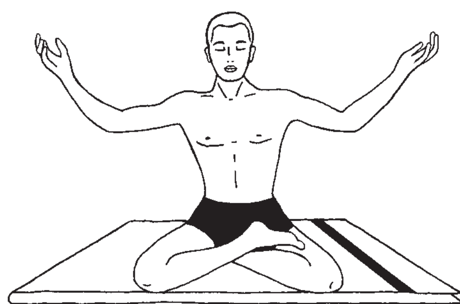
चरण 2



चरण 3



चरण 4



चरण 5

भुजाओं की गति को श्वास के साथ समन्वित करते हुए उन्हें गले के सामने ले आयें।

चरण 5 – श्वास को अन्दर रोक कर भुजाओं को फैलाते हुए हाथों से दोनों तरफ अर्धवृत्त बनायें।

अन्तिम स्थिति में हाथ कानों की सीध में बराबर होने चाहिए और हथेलियाँ ऊपर स्वर्ग की ओर खुली होनी चाहिए।

भुजाओं को फैलाते हुए आज्ञा से सहस्रार तक प्राण की गति का अनुभव करें।

सहस्रार पर ध्यान एकाग्र करें और सिर से एक दिव्य ज्योति के प्रकाश के विकिरण का मानस-दर्शन करें।

अनुभव करें कि आपके सम्पूर्ण अस्तित्व से शान्ति की तरंगें निकल कर अन्य सभी प्राणियों की ओर जा रही हैं।

इस स्थिति को तब तक बनाये रखें जब तक फेफड़े बिना तनाव के आरामपूर्वक रह सकें।

चरण 6 – रेचक करते हुए प्रारम्भिक अवस्था में आ जायें।

सभी चरणों को विपरीत क्रम में दुहरायें।

अनुभव करें कि प्राण क्रमशः चक्रों से होता हुआ रेचक के अन्त में मूलाधार तक पहुँच गया है। मूलबंध लगायें एवं मूलाधार चक्र के प्रति सजग हो जाएँ।

धीरे-धीरे और गहराई से श्वसन करते हुए सम्पूर्ण शरीर को शिथिल करें और इसे 5 से 10 बार दुहरायें।

अभ्यास टिप्पणी– सजगता के प्रवाह में नैरन्तर्य होना चाहिए और उसकी गति श्वास तथा हाथों के मूलाधार से ऊपर उठने और मूलाधार तक नीचे जाने के साथ समन्वित होनी चाहिए। जब अभ्यास में पूर्णता आ जाये तब श्वास का मानस-दर्शन मेरुदण्ड के अन्दर सुषुम्ना में ऊपर और नीचे जाती हुई प्रकाश की एक धारा के रूप में किया जा सकता है।

पंच प्राणों की सजगता

पंच प्राण वे पाँच ऊर्जाएँ हैं जो प्राणिक शरीर का निर्माण करती हैं – प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान। निम्नलिखित अभ्यास सात चक्रों के स्थान पर पाँच प्राणों की सजगता के साथ प्राणमुद्रा प्राणायाम के प्रकारान्तर हैं।

प्रकारान्तर – पंच प्राणों की सजगता के साथ प्राणमुद्रा प्राणायाम

ऊपर के वर्णन के अनुसार चरण 1 का अभ्यास करें। उदर के निचले भाग में अपान की सजगता का विकास करें।

चरण 2 में हाथों को उठाते हुए नाभि क्षेत्र में अपान से समान में परिवर्तन का अनुभव करें।

चरण 3 में हाथों को समान के क्षेत्र से वक्ष क्षेत्र में प्राण क्षेत्र तक उठाते जायें।

चरण 4 में हाथों को वक्ष से गले और सिर तक उठाते हुए उदान के क्षेत्र में प्राण की गति के प्रति सजग हो जायें।

चरण 5 में हाथों और भुजाओं को दोनों ओर फैलाने के साथ सम्पूर्ण शरीर और चारों ओर व्यान के विकिरण के प्रति सजग हो जायें।

दिव्य प्रकाश से आवृत सम्पूर्ण शरीर और उससे विकिरित होते हुए शुद्ध प्रकाश के प्रति सजग रहें, इसके साथ ही सम्पूर्ण शरीर के अन्दर पाँच प्राणों के प्रवाह के प्रति भी सजग रहें।

चरण 6 में रेचक करते हुए भुजाओं की विपरीत क्रिया के साथ सजगता को क्रमश: पंच प्राणों से होते हुए प्रारम्भिक अवस्था तक ले जायें।

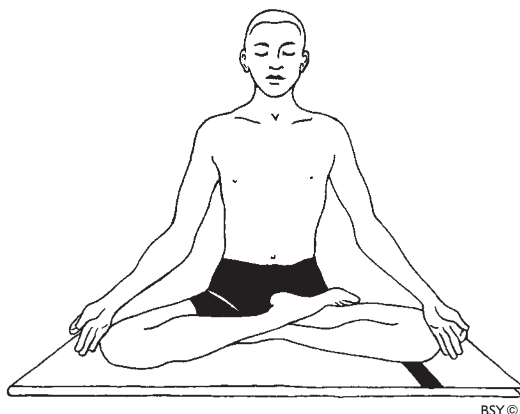
हस्तमुद्रा प्राणायाम

यहाँ जिन चार विधियों का वर्णन किया गया है वे हाथ की विभिन्न स्थितियाँ हैं, जिन्हें हस्तमुद्रा कहा जाता है। मुद्राओं की अवधारणा एवं विधियों का विवरण परिशिष्ट – 3 में दिया गया है। प्राण के दृष्टिकोण से वे शरीर (इस संदर्भ में, अँगुलियाँ) में उन विशिष्ट नाड़ियों के सम्बन्धों का प्रतिनिधित्व करती हैं जिनके द्वारा प्राण विभिन्न क्षेत्रों में भेजे जाते हैं। ये मुद्राएँ सूक्ष्म विधियाँ हैं और हो सकता है कि सजगता तथा संवेदनशीलता के बिना इनके प्रभावों का तत्काल अनुभव न हो पाये।

हस्तमुद्राओं का उपयोग कर प्राणायाम की ये विधियाँ फेफड़ों के निचले, बीच के और ऊपर के भागों को संवातित करती हैं तथा अन्य महत्त्वपूर्ण अंगों को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। पंच प्राण भी इन अभ्यासों के द्वारा सक्रिय हो जाते हैं। ये चिकित्सात्मक प्राणायाम भी हैं, क्योंकि इनसे शरीर के विशेष क्षेत्रों से सम्बद्ध रोग दूर हो जाते हैं। चारों प्राणायामों का अभ्यास वर्णित क्रम में ही किया जाना चाहिए, यद्यपि चिकित्सात्मक उद्देश्य के लिए आवश्यक अभ्यास को ही किया जाना चाहिए।

विधि 1 – चिन्मुद्रा प्राणायाम

वज्रासन में या अन्य किसी आसन में मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए बैठ जायें।
हथेलियों को जांघ पर चिन्मुद्रा में ऊपर की ओर खुला रखें।
दोनों नासिकाओं से पूरक करें, उसके बाद अन्तर्कुम्भक लगायें।



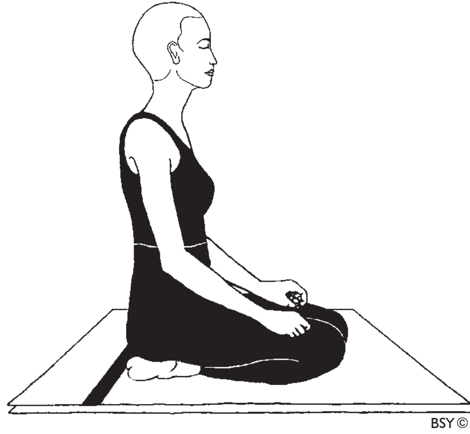
रेचक करें, फिर बहिर्कुम्भक लगायें और पूरे चक्र में आराम के साथ गिनती करते हुए 1:1:1:1 का अनुपात कायम रखने का प्रयास करें।
सत्ताईस चक्र अभ्यास करें।

लाभ – यह अभ्यास फेफड़ों के निचले खण्डों में ऑक्सीजन भरता और नाभि के नीचे अपान क्षेत्र को उत्प्रेरित करता है।

विधि 2 – चिन्मयमुद्रा प्राणायाम

वज्रासन में या अन्य किसी आसन में मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए बैठ जायें।
हथेलियों को जांघों पर चिन्मयमुद्रा में रखें, हथेलियाँ नीचे की ओर रहें।
दोनों नासिकाओं से पूरक करें, उसके बाद अन्तर्कुम्भक लगायें।
रेचक करें और बहिर्कुम्भक लगायें।
पूरे चक्र में आराम के साथ गिनती करते हुए 1:1:1:1 का अनुपात कायम रखने का प्रयास करें।
सत्ताईस चक्र अभ्यास करें।

लाभ – यह अभ्यास फेफड़ों के बीच के भागों में ऑक्सीजन भरता है। ऊर्जा नाभि और गले के बीच समान एवं प्राण के क्षेत्रों में दिशान्तरित होती है।



विधि 3 – आदिमुद्रा प्राणायाम

वज्रासन में या अन्य किसी सुविधाजनक आसन में मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए बैठ जायें। हाथों को आदिमुद्रा में जांघों पर रखें, हाथों का पृष्ठ भाग ऊपर की ओर रहे। अँगूठों को कसकर नहीं दबायें।

दोनों नासिकाओं से पूरक करें, उसके बाद अन्तर्कुम्भक लगायें।

रेचक करें, फिर बहिर्कुम्भक लगायें।

पूरे चक्र में आराम के साथ गिनती करते हुए 1:1:1:1 का अनुपात कायम रखने का प्रयास करें।

सत्ताईस चक्र अभ्यास करें।



लाभ – यह अभ्यास ऊर्जा को गरदन और सिर में उदान के क्षेत्र की ओर ले जाते हुए फेफड़ों के ऊपरी खण्डों में ऑक्सीजन भरता है।

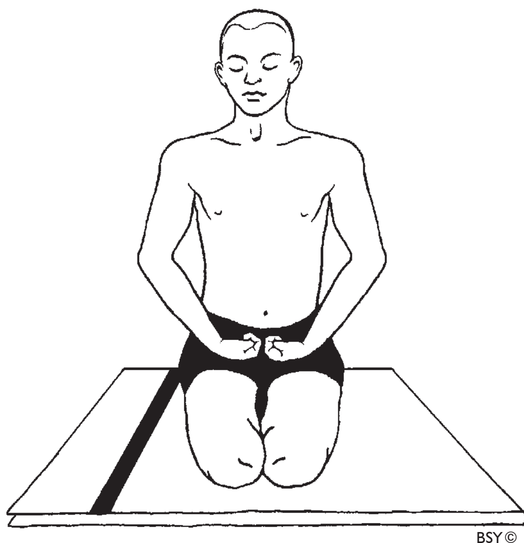
विधि 4 – ब्रह्ममुद्रा प्राणायाम

वज्रासन में या अन्य किसी सुविधाजनक आसन में मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए बैठ जायें और हाथों की मुट्ठियाँ बाँधकर अँगूठों को बाहर की ओर रखते हुए ब्रह्ममुद्रा की स्थिति में रखें।

दोनों नासिकाओं से पूरक करें, उसके बाद अन्तर्कुम्भक लगायें।

रेचक करें, फिर बहिर्कुम्भक लगायें।

पूरे चक्र में आराम के साथ गिनती करते हुए 1:1:1:1 का अनुपात कायम रखने का प्रयास करें। इसी तरह सत्ताईस चक्र अभ्यास करें।



लाभ – यह अभ्यास व्यान को उत्प्रेरित करता हुआ सम्पूर्ण शरीर में शक्ति का संचार करता है।

इस प्रकार चार मुद्रा प्राणायाम पूरे होते हैं। प्रत्येक के 27 चक्रों के अभ्यास से 108 चक्र होंगे, जिससे अभ्यास पूर्ण होगा।

प्राणायाम के अभ्यास

II : शास्त्रीय प्राणायाम

प्राणायाम के लिए मार्गदर्शन

प्राणायाम का अभ्यास सभी लोगों के द्वारा किया जा सकता है, वय तथा शारीरिक अवस्था का कोई बन्धन नहीं होता है। हालाँकि इनका अभ्यास व्यक्तिगत स्तर पर किसी गुरु या कुशल शिक्षक से सीखना चाहिए, स्वयं किसी भी अभ्यास को चुन कर नहीं करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक संरचना भिन्न होती है, जिसका आकलन एक योग्य शिक्षक कर सकता है। इन मापदण्डों के आधार पर विशेष प्राणायामों, उनके चक्रों और अनुपातों को निर्धारित किया जाता है। इन सूक्ष्मताओं को अभ्यास एवं बोध की परिपक्वता के बिना नहीं समझा जा सकता है। हठयोग प्रदीपिका (2:16) में कहा गया है –

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत् ।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः ॥

प्राणायाम के सही ढंग के अभ्यास द्वारा सभी रोगों का उन्मूलन हो जाता है; योग का सही ढंग से अभ्यास न करने पर सब प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

सामान्यत: फेफड़े, हृदय और तंत्रिकाएँ मज़बूत होती हैं और उन्हें प्राणायाम के नियमित तथा उपयुक्त अभ्यासों के द्वारा अतिरिक्त शक्ति प्राप्त होती है। यद्यपि यदि साधक आवश्यकता से अधिक या अनुपयुक्त अभ्यास करता है, तो शरीर दुर्बल हो सकता है और आन्तरिक अंगों को क्षति पहुँच सकती है। प्राणायाम मन के अन्दर सकारात्मक या नकारात्मक, जो भी है, उसमें वृद्धि करता है। अत: गलत या अत्यधिक अभ्यास से मानसिक क्लेश और यहाँ तक कि तंत्रिकाओं में रह-रहकर संकुचन भी बढ़ सकता है।

प्राणायाम के गलत अभ्यास से समस्यायें बिना किसी पूर्व संकेत के उत्पन्न हो सकती हैं, इसलिए अत्यधिक सावधानी आवश्यक है। प्रत्येक अभ्यास को ध्यानपूर्वक सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। न तो बलपूर्वक श्वसन होना चाहिए, न कुम्भक को सुखद स्थिति से अधिक बढ़ाना चाहिए और न ही श्वास, शरीर या मन पर बलप्रयोग किया जाना चाहिए। साधक को ऐसे उन्नत प्राणायामों का अभ्यास करने का प्रयास नहीं करना चाहिए जो उनकी वर्तमान क्षमता से परे हों। इस प्रकार आरामपूर्वक निश्चित प्रगति होगी और साधक प्राणायाम के अद्भुत विज्ञान से भरपूर लाभ उठा पायेगा।

योग चूड़ामणि उपनिषद् (श्लोक 118) में कहा गया है –

यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वश्य: शनै: शनै: ।
तथैव सेवितो वायुरन्यथा हन्ति साधकम् ॥

जिस प्रकार धीरे-धीरे सिंह, हाथी और बाघ को वश में कर लिया जाता है, उसी प्रकार प्राण को नियन्त्रित कर लेना चाहिए, अन्यथा यह साधक के लिए घातक हो जाता है।

आध्यात्मिक जीवन के लिए धैर्य तथा दृढ़ता आवश्यक है, और यह प्राणायाम के लिए विशेष रूप से सत्य है। साधक यदि विशेष अनुपात या चक्र संख्या तक नहीं पहुँच पा रहा हो, तो उसे कुंठित नहीं होना चाहिए; क्योंकि सम्भव है कि केवल एक प्राणायाम में पूर्णता प्राप्त करने में महीनों या वर्षों लग जाये। नियमित साधक निरंतर प्रगति करता रहता है, हालाँकि सम्भव है प्रगति प्रत्यक्ष रूप से दिखाई न दे। इसलिए यह विचार आ सकता है कि कोई लाभ नहीं हो रहा है; यद्यपि साधक को आश्वस्त रहना चाहिए कि अभ्यास से स्थूल एवं सूक्ष्म, दोनों स्तरों पर प्रगति हो रही है।

प्रारंभिक तैयारी – प्राणायाम के योग्य होने के लिए पहले योगासनों में निपुण होना होगा। आसनों से पूरा लाभ पाने के लिए षट्कर्म की सभी क्रियाएँ कर लेनी चाहिए। भौतिक शरीर पाँच तत्त्वों – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश से मिलकर बना होता है। षट्कर्म इन तत्त्वों को शुद्ध कर देते हैं, जिससे ये प्राण की गतिविधियों को बाधित नहीं कर पाते हैं। जब शरीर विषाक्त तत्त्वों से मुक्त हो जाता है, तब आसनों तथा प्राणायामों के प्रभाव में पर्याप्त रूप से वृद्धि होती है। शरीर संवेदनशील हो जाता है और

आसन या प्राणायाम के द्वारा शरीर में जो परिवर्तन आते हैं, उन्हें स्वीकार करता है।

प्राणायाम के साधक का आन्तरिक शरीर शुद्ध होना चाहिए। अनियमित जीवनशैली के कारण ऊर्जा में जो अवरोध उत्पन्न हो जाते हैं और विषाक्त तत्त्व जमा हो जाते हैं, उन्हें दूर किये बिना प्राणायाम के अभ्यास करने पर उनका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, श्लेष्मा के जमा होने पर प्राणिक गतिविधियाँ तुरंत बाधित होंगी। षट्कर्म के अभ्यासों के द्वारा मुँह, नाक, आमाशय, आँतों और इस प्रकार सम्पूर्ण शरीर की सफाई हो जाती है। नेति क्रिया नासा मार्गों की सफाई कर देती है और कुंजल क्रिया आमाशय से श्लेष्मा तथा अतिअम्लता को दूर कर देती है।

जब षट्कर्मों के बाद आसन किये जाते हैं, तब प्राण शरीर की प्रत्येक तंत्रिका, कोशिका और रन्ध्रों में प्रवेश कर जाते हैं। यदि साधक ने अपने शरीर को वर्षों तक पूर्णतः उपेक्षित रखा है, तो भी षट्कर्म, आसन एवं प्राणायाम को नित्यचर्या में सम्मिलित करने से उसे बहुत लाभ होगा। यद्यपि किसी व्यक्ति की जीवनशैली सरल एवं संतुलित है, और उसने अपने शरीर की शुद्धता को कायम रखा है, तो वह बिना किसी तैयारी के प्राणायाम प्रारम्भ कर सकता है।

आहार – प्राणायाम के अभ्यासी को ऐसा संतुलित आहार लेना चाहिए जो उसके शरीर के लिए उपयुक्त हो। ऐसा कोई एक आहार नहीं है जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयुक्त या अनुपयुक्त हो। एक कहावत है कि एक व्यक्ति के लिए जो सर्वथा उपयुक्त भोजन है, वह दूसरे के लिए विष के समान हो सकता है। आहार को तीन मौलिक समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है – 1) तामसिक – जो आलसी एवं सुस्त बनाता है; 2) राजसिक – जो उत्तेजना, मनोविकार एवं रोग उत्पन्न करता है, और 3) सात्त्विक – जो संतुलन, अच्छा स्वास्थ्य और दीर्घ आयु प्रदान करता है। ताजे और प्राकृतिक भोजन सात्त्विक होते हैं; डब्बों में बन्द और शोधित भोजन तामसिक होते हैं। उनके सेवन से बचना चाहिए।

आहार के रूप में धान्य, दालों, ताज़े फलों और सब्ज़ियों तथा अल्प मात्रा में दूध से बनी किसी वस्तु का सेवन करना सर्वाधिक लाभप्रद होता है। सामिषभोजी मांस, मछली या अण्डे को अल्प मात्रा में ले सकते हैं। भोजन इस प्रकार का हो जिससे कब्ज नहीं हो। कुल मिलाकर संतुलन और आत्मसंयम के सिद्धान्त का पालन करना चाहिए। घेरण्ड संहिता (5:16) में कहा गया है –

मिताहारं विना यस्तु योगारम्भं तु कारयेत् ।
नानारोगो भवेत्तस्य किंचिद्योगो न सिध्यति ॥

जो बिना संतुलित भोजन के योगाभ्यास करता है, उसे कोई लाभ नहीं होता है, बल्कि नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं।

आहार के सम्बन्ध में आयुर्वेद के सिद्धान्त इस प्रकार हैं – आधे आमाशय को भोजन से भरो, एक चौथाई को पानी से और एक चौथाई को खाली रखो। अवसर मिलने पर अधिकतर व्यक्ति आवश्यकता से अधिक खा लेते हैं, जबकि वे दिन में केवल एक बार संतुलित भोजन खाकर काम चला सकते हैं। अधिक खाने से इन्द्रियाँ और मन संतुष्ट होते हैं, लेकिन मध्यपट और फेफड़ों पर दबाव पड़ता है, साथ-ही पूरी गहराई से श्वसन करना कठिन हो जाता है।

स्थान – प्राणायाम का अभ्यास स्वच्छ वातावरण में करना चाहिए, ताकि प्रदूषण का प्रभाव कम-से-कम हो। अभ्यास खुली हवा में या हवादार, साफ-सुथरे और व्यवस्थित कमरे में किया जा सकता है। दुर्गन्धयुक्त, धूल या धुएँ से भरे कमरे में कभी प्राणायाम नहीं करना चाहिए। आदर्शत: अभ्यास का स्थान एकान्त में होना चाहिए, जहाँ शोर-शराबा, भीड़ एवं बाधाएँ नहीं हों। धूप या अधिक हवा में भी अभ्यास नहीं करना चाहिए। सूर्य की प्रात:कालीन हल्की किरणें लाभदायक होती हैं, लेकिन जब वे तेज हो जाती हैं तब हानिकारक होती हैं और उनसे शरीर अत्यधिक तप्त हो जाता है। जहाँ बहुत हवा चल रही हो, वहाँ अभ्यास करने पर ठंढ लग सकती है और शरीर का तापमान असंतुलित हो सकता है।

स्वच्छता – प्राणायाम के अभ्यास के लिए शरीर की स्वच्छता अनिवार्य है। यदि पूरा स्नान सम्भव नहीं हो, तो चेहरा और हाथ-पैरों को पानी से धो लेना चाहिए। साधना के पूर्व स्नान कर लेने से स्फूर्ति आ जाती है। प्राणायाम के तुरंत बाद नहीं, बल्कि कम-से-कम आधे घंटे के बाद स्नान करना चाहिए।

अभ्यास का समय – प्राणायाम के अभ्यास के लिए प्रात:काल सर्वोत्तम समय है। ब्राह्म मुहूर्त (प्रात: चार से छ: बजे के बीच) में वातावरण की तरंगें शुद्धतम होती हैं। शरीर में ताज़गी रहती है और दिन के अंत की अपेक्षा इस समय मन शान्त रहता है। जब तक गुरु के द्वारा किसी विशेष साधना का निर्देश नहीं दिया गया हो तब तक अधिकतर प्राणायाम दिन की गर्मी में नहीं

किये जाने चाहिए। योग शास्त्रों में प्राणायाम के अभ्यास के लिए चार समयों को उपयुक्त माना गया है – सूर्योदय, मध्याह्न, सूर्यास्त और मध्यरात्रि, लेकिन ये केवल उन्नत साधकों के लिए हैं।

भोजन के बाद प्राणायाम नहीं करना चाहिए। भोजन के तीन घंटे बाद ही अभ्यास करना चाहिए। खाली पेट रहने पर यह निश्चित हो जाता है कि प्राण वायु पाचन की प्रक्रिया में संलग्न नहीं है और उसका उपयोग अधिक सूक्ष्म क्रियाओं के लिए किया जा सकता है। इसके साथ ही बहुत भूखे रहने पर भी प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

क्रम – प्राणायाम को आसन के बाद और ध्यान के पूर्व करना चाहिए। आसनों का अभ्यास करने के बाद पाँच मिनट तक आराम किया जा सकता है और तब प्राणायाम आरम्भ किया जा सकता है। जप एवं ध्यान के तुरंत पहले भी प्राणायाम के कुछ चक्रों का अभ्यास किया जा सकता है। प्राणायाम के बाद मन एकाग्र और शरीर हल्का हो जाता है, तब ध्यान अधिक आनन्दप्रद लगता है।

बैठने के लिए आसन – प्राणायाम के अभ्यास के लिए प्राकृतिक रेशों, जैसे, कपास या ऊन से बने आसन सर्वोत्तम होते हैं। कृत्रिम रेशों से बने आसनों पर बैठकर या उनसे बने कपड़ों को पहन कर अभ्यास नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे ऋणात्मक आयनों को विकर्षित करते हैं और धनात्मक आयनों को आकर्षित करते हैं। धनात्मक आयन प्राणायाम के लिए उपयुक्त नहीं होते; वे स्वास्थ्य के लिए भी लाभदायक नहीं होते हैं, क्योंकि वे एक ढाल के समान ऋणात्मक आयनों को शरीर के अन्दर आने से रोकते हैं।

बैठने का आसन – प्राणायाम की सफलता के लिए ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ पाने की क्षमता होनी चाहिए। सही आसन में कुशलतापूर्ण श्वसन तो होता ही है, अभ्यास की अवधि में शरीर को स्थिरता भी प्राप्त होती है। उपयुक्त आसन नहीं होने पर एकाग्रता भंग होती है और अभ्यास में बाधा उत्पन्न होती है। वक्ष, गरदन और सिर को एक सीध में होना चाहिए, ताकि रीढ़ की हड्डी सीधी रहे। शरीर को न तो टेढ़ा होने देना चाहिए, न ही लुढ़कने देना चाहिए। शरीर आगे या पीछे, दायें या बायें झुकना नहीं चाहिए। नियमित अभ्यास से आसन में स्वत: दक्षता आ जायेगी।

प्राणायाम के अभ्यास के लिए पद्मासन, सिद्धासन, सिद्धयोनि आसन और स्वस्तिकासन सर्वोत्तम हैं। जब साधक अभ्यास में कुशल होने लगता

है तब शरीर के अन्दर प्राण अत्यन्त तीव्रता के साथ संचालित होता है। इन आसनों द्वारा कायम रखी गयी शरीर की पूर्ण स्थिरता प्राण की इस गति को संबल प्रदान करती है। चूँकि शरीर अत्यधिक ऊर्जा उत्पन्न करने लगता है, यह वस्तुत: एक विद्युतीय ध्रुव के रूप में परिवर्तित हो जाता है। बायें भाग में शीतल ऊर्जा और दायें भाग में ऊष्ण ऊर्जा क्रमश: ऋणात्मक एवं धनात्मक ध्रुवों की प्रतीक हैं। साधना के द्वारा उत्पन्न अतिरिक्त ऊर्जा, भूमि से सम्पर्क के कारण शरीर से बाहर निकल सकती है। इसलिए ऊर्जा को शरीर में ही सुरक्षित रखने हेतु एक बन्द परिपथ की रचना होनी चाहिए। यह परिपथ ध्यान के इन चार आसनों द्वारा बनता है और मुद्राओं एवं बन्ध से उसे शक्ति प्राप्त होती है। नये लोगों के लिए यह उतना आवश्यक नहीं, लेकिन जो प्राणायाम में प्रगति करना चाहते हैं, उनके लिए ध्यान के आसनों में निपुणता प्राप्त करना अनिवार्य है। हालाँकि प्रारम्भ में सुखासन में बैठ सकते हैं, विशेष रूप से वे जिनका वजन अधिक है।

प्रारम्भ करने की नासिका – जब नाड़ीशोधन या भस्त्रिका में एकान्तर (एक के बाद दूसरी) नासिका से श्वसन किया जाता है, तब सामान्यत: बायीं नासिका से अभ्यास प्रारम्भ किया जाता है। हालाँकि यदि बायीं नासिका बन्द हो तो दायीं नासिका से आरम्भ किया जा सकता है। अभ्यास के क्रम में बन्द नासिका खुल जायेगी।

नाक – श्वसन नाक से ही आरम्भ होता है और शारीरिक/मानसिक संरचना के अनेक सूक्ष्म संतुलनों का नासिकाओं से आने-जाने वाली श्वास से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इसलिए इसके कुशलतम संचालन का ध्यान रखा जाना चाहिए। प्राणायाम का अभ्यास नाक के चिरकालिक या गम्भीर रोगों के कारण बाधित हो सकता है। जब तक विशेष रूप से कहा नहीं जाये तब तक नाक के द्वारा ही श्वास लेनी चाहिए। नासिकाओं के उपयुक्त संचालन के लिए जल नेति के द्वारा नासा गुहा को नियमित रूप से स्वच्छ करते रहना चाहिए। इससे श्वास और प्राण की क्रिया के प्रति संवेदनशीलता बढ़ेगी। ठंढ और एलर्जी के कारण बन्द नाक पर नियमित रूप से नेति के अभ्यास का सुनिश्चित प्रभाव पड़ता है।

नासिकाओं का फैलना – साधक को प्राणायाम के अभ्यास के दौरान नासिकाओं के प्रति सजग रहना चाहिए। सजगतापूर्वक श्वसन में वायु अधिक मात्रा में, अधिक आसानी और समान रूप से नासिकाओं में प्रवेश

करती है। नासिकाओं का नियन्त्रण उन्हें सम्पूर्ण श्वसन तंत्र की ग्रहणशीलता को बढ़ाने में मदद करता है। नासिकाओं का चेतन नियन्त्रण अभ्यास के साथ विकसित होगा।

श्वसन के दौरान यदि नासिकाओं में गति होती भी है तो वह न के बराबर होती है। आदर्शत: नासिकाओं को श्वास लेते समय फैलना चाहिए और श्वास छोड़ने के साथ पुन: अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ जाना चाहिए। नासिकाओं का फैलना प्राणायाम का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है, विशेष रूप से भ्रामरी, समवृत्ति और नाड़ीशोधन प्राणायामों का। केवल यह सरल अभ्यास शरीर में प्राण के अवशोषण की क्षमता को कारगर ढंग से बढ़ा देगा, साथ-ही वायु का अन्तर्ग्रहण भी दस प्रतिशत तक बढ़ जायेगा।

श्वसन – प्राणायाम के अभ्यास के दौरान श्वसन अतिसूक्ष्म हो जाना चाहिए। स्थूल श्वास का अनुभव 2 से 36 अंगुल की दूरी तक किया जा सकता है। सूक्ष्म श्वास का विस्तार कम दूरी तक होता है। साधक को इस प्रकार श्वास लेनी चाहिए कि रेचक के क्रम में श्वास का विस्तार दो अंगुल से अधिक नहीं हो, और कुम्भक के बाद बलपूर्वक रेचक नहीं करना पड़े। अन्तर्कुम्भक को इस प्रकार समायोजित करना चाहिए कि रेचक में हाँफने की आवश्यकता नहीं हो।

पूरक एवं रेचक की गति में भी सामंजस्य और समरूपता होनी चाहिए। जब कोई थका हुआ होता है तब उसमें गहराई से धीरे-धीरे पूरक और शीघ्रता से रेचक करने की प्रवृत्ति होती है। जब थकान नहीं रहती है तब शीघ्रता से पूरक और धीरे-धीरे रेचक करने की प्रवृत्ति होती है। श्वास की सामंजस्यहीनता असमान तरंगें उत्पन्न करती है, जो मन को अव्यवस्थित कर देती हैं। श्वास में समरूपता होनी चाहिए। यदि नाक के अन्दर गतिमापक यंत्र लगाया जा सकता, तो हम पाते कि श्वास कभी समरूप नहीं होती है। अन्तर्कुम्भक के बाद यह विशेष रूप से देखा जा सकता है। एक रेचक के बाद दस विभिन्न गतियाँ हो सकती हैं। श्वास को बिना किसी रुकावट, झटके या कम्पन के स्थिर और समरूप होना चाहिए।

पूरक, कुम्भक और रेचक के अनुपात – साधक को पूरक, कुम्भक और रेचक को इस प्रकार समायोजित करना चाहिए कि प्राणायाम की किसी भी अवस्था में दम घुटने का या असुविधा का अनुभव नहीं हो। साधक को किन्हीं दो चक्रों के बीच कभी सामान्य श्वास लेने की आवश्यकता का अनुभव नहीं

होना चाहिए। रेचक की अवधि को व्यर्थ ही नहीं बढ़ाना चाहिए, अन्यथा उसके बाद वाला पूरक शीघ्रता से हो जायेगा और लय अव्यवस्थित हो जायेगी। योग चूड़ामणि उपनिषद् (श्लोक 119) में कहा गया है –

युक्तंयुक्तं त्यजेद्वायुं युक्तंयुक्तं प्रपूरयेत् ।
युक्तंयुक्तं प्रबध्नीयादेवं सिद्धिमवाप्नुयात् ॥

श्वास को सजगता के साथ धीरे-धीरे अन्दर लेना चाहिए। सजगता के साथ समुचित ढंग से कुम्भक करना चाहिए। श्वास को धीरे-धीरे सावधानीपूर्वक बाहर निकालना चाहिए। इस प्रकार पूर्णता प्राप्त होती है।

प्राणायाम में प्रगति करने के लिए कुम्भक का प्रयास करने के पूर्व पूरक एवं रेचक में अच्छी तरह प्रशिक्षित हो जाना चाहिए। पूरक एवं रेचक का अनुपात 1:2 होना चाहिए और श्वास सूक्ष्म, धीमी, अविरल तथा अखण्ड होनी चाहिए। कुम्भक का अभ्यास सुखद स्थिति तक ही करना चाहिए। यह बात महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि फेफड़े नाजुक होते हैं, इसलिए किसी भी प्रकार का दबाव उन्हें आसानी से क्षति पहुँचा सकता है। कुछ लोग कुम्भक करते समय अपने चेहरे की पेशियों को विकृत कर देते हैं, जिससे यह संकेत मिलता है कि वे अपनी क्षमता से अधिक जोर लगा रहे हैं। इस बात का ध्यान रखना चाहिए और ऐसा नहीं किया जाना चाहिए।

कुम्भक इतना नियन्त्रित होना चाहिए कि चक्रों की अपेक्षित संख्या का अभ्यास बिना किसी तनाव के किया जा सके। कुम्भक के अन्त में साधक को फेफड़ों पर इतना नियन्त्रण होना चाहिए कि वह पूरक के अनुपात में स्थिरता से रेचक कर पाये, अर्थात् 1:2 का अनुपात रहे। कुम्भक का निर्धारण व्यक्ति-विशेष की क्षमता के अनुसार ही नहीं, बल्कि रेचक के अनुसार भी होना चाहिए। कुम्भक तभी करना चाहिए जब दोनों नासिकाओं में श्वास प्रवाहित हो रही हो, ताकि मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्ध समान रूप से विकसित हों।

बन्ध – उन्नत साधकों को तीन बन्धों के साथ कुम्भक का अभ्यास करना चाहिए। वे बन्ध हैं – जालन्धर बन्ध, उड्डियान बन्ध और मूल बन्ध। जब अन्तर्कुम्भक लगाया जाता है तब उसके साथ जालन्धर तथा मूल बन्ध का अभ्यास किया जाता है। जब बहिर्कुम्भक लगाया जाता है तब तीनों बन्धों का अभ्यास किया जाता है (परिशिष्ट 4 देखें)। बन्ध के साथ प्राणायाम के

अभ्यास से एक प्रकार का ऋणात्मक दबाव उत्पन्न होता है जो प्राण को शरीर के ऊपरी भागों और सिर की ओर निर्दिष्ट कर देता है। इससे ऐसी शक्ति उत्पन्न होती है जिसका अनुभव अन्यथा नहीं होता है।

समय की इकाई – अनुपात कायम रखने के लिए समय की इकाई का उपयोग आवश्यक होता है। प्रारम्भ में साधक मानसिक रूप से अंकों की गिनती कर सकता है। यद्यपि जब अभ्यास आराम से होने लगे तब प्रवृत्ति के अनुसार ॐ, गायत्री या गुरु मंत्र का उपयोग किया जा सकता है। गायत्री एवं ॐ मंत्र प्राणायाम के लिए सर्वोत्तम हैं। अभ्यास में प्रगति हो जाने पर गिनती या किसी समय-इकाई की आवश्यकता नहीं है। साधक को स्वाभाविक रूप से उस अनुपात की आदत हो जायेगी।

थकान – जब थकान का अनुभव होने लगे तब प्राणायाम के अभ्यास को जारी नहीं रखना चाहिए। अभ्यास के दौरान या उसके बाद सदैव आनन्द और प्रफुल्लता होनी चाहिए। अभ्यास समाप्ति के उपरान्त साधक को उत्साह और स्फूर्ति का अनुभव होना चाहिए।

बीमारी – बीमारी के दौरान प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिए। इस अवधि में अभ्यास को बन्द कर देना चाहिए और तब तक आराम करना चाहिए जब तक पूर्ण रूप से स्वस्थ न हो जायें। जब अभ्यास को पुन: आरम्भ किया जा रहा हो तब उसे उसी चरण से आरम्भ नहीं करना चाहिए जहाँ उसे बन्द किया गया था, बल्कि किसी आरामदायक चरण से आरम्भ करना चााहिए। यदि किसी रोग से पीड़ित हों तो प्राणायाम की किसी चर्या को आरम्भ करने के पूर्व अपने शिक्षक या निर्देशक को सूचित करें।

गर्भावस्था – गर्भावस्था के दौरान प्राणायाम करने से अनेक प्रकार के लाभ होते हैं। गर्भ में एक नये जीवन का पोषण करती हुई स्त्रियाँ प्राण के प्रति अत्यंत संवेदनशील तथा प्रतिक्रियात्मक हो जाती हैं। श्वसन में वृद्धि होने पर प्लैसेन्टा में प्रचुर मात्रा में ऑक्सीजन की आपूर्ति होने लगती है। प्रसव के दौरान भस्त्रिका एवं कपालभाति के अभ्यास उपयोगी होते हैं। भ्रामरी भी लाभदायक सिद्ध हुआ है (अध्याय 13 – 'श्वास एवं प्राणायाम पर अनुसन्धान' देखें)। संतुलनकारी प्राणायाम माता को अपनी और शिशु की आवश्यकताओं के बीच संतुलन बनाये रखने में सहायता करते हैं। यद्यपि माता को अपनी क्षमता के अनुरूप ही अभ्यास करना चाहिए, किसी भी प्रकार का बलप्रयोग नहीं करना चाहिए। गर्भावस्था में कुम्भक और उड्डियान बन्ध निषिद्ध होते हैं।

सम्भावित उपप्रभाव – पहली बार प्राणायाम का अभ्यास करने वाले सामान्य स्वस्थ व्यक्ति को विभिन्न प्रकार के अनुभव हो सकते हैं, जैसे, खुजली, झुनझुनी, जलन, गर्मी या ठंढक, हल्कापन या भारीपन। नब्ज़ की दर बढ़ सकती है, सिर चकरा सकता है या दर्द हो सकता है। अभ्यासी को पृष्ठ भाग में दर्द का अनुभव हो सकता है। ये लक्षण त्रुटिपूर्ण अभ्यास के संकेत नहीं हैं, बल्कि शरीर स्वयं को अभ्यास के साथ अनुकूलित कर रहा होता है। हालाँकि यदि ये प्रतिक्रियायें होती रहें, तो अभ्यासी को विधि की जाँच करवा लेनी चाहिए।

प्राणायाम के शास्त्रीय ग्रंथों में कँपकँपी होना, पसीना आना, हिलना इत्यादि जैसे प्रभावों का वर्णन भी किया गया है, जो उन्नत अभ्यास की अवस्था के लक्षण हैं। आधे घंटे के अभ्यास के फलस्वरूप ऐसे लक्षण प्रकट नहीं होते हैं। जो व्यक्ति साधना के रूप में प्राणायाम का अभ्यास प्रतिदिन तीन से पाँच घंटों तक करते हैं, उन्हें ऐसे अनुभव हो सकते हैं। अभ्यास के दौरान यदि पसीना निकलता है तो उसे तौलिये से नहीं पोछना चाहिए, बल्कि हाथों से ही शरीर में मल देना चाहिए। अभ्यास के दौरान या बाद में शरीर का सम्पर्क ठंढी या तेज हवा से नहीं होना चाहिए।

नियमितता – प्राणायाम के साधक के लिए महत्त्वपूर्ण अनुशासनों में से एक है नियमितता। इसका अर्थ है नियमित जीवनशैली के साथ प्राणायाम का नियमित अभ्यास। प्रतिदिन अभ्यास बदलने पर कोई प्रगति नहीं होगी। प्रारम्भ में अभ्यासी को अपने प्रशिक्षक से प्राणायाम के दैनिक अभ्यास के लिए ऐसा कैप्सूल बनाने के लिए कहना चाहिए, जिसके नियमित अभ्यास से उच्च स्तर तक प्रगति हो सके।

समय के साथ प्राणायाम के अभ्यास में प्रगति होगी। नये अभ्यासियों को अधिक उन्नत स्तर तक जाने के लिए प्रारम्भिक तैयारियों का अभ्यास करना चाहिए। शारीरिक क्षमता में वृद्धि के लिए और बढ़ी हुई प्राण शक्ति के साथ शरीर एवं मन के अनुकूलन के लिए अभ्यास में नियमित होना अनिवार्य है। यह धीमी और स्थिर गति से चलने वाली प्रक्रिया है; अभ्यासी को इसमें कभी शीघ्रता करने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

प्राणायाम का अभ्यास प्रतिदिन एक नियत समय और स्थान पर करना चाहिए। इससे उस स्थान पर सकारात्मक, आध्यात्मिक तरंगें उत्पन्न होती हैं, और नियमितता आन्तरिकशक्ति तथा इच्छाशक्ति का विकास करती

है। अभ्यासी को प्राणायाम के सामान्य निर्देशों का पालन करना चाहिए, लेकिन समय-समय पर उसे अपनी अन्तर्दृष्टि एवं सहज बोध का अनुसरण करना चाहिए।

प्राणायाम साधना के लिए परामर्श – सामान्यत: जो प्राणायाम योग शिक्षकों द्वारा सिखाया जाता है, वह केवल प्रारम्भिक होता है। प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य आत्मिक एवं कारण शरीर का विकास करना है। इसलिए प्राणायाम साधना सामान्य अभ्यास से भिन्न है। इस अभ्यास में पूर्णता प्राप्त करने के लिए सघन, नियमित एवं निश्चयपूर्ण प्रयास के रूप में पारिभाषित किया जा सकता है। इसका लक्ष्य केवल अच्छा स्वास्थ्य और मानसिक संतुलन प्राप्त करना नहीं, बल्कि चेतना की उच्चतम अवस्था तक पहुँचना है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए सघन प्रयास होना चाहिए। सामान्य अभ्यासी सुविधानुसार कुछ नियमों में थोड़ा फेर-बदल कर सकते हैं (जैसे, यदि अभ्यास के लिए अलग कमरा नहीं हो तो जो सबसे उपयुक्त स्थान उपलब्ध है, उसी का उपयोग करें); लेकिन साधना के स्तर पर प्राणायाम का अभ्यास करने वालों के लिए निर्देशों में कोई छूट नहीं दी जानी चाहिए। इस उद्देश्य के संदर्भ में शास्त्रों में प्राणायाम साधना के लिए जो कठोर निर्देश दिये गये हैं, उनका बहुत महत्त्व है।

प्राणायाम साधक को जीवन के प्रति अपने विचार-व्यवहार में व्यापक रूप से सुधार लाना चाहिए। उसे अपनी प्रत्येक पारस्परिक क्रिया में, चाहे वह भावनात्मक हो अथवा बौद्धिक या शारीरिक, सुधार लाना चाहिए। प्राणायाम साधक के लिए हर स्तर पर संतुलन की स्थिति कायम रखने पर बल दिया जाता है। महर्षि पतंजलि के योगसूत्र में प्राणायाम को यम, नियम और आसन के बाद स्थान दिया गया है। पाँच यम हैं – 1) अहिंसा, 2) सत्य, 3) अस्तेय, 4) ब्रह्मचर्य और 5) अपरिग्रह। पाँच नियम हैं – 1) शौच, 2) संतोष, 3) तप, 4) स्वाध्याय और 5) ईश्वर प्रणिधान। एक सामान्य अभ्यासी को षट्कर्म एवं आसन के बाद प्राणायाम करना चाहिए, लेकिन साधक के लिए जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन लाना अनिवार्य होता है।

जब वायु के द्वारा प्राण के अन्तर्ग्रहण की मात्रा बढ़ जाती है तब भोजन से ऊर्जा प्राप्त करने की आवश्यकता कम हो जाती है, अत: प्राणायाम की गहन एवं कठोर साधना के लिए विशेष प्रकार के आहार का निर्देश दिया

जाता है। यद्यपि आहार सम्बन्धी निर्देश गुरु से ही प्राप्त करना चाहिए। शिव संहिता (3:33 – 37) में कहा गया है कि साधक को ऐसे भोजन का परित्याग कर देना चाहिए जो अम्लीय, कठोर, कड़ुआ, नमकीन और तीखा हो। उसे यह भी परामर्श दिया जाता है कि जब दायाँ स्वर प्रवाहित हो रहा हो तभी भोजन करना चाहिए और जब बायाँ स्वर प्रवाहित हो तभी सोना चाहिए, क्योंकि पिंगला में गर्मी होती है जो भोजन को शीघ्रता से पचाती है, जबकि इड़ा शीतकारी होती है, इसलिए सोने के लिए उपयुक्त होती है। उपवास नहीं करना चाहिए और तम्बाकू, गाँजा या अन्य किसी प्रकार के भ्रान्तिमूलक तत्त्वों से बच कर रहना चाहिए।

प्राणायाम साधना को वसन्त या शरद काल में प्रारम्भ करना चाहिए, क्योंकि उस समय मौसम सामान्य रहता है। घेरण्ड संहिता (5:9) में कहा गया है –

वसन्ते शरदि प्रोक्तं योगारम्भं समाचरेत् ।
तदा योगी भवेत् सिद्धो रोगान्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥

योग का अभ्यास वसन्त या शरद में आरम्भ करना चाहिए। ऐसा करने पर योगी को सफलता प्राप्त होती है, और वह निश्चित रूप से रोगमुक्त रहता है।

ऊँचे पर्वत और ठंढी जलवायु, जहाँ की शुद्ध वायु में ऋणात्मक आयनों की प्रचुरता होती है, प्राणायाम की गहन साधना में सहायक होते हैं। योग शास्त्रों में यह भी कहा गया है कि प्राणायाम के साधक को स्वयं को आग से नहीं गरमाना चाहिए, क्योंकि आग ऋणात्मक आयनों को नष्ट कर देती है।

अभ्यास-स्थल को पवित्र मानना चाहिए। दत्तात्रेय योग शास्त्र (श्लोक 107 – 111) में अभ्यास के स्थान का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

सुशोभनं मंठ कुर्यात्सूक्ष्मद्वारं तु निर्घुणम् ।
सुष्ठु लिप्तं गोमयेन सुधया वा प्रयत्नतः ॥
मत्कुणैः मशकैः भूतैः वर्जितं च प्रयत्नतः ।
दिने-दिने सुसम्मृष्टं सम्मार्जन्या ह्यतन्द्रितः ।
वासितं च सुगंधेन धूपितं गुग्गुलादिभिः ॥

प्राणायाम का अभ्यास करने के लिए योगी को अपने लिए एक छोटी कुटी का निर्माण कर लेना चाहिए। उसका द्वार छोटा हो और वह हर प्रकार के जीवाणुओं से मुक्त हो। फ़र्श और दीवार को गाय के गोबर या चूने से यत्नपूर्वक लीपा जाना चाहिए, ताकि कुटी कीड़े-मकोड़ों तथा मच्छरों से मुक्त रहे। प्रतिदिन इसकी सफाई होनी चाहिए और इसे धूप और गुग्गुल आदि से सुवासित किया जाना चाहिए।

प्रतिदिन प्राणायाम के चार सत्र निम्नलिखित समयों पर होने चाहिए – प्रात:काल, मध्याह्न, सन्ध्या और मध्यरात्रि। अभ्यास करते समय पूर्व या उत्तर की ओर मुँह करके बैठना चाहिए। किसी अन्य प्राणायाम को प्रारम्भ करने के पूर्व नाड़ीशोधन प्राणायाम का अभ्यास कम-से-कम तीन महीनों तक तब तक करना चाहिए जब तक 20:80:40:40 की संख्या और अनुपात में अभ्यास आरामपूर्वक न होने लगे।

साधक को लोगों की संगति से बचना चाहिए। दत्तात्रेय कहते हैं, "प्राणायाम योगी को दूसरों की संगति से बचना चाहिए और दूसरों को अपना स्पर्श करने की अनुमति नहीं देनी चाहिए।" प्राणायाम साधना के आरम्भ में साधक अत्यन्त संवेदनशील हो जाता है और बाहरी प्रभाव उसे बहुत आसानी से अशान्त कर देते हैं। इसके फलस्वरूप साधना की प्रगति बाधित हो जाती है। पारस्परिक क्रियाओं में प्राणिक तत्त्व भी निहित होता है। आलोचना करना, गपशप करना या भावनाओं को उत्तेजित करना इत्यादि कुछ ऐसी बातें हैं, जिनसे उन्नयन नहीं होता, बल्कि प्राण का क्षय होता है और ऐसे नकारात्मक संस्कार या तो उत्पन्न होते हैं या पोषित होते हैं जिन्हें साधना के द्वारा मिटाने का प्रयास किया जा रहा है। बातचीत या पारस्परिक क्रिया के दौरान अभिव्यक्त की गयी भावनात्मक निर्भरता प्राणिक निर्भरता में रूपान्तरित हो जाती है और प्राणों की उत्पत्ति के साथ-साथ आत्मनिर्भर रहना भी कठिन हो जाता है, जो कि योगियों की दो विशेषताएँ हैं।

अभ्यास में गहरा विश्वास होना अनिवार्य है। प्रगति के संकेत मिल रहे हों और प्रतिकूल परिस्थितियों में अभ्यास को छोड़ देने की प्रवृत्ति भी उत्पन्न होती हो, फिर भी विश्वास से उत्पन्न हुई प्रतिबद्धता के द्वारा ही साधक अभ्यास जारी रख सकता है। शिव संहिता (3:18) में कहा गया है –

फलिष्यतीति विश्वास: सिद्धे: प्रथमलक्षणम् ।

सफलता की पहली शर्त है दृढ़ विश्वास कि यह (विद्या) सफल और फलीभूत होगी।

हालाँकि सभी शर्तों के पूरा हो जाने के बाद भी साधक गुरु की कृपा के बिना अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता है। जब प्राणायाम के अभ्यास को साधना के रूप में अपनाया जाता है तब गुरु के साथ-साथ उनके प्रति भक्ति अनिवार्य होती है। शिव संहिता (3:11) में कहा गया है –

भवेद्वीर्यवती विद्या गुरुवक्त्रसमुद्भवा ।
अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यतिदु:खदा ॥

गुरु के मुख से निकला हुआ ज्ञान ही शक्तिशाली और लाभप्रद होता है; अन्यथा यह व्यर्थ, दुर्बल और दु:खद होता है।

प्राणायाम साधना में उच्च चेतना के जागरण के लिए साधक एक माध्यम बनने की तैयारी करता है। गुरु का मार्गदर्शन केवल अभ्यास की विधियों को सुधारने के लिए नहीं, बल्कि अन्तर्ज्ञात ज्ञान के सम्प्रेषण के लिए भी अनिवार्य है। गुरु के साथ जुड़ जाने पर साधना अपनी आध्यात्मिक प्रगति के लिए मार्गदर्शन प्राप्त करने का एक साधन बन जाती है और अंतिम लक्ष्य प्राप्त कर लिया जाता है।

नाड़ीशोधन प्राणायाम

नाड़ीशोधन योग के शास्त्रीय ग्रंथों में वर्णित पहला प्राणायाम है। आदर्शत: एक शिक्षक के निर्देशों के अनुसार एक विशेष अवधि तक नाड़ी शोधन का अभ्यास कर लेने के बाद ही अन्य शास्त्रीय प्राणायाम करने चाहिए। नाड़ी का अर्थ है 'ऊर्जा का मार्ग' और शोधन का अर्थ है 'शुद्धिकरण'। इसलिए नाड़ीशोधन ऐसा अभ्यास है जिसमें प्राणिक मार्गों का शुद्धिकरण तथा नियन्त्रण होता है। यह साधक को अन्य प्राणायामों के लिए तैयार करता है, ताकि उनसे अधिकाधिक लाभ प्राप्त हो सके और प्राणिक असंतुलन का अनुभव नहीं हो।

नाड़ीशोधन स्वयं में एक पूर्ण अभ्यास है और इसकी उच्च अवस्थाओं में प्राणायाम के परम लक्ष्य, केवल कुम्भक की प्राप्ति होती है। नाड़ीशोधन का अभ्यास बायीं और दायीं नासिकाओं के द्वारा पूरक एवं रेचक का एकान्तरण करके किया जाता है। इसके द्वारा इड़ा, पिंगला तथा मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्ध प्रभावित होते हैं। यह मनोकायिक संरचना के असन्तुलन को नियन्त्रित करता हुआ सम्पूर्ण तंत्र में सन्तुलन और सामंजस्य लाता है।

नाड़ीशोधन प्राणायाम वास्तव में एक सन्तुलनकारी प्राणायाम है, क्योंकि असन्तुलन भौतिक शरीर में हो या मानसिक शरीर में, इसका अभ्यास सन्तुलन स्थापित करता है। स्वामी सत्यानन्दजी ने कहा है, "यदि कोई आध्यात्मिक जीवन जीना चाहता है, तो इस प्राणायाम का अभ्यास पर्याप्त है। यह ध्यान एवं समाधि के मार्ग को सुगम बना देगा।"

शास्त्रों में नाड़ीशोधन

सभी योग शास्त्रों में नाड़ीशोधन का वर्णन केवल कुम्भक के लिए एक अनिवार्य अभ्यास के रूप में किया गया है। कुछ विद्वानों ने इसे कुम्भक

के बराबर माना है, जबकि कुछ ने प्राणायाम का वर्णन कुम्भक लगाने की प्रक्रिया के रूप में किया है। पहले मत के अनुसार नाड़ीशोधन 'प्राणायाम' के लिए अनिवार्य प्रारम्भिक अभ्यास है और दूसरे मत के अनुसार यह पहला प्राणायाम है, यहाँ तक कि इसे ही एकमात्र प्राणायाम माना गया है। घेरण्ड संहिता (5:34) में कहा गया है –

मलाकुलासु नाडीषु मारुतो नैव गच्छति ।
प्राणायामः कथं सिद्धिस्तत्त्वज्ञानं कथं भवेत् ।
तस्मादादौ नाडीशुद्धिं प्राणायामं ततोऽभ्यसेत् ॥

जब तक नाड़ियों में अशुद्धियाँ भरी हुई हैं तब तक वायु (प्राण) उनमें प्रवेश नहीं करती है। तब प्राणायाम कैसे हो सकता है? तत्त्व का ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है? अतः पहले नाड़ियों को शुद्ध करना चाहिए और तब प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

यह शुद्धिकरण के लिए षट्कर्म के अभ्यासों और बीज मंत्र तथा तत्त्व साधना के साथ नाड़ीशोधन के तीन विशेष प्रकारों का अभ्यास करने का परामर्श देती है। इसके बाद यह कहती है, "एक दृढ़ आसन में बैठ कर उसे नियमित प्राणायाम आरम्भ करना चाहिए" (5:36)। 'नियमित प्राणायामों' या कुम्भकों के अन्तर्गत पहला है 'सहित' – एकान्तर नासिका श्वसन या नाड़ीशोधन (मंत्र एवं मानसदर्शन के साथ या उनके बिना), जिसमें एक लम्बी अवधि तक पूरक, कुम्भक और रेचक का अभ्यास करके उनके उच्च अनुपात को प्राप्त किया जाता है। हठयोग प्रदीपिका (2:5) में कहा गया है –

शुद्धिमेति यदा सर्वं नाडीचक्रं मलाकुलम् ।
तदैव जायते योगी प्राणसंग्रहणे क्षमः ॥

सभी नाड़ियाँ एवं चक्र अशुद्धियों से परिपूर्ण हैं। जब वे शुद्ध हो जाते हैं तब योगी प्राणों को धारण कर सकता है।

यह श्लोक नाड़ीशोधन को अन्य सभी प्राणायामों से भिन्न और उनकी तैयारी के लिए एक पृथक् अभ्यास के रूप में प्रतिपादित करता है। यह

पारम्परिक नाड़ीशोधन – अन्तर्कुम्भक के साथ दोनों नासिकाओं द्वारा एक-एक कर श्वसन करने का वर्णन करता है। इसमें यह भी कहा गया है कि अन्तर्कुम्भक की गिनती को धीरे-धीरे 80 तक बढ़ाते हुए प्रतिदिन चार बार इसका अभ्यास करना चाहिए।

दत्तात्रेय का योग शास्त्र नाड़ीशोधन की क्रमश: उच्चतर अवस्थाओं का वर्णन करते हुए इसे ही प्राणायाम मानता है। उनका परामर्श है कि प्रारम्भ में अपनी क्षमता के अनुसार 20 की गिनती तक कुम्भक करते हुए प्रतिदिन चार बार इसका अभ्यास करना चाहिए। यदि इस प्रकार तीन महीनों तक अभ्यास किया जाये तो यह नाड़ियों को शुद्ध कर देगा (श्लोक 131 – 132) –

कुर्यादेवं चतुर्वारमनालस्यों दिने दिने ।
एवं मासत्रयं कुर्यान्नाडीशुद्धिस्ततो भवेत् ॥

इसका अभ्यास बिना आलस्य के प्रतिदिन चार बार करना चाहिए। यह तीन महीनों में नाड़ियों को शुद्ध कर देगा।

इस बात को निश्चयपूर्वक शिव संहिता (3:26) में भी कहा गया है –

इत्थं मासत्रयं कुर्यादनालस्यो दिने दिने ।
ततो नाडीविशुद्धि: स्यादविलम्बेन निश्चितम् ॥

यदि इसका अभ्यास बिना आलस्य के तीन महीनों तक प्रतिदिन चार बार किया जाये तो नाड़ियाँ बिना किसी विलम्ब के निश्चित रूप से शुद्ध हो जायेंगी।

शिव संहिता (23:31) ने सुवासित-सुव्यवस्थित शरीर तथा मधुर आवाज़ का वर्णन नाड़ियों के शुद्ध होने के संकेत के रूप में किया है। दत्तात्रेय का योग शास्त्र (श्लोक 135 – 136) शरीर के हल्के, देदीप्यमान और दुबले-पतले होने का श्रेय नाड़ियों के शुद्धिकरण को देता है। यद्यपि इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए शिव संहिता (3:33) तथा दत्तात्रेय के योग शास्त्र (श्लोक 137 – 140) में कहा गया है कि अभ्यास के साथ भोजन, लालसा, इन्द्रियगत अनुभूतियों, शारीरिक क्रियाओं, संगति, विचार, व्यवहार एवं वाणी का अनुशासित तथा सन्तुलित होना अनिवार्य है। यदि सभी नियमों का

पालन किया जाये तो मात्र नाड़ीशोधन से ही साधक जितनी देर चाहे, केवल कुम्भक का अनुभव कर सकता है।

इसके परिणामस्वरूप विभिन्न सिद्धियाँ भी प्राप्त हो सकती हैं, लेकिन साधक को उनके प्रभावों के प्रति सचेत कर दिया जाता है और उनसे सम्बद्ध नकारात्मक संस्कारों से बचने के लिए प्रणव (ॐ मंत्र) के उच्चारण का परामर्श दिया जाता है। यह केवल कुम्भक की आरम्भिक अवस्था है, यदि नाड़ीशोधन के अभ्यास को जारी रखा जाये तो दूसरी अवस्था यानी घट अवस्था आती है। दत्तात्रेय के योग शास्त्र (श्लोक 178 – 180) में कहा गया है–

प्राणापानौ मनोवायू जीवात्मपरमात्मनौ ।
अन्योन्यस्याविरोधेन एकतां घटतो यदा ।
तदा घटाद्वयावस्था प्रसिद्धा योगिनां स्मृता ॥

जब प्राण एवं अपान, मन एवं प्राण तथा आत्मा एवं परमात्मा एक हो जाते हैं और उनके बीच का भेद मिट जाता है तब जो अवस्था आती है, उसे घटद्वयावस्था या घटावस्था कहा जाता है, और उसके लिए प्राण का नियन्त्रण और पोषण आवश्यक होता है। इस अवस्था को केवल योगी ही जान पाते हैं।

इस अवस्था में योगी प्राणायाम का अभ्यास प्रतिदिन केवल एक बार ही कर सकते हैं। यह प्रत्याहार की अवस्था में पहुँचा देता है। दत्तात्रेय ने इसका वर्णन ऐसी अवस्था के रूप में किया है जिसमें इन्द्रियों को पूर्णतः इस सीमा तक समेट लिया गया है कि योगी जो कुछ देखता, सुनता, सूँघता, चखता या स्पर्श करता है, उसमें उसे ईश्वरत्व का अनुभव होता है। शिव संहिता (3:57) में इस स्थिति के विषय में कहा गया है कि योगी तीन घंटों तक अपनी श्वास को रोक सकता है। परिचयावस्था की स्थिति तभी आती है जब योगी इस अवस्था में निपुण हो जाता है (दत्तात्रेय का योग शास्त्र, श्लोक 212 – 215) –

ततः परिचयावस्था जायतेऽभ्यासयोगतः।
वायुः सम्प्रेरितो यत्नादग्निना सह कुण्डलीम् ॥
बोधयित्वा सुषुम्नायां प्रविशेदविरोधतः।
वायुना सह चित्तं तु प्रविशेच्च महापथम् ॥

यदि योगी योगाभ्यास को जारी रखता है, तो इसके बाद परिचयावस्था आती है। आन्तरिक अग्नि से प्रेरित हुआ प्राण कुण्डलिनी को जाग्रत करता है और बिना किसी बाधा के सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कर जाता है; मन भी प्राण के साथ उस महत् मार्ग में प्रवेश कर जाता है।

प्राणायाम के उद्देश्य के पूरा हो जाने के बाद पंच धारणा, ध्यान और अंतत: समाधि में पूर्णता आ जाती है और निष्पत्ति अवस्था प्राप्त होती है। स्वामी शिवानन्दजी कहते हैं, "योग का विद्यार्थी ज्यों-ज्यों अपने क्रमबद्ध और नियमित अभ्यासों में प्रगति करता जायेगा, उसे एक-एक कर इन सभी अवस्थाओं का अनुभव होता जायेगा। एक धैर्यहीन विद्यार्थी अपने यदा-कदा के अभ्यासों से इन सारी अवस्थाओं का अनुभव प्राप्त नहीं कर सकता है।"

नाड़ीशोधन का अभ्यास

नाड़ीशोधन स्वयं में एक पूर्ण अभ्यास है, और जैसा कि शास्त्रों में कहा गया है, यह केवल कुम्भक और समाधि के अनुभव प्राप्त करने में सहायक होता है। यद्यपि इस अवस्था तक पहुँचने के लिए साधक को कठिन परिश्रम की आवश्यकता होती है। शिव संहिता जैसे ग्रंथ यह मानते हैं कि नाड़ीशोधन के अभ्यास के उपरान्त साधक में ऐसी अद्भुत् अवस्थाओं का अनुभव प्राप्त करने की योग्यता होगी ही। ये शास्त्र अत्यंत कुशल योगियों द्वारा लिखे गये हैं। वास्तव में उन्होंने इनमें अपने उन्नत अभ्यासों का वर्णन किया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि नाड़ीशोधन के अभ्यास से एक सामान्य अभ्यासी को भी पर्याप्त लाभ होगा।

नाड़ीशोधन के दैनिक अभ्यास का उपयोग प्राण-ऊर्जा को जीवन्त बनाने, प्राणिक अवरोधों को दूर करने और अनुकम्पी तथा परानुकम्पी स्नायु तंत्र के बीच सन्तुलन स्थापित करने के लिए किया जा सकता है, ताकि जीवन की परिस्थितियों का बेहतर ढंग से सामना किया जा सके। एक चिकित्सात्मक उपकरण के रूप में इसका प्रयोग लगभग सभी शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों के लिए किया जा सकता है, हालाँकि कुशल मार्गदर्शन में ही ऐसा किया जाना चाहिए। यदि व्यक्ति इसका उपयोग आध्यात्मिक अभ्यास के रूप में करना चाहता है, तो यह निश्चित रूप से उसकी प्रसुप्त शक्ति को जाग्रत कर उसे सुषुम्ना की ओर प्रेरित करने में सहायक होगा, जो

आध्यात्मिक जागरण का मार्ग है और साधक को गहन समाधि की अवस्था में ले जाता है।

यहाँ अभ्यास को तीन भागों में प्रस्तुत किया गया है – आरम्भिक, मध्यम और उच्च। इनमें से किसी भी स्तर के अभ्यास का प्रारम्भ करने से पूर्व यथोचित परामर्श ले लेना चाहिए। अगले चरण का अभ्यास करने के पहले पूर्व के प्रत्येक चरण में दक्षता प्राप्त हो जानी चाहिए, ताकि पूरक, रेचक और कुम्भक की अवधि को बिना किसी तनाव के नियंत्रित किया जा सके तथा अभ्यास के दो चक्रों के बीच अतिरिक्त श्वास लेने की आवश्यकता नहीं हो। उच्च स्तर के बड़े अनुपातों से किसी को घबराना नहीं चाहिए। उनमें दक्षता पाना कठिन है और वे केवल उन्नत साधकों के लिए हैं। जो अभ्यासी आरम्भिक तथा मध्यम स्तरों की सभी अवस्थाओं को योग्यतापूर्वक पूरा कर लेंगे, उन्हें शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्तरों पर अभ्यासों का पूरा लाभ मिलेगा। इसके आगे की साधना गुरु के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन में ही की जानी चाहिए।

सामान्य मार्गदर्शन

आसन – प्रारम्भिक चरणों के अभ्यास के लिए सुखासन, अर्द्धपद्मासन और वज्रासन में बैठा जा सकता है, लेकिन अधिक उन्नत अवस्थाओं में ये आसन शरीर को बाँध कर स्थिर नहीं रख पायेंगे। इसलिए सिद्धासन, सिद्धयोनि आसन, पद्मासन या स्वस्तिकासन जैसे ध्यान के किसी आसन में बैठना उत्तम होगा। अनुपात के साथ कुम्भक और बन्ध की उन्नत अवस्थाओं को करने का प्रयास तब तक नहीं करना चाहिए, जब तक पूरा अभ्यास आराम से एक स्थिर आसन में न होने लगे। किसी भी प्रकार का तनाव प्राण के मुक्त प्रवाह को अवरुद्ध करेगा और सजगता को बाधित करेगा। बीच-बीच में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पीठ, गरदन और सिर सीधे और स्थिर रहें। शरीर के किसी भी भाग में कम्पन नहीं होना चाहिए।

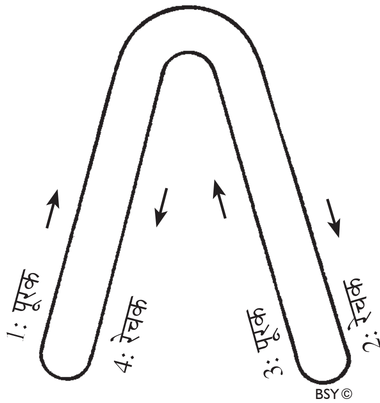
अभ्यास के चरण– यहाँ क्रमिक चरणों के साथ चार विधियों का वर्णन किया गया है, जिनके द्वारा आरम्भिक से उन्नत स्तर तक निर्विघ्न विकास सम्भव होगा। हालाँकि इसमें अधिक समय लगने की सम्भावना होती है। प्रत्येक चरण का अभ्यास कम-से-कम दो सप्ताह तक करना चाहिए, उसके बाद ही अगले चरण में जाना चाहिए। कुछ चरणों में निपुणता प्राप्त करने

में महीनों लग सकते हैं, इसलिए इसमें कोई शीघ्रता नहीं की जानी चाहिए। श्वसन के विभिन्न स्तरों में पूर्णता प्राप्त करने से ही अधिक लाभ होता है, उन्नत अवस्थाओं में शीघ्रता से आगे बढ़ने से नहीं। श्वसन तंत्र पर नियन्त्रण का विकास धीरे-धीरे होना चाहिए। शरीर तथा मन को श्वास एवं कुम्भक के विस्तार के साथ अनुकूलित होने के लिए थोड़ा समय देना चाहिए।

श्वसन-क्षमता के विस्तार की विधियाँ (अध्याय 16 – प्रारम्भिक श्वसन अभ्यास) जब आराम से होने लगती हैं, तब नाड़ीशोधन के प्रत्येक नये चरण का अभ्यास दोनों नासिकाओं से एकान्तर क्रम में करने के पूर्व दोनों नासिकाओं से एक साथ किया जा सकता है। प्रत्येक नये चरण का अभ्यास आरम्भ करने के पहले इस प्रकार से श्वसन करने का परामर्श दिया जाता है। दैनिक साधना में भी समुचित अनुपात में दोनों नासिकाओं से अभ्यास करने पर नाड़ीशोधन के वास्तविक अभ्यास से पहले श्वसन की लय उत्पन्न हो जाती है।

विधि 1 और 2 फेफड़ों तथा स्नायु तंत्र को विधि 3 और 4 के लिए तैयार करती हैं, जो अभ्यासी को अन्तर एवं बहिर्कुम्भक के लिए प्रवृत्त करती हैं। इस अभ्यास का पूरा लाभ समय से पहले ही उन्नत विधियों के साथ संघर्षरत रहने से नहीं, बल्कि प्रत्येक चरण को क्रमबद्ध ढंग से करने पर ही प्राप्त होता है। प्रत्येक चरण का पूरी तरह अनुभव और श्वास के नये स्वरूप में स्थिरता तथा स्नायु तंत्र, ऊर्जा-स्तरों, भावनाओं, मानसिक स्पष्टता एवं व्यक्तित्व के सूक्ष्म पक्षों पर इसके प्रभावों का अनुभव होना आवश्यक है।

श्वास – नये अभ्यासियों को नाड़ीशोधन के पूर्व उदर श्वसन से परिचित होना चाहिए। नाड़ीशोधन में ध्वनिरहित श्वसन का अभ्यास यह सुनिश्चित करने के लिए कराया जाता है कि श्वास को न तो बलपूर्वक लिया जाये और न ही उसे किसी प्रकार अवरुद्ध किया जाये। जब अभ्यासी इस विधि में प्रगति कर रहा हो, तब पूरक, रेचक एवं कुम्भक की अवधि का विस्तार आरामदायक सीमा के अन्दर ही होना चाहिए। अनुपात तथा अवधि के बढ़ने के साथ-साथ श्वसन अत्यन्त हल्का और सूक्ष्म हो जाता है। अधिक उन्नत चरणों में ऐसी अनुभूति होती है कि वायु नासिकाओं से अन्दर और बाहर केवल तैर रही है। यदि अभ्यासी श्वास के साथ शिथिल होने की क्षमता विकसित कर ले, तो विभिन्न चरणों में प्रगति आसान हो जाती है। शिथिलीकरण, लय तथा सजगता के मूल्य पर अनुपात और श्वास की लम्बाई का विस्तार नहीं होना चाहिए। पूरे अभ्यास में श्वास का प्रवाह निर्विघ्न और बिना झटके के होना चाहिए।



नाड़ीशोधन प्राणायाम

चक्रों की गिनती – दो पूर्ण श्वासों से नाड़ीशोधन का एक चक्र होता है – बायीं नासिका से पूरक, दायीं नासिका से रेचक, दायीं नासिका से पूरक और बायीं नासिका से रेचक। एक नियमगत प्रक्रिया के रूप में प्रत्येक चक्र बायीं नासिका से आरम्भ होता है। दैनिक अभ्यास में चक्रों की संख्या व्यक्ति और उपलब्ध समय पर निर्भर रहती है। सामान्य उद्देश्य के लिए पाँच से दस चक्र (10–15 मिनट प्रतिदिन) पर्याप्त हैं। यदि अभ्यासी अपने अभ्यास को बढ़ाना चाहता है, तो उसके शिक्षक ही सही परामर्श दे पायेंगे।

बन्ध – जालन्धर, उड्डियान एवं मूल बन्धों का उपयोग मध्यम और उच्च नाड़ीशोधन के अभ्यासों में किया जाता है। इन बन्धों का वर्णन परिशिष्ट 4 में किया गया है। इन्हें नाड़ीशोधन के अभ्यास में सम्मिलित करने का प्रयास करने से पहले इनका स्वतन्त्र रूप से अभ्यास कर लेना चाहिए।

सावधानियाँ – नाड़ीशोधन के अभ्यास को न तो शीघ्रतापूर्वक करना चाहिए और न ही बलपूर्वक। साधक को कुशल योग शिक्षक के मार्गदर्शन में सावधानीपूर्वक आगे बढ़ना चाहिए। किसी भी प्रकार की तकलीफ़ के हल्के संकेत पर ही पूरक/रेचक/कुम्भक की अवधि को कम कर देना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो कुछ दिनों के लिए अभ्यास को बन्द कर देना चाहिए। नये अभ्यासियों के लिए कुम्भक के बिना पूरक और रेचक में 1:2 का अनुपात अनुकूल रहेगा। जो व्यक्ति उच्च रक्तचाप, हृदय रोग या पेप्टिक अल्सर से पीड़ित हों, उन्हें अभ्यास के इस स्तर से आगे नहीं बढ़ना चाहिए। पूरक और रेचक का अनुपात हमेशा 1:2 ही रहना चाहिए, भले ही गिनती या कुम्भक की अवधि कुछ भी हो। कभी मुँह से श्वास नहीं लेनी चाहिए।

सजगता – नाड़ीशोधन करते समय मन इधर-उधर भटक सकता है। अभ्यास के साथ गिनती करते समय भटकने की इस प्रवृत्ति के प्रति सजग रहना चाहिए। इससे सजगता स्वत: अभ्यास पर वापस आ जाती है। पूरे अभ्यास के दौरान सजगता श्वास और गिनती पर केन्द्रित रहनी चाहिए। आध्यात्मिक

सजगता आज्ञा चक्र पर होनी चाहिए। किसी मंत्र के उपयोग से इस प्रक्रिया में सहायता मिलेगी। जब आप एक पशु को एक मजबूत रस्सी से किसी खम्भे के साथ बाँध देते हैं, तो वह भाग नहीं सकता है; इसी प्रकार जब नाड़ीशोधन का अभ्यास मंत्र के साथ किया जाता है तब मन नहीं भाग सकता है। प्रारम्भ में जब प्राणिक क्षमता कम होती है तब ॐ मंत्र का प्रयोग करना आसान होता है, लेकिन जब पूरक की गिनती 24 तक पहुँच गयी हो तब गायत्री मंत्र (अध्याय 7 – 'प्राण एवं मंत्र' देखें) का उपयोग किया जा सकता है।

क्रम – नाड़ीशोधन का अभ्यास षट्कर्म और आसन के बाद तथा अन्य प्राणायामों के पहले करना चाहिए। यदि एक नासिका बन्द हो, तो नासवरोध को दूर करने के लिए अभ्यासी को अभ्यास आरम्भ करने के पहले जल नेति या श्वास सन्तुलित करने वाले अभ्यास करने चाहिए। नाड़ीशोधन के उन्नत अभ्यासों में कुम्भक को लम्बा करने के लिए कभी-कभी इसके पूर्व भस्त्रिका प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है। सूर्योदय काल अभ्यास के लिए सर्वोत्तम होता है, हालाँकि भोजन के बाद के समय के अतिरिक्त इसे दिन में कभी भी किया जा सकता है।

हाथ की स्थिति – नासाग्र/नासिकाग्र मुद्रा

नाड़ीशोधन के समय हाथ की स्थिति को नीचे दर्शाया गया है, जो क्रम से एक के बाद दूसरी नासिका से श्वसन में नासिकाओं को निर्विघ्न रूप से खोलने और बन्द करने में सहायक होती है।



विधि

दाहिने हाथ को चेहरे के सामने लायें। तर्जनी और मध्यमा अँगुलियों के छोरों को धीरे से भ्रूमध्य में रखें।

दोनों अँगुलियाँ शिथिल रहनी चाहिए।

अँगूठे को दायीं नासिका के ठीक ऊपर और अनामिका को बायीं नासिका के ठीक ऊपर रखें। ये दोनों अँगुलियाँ क्रम से एक के बाद दूसरी नासिका को दबाती और छोड़ती हुई नासिकाओं में श्वास के प्रवाह को नियन्त्रित करती हैं।

कनिष्ठिका अँगुली को अनामिका की बगल में रखा जाता है।

लम्बे समय तक अभ्यास करने के लिए दायीं केहुनी को बायीं हथेली का सहारा दिया जा सकता है। लेकिन इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक है कि सिर, गर्दन और पीठ सीधे रहें ताकि वक्ष संकुचित नहीं हो।



प्रकारान्तर

अभ्यास टिपण्णी – एक नासिका को बन्द करते समय अँगुली को नासिका के ऊपर या नासिका छिद्र के नीचे धीरे से रखना चाहिए। नाक की बगल वाली दीवार को दबा कर नासापट से नहीं सटाना चाहिए, क्योंकि इससे नासिका के अन्दर की तंत्रिकाएँ दूसरी नासिका में प्रवाहित हो रही श्वास से प्रभावित होने वाली तंत्रिकाओं से प्रतिस्पर्धा करने लगेंगी।

नये अभ्यासियों का स्तर

नाड़ीशोधन की निम्नलिखित दो विधियों का अभ्यास प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है और इनका उपयोग दैनिक जीवन में शारीरिक एवं मानसिक सन्तुलन बनाये रखने के साथ-साथ उपचार के लिए भी किया जा सकता है।

विधि 1 – आरम्भिक अभ्यास

चरण 1 – ध्यान के किसी सुविधाजनक आसन में बैठ जायें, जैसे, सिद्धासन/ सिद्धयोनि आसन या पद्मासन। सिर और मेरुदण्ड को सीधा रखें।

पूरे शरीर को शिथिल करें और आँखों को बन्द कर लें।

कुछ समय तक यौगिक श्वसन करें।

दाहिने हाथ को नासाग्र मुद्रा में रखें और बायें हाथ को घुटने पर चिन् या ज्ञान मुद्रा में रखें।

अँगूठे से दाहिनी नासिका को बन्द करें और बायीं नासिका से 5 बार श्वास लें और छोड़ें।

श्वास-प्रश्वास की गति सामान्य रहे। प्रत्येक श्वास के प्रति सजग रहें।

5 बार श्वास-प्रश्वास करने के बाद दाहिनी नासिका से अँगूठा हटा लें और बाँयीं नासिका को अनामिका से दबा कर श्वास प्रवाह को रोकें।

श्वास-प्रश्वास की गति को सामान्य रखते हुए दाहिनी नासिका से 5 बार श्वास लें और छोड़ें।

हाथ नीचे कर लें और श्वास-प्रश्वास की गति को सामान्य रखते हुए दोनों नासिका-छिद्रों से एक साथ 5 बार श्वसन करें।

यह एक चक्र हुआ।

5 चक्र अभ्यास करें। यह सुनिश्चित करें कि नासिका-छिद्रों से श्वास-प्रवाह के समय कोई आवाज न हो।

अगले चरण का अभ्यास आरम्भ करने के पूर्व इस चरण में निपुणता प्राप्त कर लें।

चरण 2 – प्रत्येक श्वास की अवधि को नियंत्रित करना प्रारम्भ करें।

बिना जोर लगाये गहरी श्वास लें।

बाँयीं, दाँयीं और दोनों नासिकाओं से पूरक और रेचक की लम्बाई को गिनती से मापें।

पूरक करते समय मानसिक रूप से, "1, ॐ; 2, ॐ; 3, ॐ", गिनें जब तक आराम से पूरक कर सकें।

रेचक करते समय, "1, ॐ; 2, ॐ; 3, ॐ", गिनें।

पूरक और रेचक की लम्बाई बराबर होनी चाहिए।

5 चक्र अभ्यास करें।

श्वसन क्रिया ध्वनिरहित होनी चाहिए।

अभ्यास टिप्पणी – कुछ दिनों के अभ्यास के उपरान्त श्वास की लम्बाई स्वत: बढ़ जायेगी। जब बिना किसी तनाव के गिनती 10 तक पहुँच जाये तब विधि 2 का अभ्यास करना चाहिए।

सावधानी – सर्दी, खाँसी या बुखार होने पर नाड़ीशोधन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ – यह नासिकाओं में श्वास के प्रति सजगता और संवेदनशीलता की वृद्धि करता है। इसके द्वारा हल्के अवरोध दूर हो जाते हैं। मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों को क्रियाशील बनाते हुए यह दोनों नासिकाओं में श्वास के प्रवाह को सन्तुलित करता है। चरण 2 का लम्बा, धीमा, सन्तुलित श्वसन ऊर्जा पर शान्तिदायक और सन्तुलनकारी प्रभाव डालता है।

विधि 2 – एकान्तर नासिका श्वसन

इस विधि में एकान्तर नासिका श्वसन की मूल प्रक्रिया को स्थिर बनाया जाता है।

चरण 1 – 1:1 के अनुपात में बराबर गिनती करते हुए पूरक और रेचक प्रारम्भ करें।

अँगूठे से दाहिनी नासिका को बन्द करें और बायीं नासिका से श्वास लें। साथ-ही आराम से पूरक की समाप्ति तक मानसिक गिनती करें, "1, ॐ; 2, ॐ; 3, ॐ।" यह मौलिक गिनती है।

गहरा श्वसन करें। अधिक जोर न लगायें।

अब बायीं नासिका को अनामिका से बन्द कर लें, दाहिनी नासिका से अँगूठा हटायें और श्वास छोड़ने के साथ-साथ पुन: गिनती करें, "1, ॐ; 2, ॐ; 3, ॐ।" श्वास और प्रश्वास का समय बराबर रहना चाहिए। इसके बाद, दाहिनी नासिका से श्वास लें, इतनी ही गिनती तक इसी प्रकार श्वास लें। पूरक के अन्त में दाहिनी नासिका बन्द कर लें, बायीं नासिका खोल दें और बायीं नासिका से ही, पहले की तरह गिनती करते हुए श्वास छोड़ें। यह एक चक्र पूरा हुआ।

5 से 10 चक्र अभ्यास करें ।

अभ्यास टिप्पणी – यदि एक सप्ताह के बाद कोई कठिनाई नहीं हो, तो पूरक/रेचक की लम्बाई को एक की गिनती से बढ़ा दें। इसी प्रकार गिनती को बढ़ाते हुए 10:10 तक ले जायें। श्वास पर किसी प्रकार बल प्रयोग न करें। यह ध्यान रहे कि श्वास की कमी को पूरा करने के लिए रेचक की गिनती को शीघ्रतापूर्वक नहीं किया जाये। असुविधा का थोड़ा भी संकेत मिलने पर गिनती को कम कर दें।

चरण 2 – ऊपर के अनुपात में दक्षता प्राप्त हो जाने पर, 1:1 के अनुपात को 1:2 में बदला जा सकता है।

शुरू में पूरक की लम्बाई को आधा कर दें। 5 की गिनती तक श्वास लें और 10 की गिनती तक श्वास छोड़ें, फिर दूसरी तरफ से दुहराएँ।

यह एक चक्र हुआ। 5 – 10 चक्र तक अभ्यास करें।

अभ्यास टिप्पणी – बाद के अभ्यास में पूरक में एक मात्रा तथा रेचक में दो मात्रा जोड़ते हुए, 10:20 की गिनती तक श्वास की लम्बाई को बढ़ाते जाएँ। गिनती को धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए।

सावधानियाँ – दूसरी विधि के दूसरे चरण में अन्तर्मुखता की प्रक्रिया शुरू हो जाती है, जो अवसाद से पीड़ित अथवा अन्तर्मुखी व्यक्तियों के लिए वाँछनीय नहीं है। हृदय रोग से पीड़ित व्यक्तियों को दूसरे चरण के आगे का अभ्यास, जहाँ गिनती को बढ़ाया जाता है, करने की सलाह नहीं दी जाती है।

लाभ – विधि 2 श्वास और मस्तिष्क के गोलार्द्धों में अधिक प्रभावशाली सन्तुलन लाती है। यह शान्तिप्रद है, तनाव दूर करती है, एकाग्रता में सुधार लाती है और आज्ञा चक्र को उद्दीप्त करती है। चरण 1 का 1:1 का अनुपात मस्तिष्क एवं हृदय में शान्तिप्रद लय उत्पन्न करता हुआ हृदय रोगों एवं स्नायु सम्बन्धी व्याधियों में विशेष रूप से और तनाव सम्बन्धी समस्याओं में सामान्य रूप से लाभ पहुँचाता है। गिनती को बढ़ाने पर श्वास की गति धीमी हो जाती है। श्वसन अधिक कुशलतापूर्वक चलने लगता है, क्योंकि वायु का प्रवाह निर्विघ्न हो जाता है और उसमें उथल-पुथल कम हो जाती है। यह अनुपात दमा, एम्फ़िसेमा और ब्रॉन्काइटिस जैसी श्वसन सम्बन्धी समस्याओं से पीड़ित लोगों के लिए लाभप्रद होता है। चरण 2 का 1:2 का अनुपात पर्याप्त रूप से शिथिलता प्रदान करता है। हृदय गति और नब्ज़ धीमी हो जाती है, और रक्तचाप भी कम हो जाता है।

मध्यम स्तर

इस स्तर पर अन्तर्कुम्भक को सम्मिलित किया जाता है। कुम्भक प्राणायाम का उद्देश्य होता है, क्योंकि यह आध्यात्मिक शक्ति को क्रियाशील बनाता है। कुछ समय के बाद लम्बे कुम्भक के लिए शरीर तथा मन को अनुकूलित करने के लिए प्रत्येक स्तर पर दक्षता की आवश्यकता होती है। रक्त में कार्बन-डाइऑक्साइड की मात्रा में थोड़ी वृद्धि होने पर श्वास लेने या छोड़ने का संकेत नहीं देने के लिए मस्तिष्क प्रशिक्षित हो जाता है। अब बन्धों को भी सम्मिलित कर लिया जाता है। ये शक्ति को अन्दर ही बाँध कर रखते हैं ताकि शरीर और मन में इसका बिखराव न हो, साथ-ही उसे सुषुम्ना की ओर प्रेषित कर देते हैं।

विधि 3 – अन्तर्कुम्भक के साथ

इस विधि में अन्तर्कुम्भक को सम्मिलित किया जाता है। पूरक और रेचक धीमा, निर्बाध तथा नियन्त्रित होना चाहिए।

चरण 1 – पूरक, अन्तर्कुम्भक तथा रेचक के अनुपात को बराबर रखते हुए श्वास लेना आरम्भ करें।

दाहिने नासिकाछिद्र को बन्द करें और बायें नासिकाछिद्र से धीरे-धीरे 5 की गिनती तक पूरक करें।

पूरक के अन्त में दोनों नासिकाछिद्रों को बन्द कर लें और 5 की गिनती तक श्वास को फेफड़ों में रोके रखें।

दाहिने नासिकाछिद्र को खोल दें और 5 की गिनती तक रेचक करें।

रेचक के अन्त में, बायें नासिकाछिद्र को बन्द रखते हुए 5 की गिनती तक दाहिने नासिकाछिद्र से पूरक करें।

पुन: दोनों नासिकाछिद्रों को बन्द कर 5 की गिनती तक अन्तर्कुम्भक करें, फिर बायें नासिकाछिद्र को खोलें और 5 की गिनती तक रेचक करें।

5:5:5 के अनुपात में अभ्यास का यह एक चक्र हुआ।

गिनती और श्वास-प्रश्वास के प्रति निरन्तर सजगता बनाए रखें।

5 से 10 चक्र अभ्यास करें।

अभ्यास टिप्पणी – जब 5:5:5 का अनुपात आरामदायक हो तब गिनती को बढ़ाया जा सकता है। धीरे-धीरे पूरक, कुम्भक और रेचक की गिनती में एक-एक इकाई बढ़ाते जायें। तब एक चक्र की गिनती 6:6:6 हो जायेगी। जब इसमें निपुणता आ गयी हो और किसी प्रकार की तकलीफ़ नहीं होती हो तब इसे बढ़ा कर 7:7:7 कर दें। गिनती के 10:10:10 होने तक इसे जारी रखें। श्वास पर बल प्रयोग नहीं करें। तनाव के हल्के संकेत पर ही गिनती को कम कर दें।

चरण 2 – 1:1:1 के अनुपात में दक्षता प्राप्त हो जाने पर इस अनुपात को 1:1:2 कर दें। आरम्भ में कम गिनती का प्रयोग करें।

5 की गिनती तक पूरक, 5 की गिनती तक अन्तर्कुम्भक और दस की गिनती तक रेचक करें।

अभ्यास टिप्पणी – 5:5:10 की गिनती में निपुण हो जाने पर धीरे-धीरे पूरक और कुम्भक की गिनती में एक-एक इकाई तथा रेचक में दो इकाई बढ़ाते जायें। तब एक चक्र की गिनती 6:6:12 हो जायेगी। जब इसमें निपुणता आ गयी हो और किसी प्रकार की तकलीफ़ नहीं होती हो, तब इसे बढ़ा कर 7:7:14 कर दें। कई महीनों के अभ्यास में गिनती को तब तक बढ़ाते जायें जब तक वह 10:10:20 न हो जाये।

चरण 3 – अनुपात को बढ़ा कर 1:2:2 कर दें।

5 की गिनती तक पूरक, 10 की गिनती तक अन्तर्कुम्भक और 10 की गिनती तक रेचक करें।

जब तक अनुपात और गिनती सुविधापूर्वक न होने लगे तथा कुम्भक अथवा रेचक के दौरान श्वास की कमी के कारण शीघ्रतापूर्वक गिनती करने की आवश्यता न पड़े, अभ्यास जारी रखें।

अभ्यास टिप्पणी – जब इसमें दक्षता प्राप्त हो जाये तब धीरे-धीरे पूरक की गिनती में एक इकाई और कुम्भक तथा रेचक की गिनती में दो-दो इकाई बढ़ाते जायें। तब एक चक्र की गिनती 6:12:12 हो जायेगी। इसी प्रकार गिनती को धीरे-धीरे 10:20:20 तक बढ़ायें।

चरण 4 – अनुपात को बढ़ा कर 1:3:2 कर दें।

पूरक की गिनती को कम करके 5 कर दें। 15 की गिनती तक अन्तर्कुम्भक तथा 10 की गिनती तक रेचक करें। जब तक अनुपात सुविधाजनक न हो जाए तथा श्वास की कमी को पूरा करने के लिए अन्तर्कुम्भक अथवा रेचक के समय गिनती को तेज करने की आवश्यकता न पड़े, अभ्यास जारी रखें।

अभ्यास टिप्पणी – जब इसमें दक्षता प्राप्त हो गयी हो और किसी प्रकार की तकलीफ़ नहीं होती हो, तब धीरे-धीरे पूरक की गिनती में एक इकाई, कुम्भक में तीन इकाई और रेचक में दो इकाई बढ़ाते जायें। तब एक चक्र की गिनती 6:18:12 हो जायेगी। इसी प्रकार गिनती को धीरे-धीरे 10:30:20 तक बढ़ायें।

चरण 5 – अनुपात को बढ़ा कर 1:4:2 कर दें।

5:20:10 की गिनती से शुरू करें। जब इस गिनती से अभ्यास सहजता से होने लगे, तब इसे क्रमश: बढ़ाते जाएँ।

अभ्यास टिप्पणी – पूरक की गिनती में एक इकाई, कुम्भक में चार इकाई और रेचक में दो इकाई बढ़ाते जायें। तब एक चक्र की गिनती 6:24:12 हो जायेगी। इसी प्रकार गिनती को धीरे-धीरे 10:40:20 तक बढ़ायें।

सावधानियाँ – विधि 3 का अभ्यास स्त्रियों की गर्भावस्था के उत्तरार्द्ध के लिए उचित नहीं है। हृदय सम्बन्धी समस्याओं, उच्च रक्तचाप, एम्फ़िसेमा या किसी भी गम्भीर व्याधि से पीड़ित लोगों को इसका परामर्श नहीं दिया जाता है। दमा से पीड़ितों को चरण 2 से आगे के अभ्यासों को करने का परामर्श नहीं दिया जाता है।

लाभ – अन्तर्कुम्भक, जो विधि 3 की विशेषता है, मस्तिष्क के विभिन्न केन्द्रों को क्रियाशील बनाता और प्राणों में समस्वरता लाता है। अनुपात में वृद्धि के साथ लाभ में वृद्धि होती है। योग शास्त्रों में 1:4:2 के अनुपात का सर्वाधिक व्यापकता के साथ अनुमोदन किया गया है। इसका गहरा मनोवैज्ञानिक तथा प्राणिक प्रभाव पड़ता है और इसका उपयोग कुण्डलिनी जागरण की तैयारी के लिए किया जाता है।

बन्धों के साथ उच्च अभ्यास

तीन बन्धों – जालन्धर, मूल एवं उड्डियान को निम्नलिखित अभ्यासों में सम्मिलित किया जायेगा। बन्धों को सम्मिलित करने के पूर्व प्रत्येक बन्ध में पूर्णता प्राप्त करने के लिए एक-एक का अलग से अभ्यास करना होगा। बन्धों के विस्तृत विवरण के लिए परिशिष्ट 4 देखें। जब बन्धों को सम्मिलित किया जा रहा हो तब अनुपात तथा गिनती को कम कर देना चाहिए ताकि किसी भी प्रकार के तनाव से बचा जा सके। जैसा कि पहले निर्देश दिया गया है, उसी प्रकार गिनती को धीरे-धीरे बढ़ायें।

जालन्धर बन्ध के साथ

अभ्यास की गिनती को कम कर दें।
बायें नासिकाछिद्र से पूरक करें, फिर अन्तर्कुम्भक के साथ जालन्धर बन्ध लगायें।
जालन्धर बन्ध खोलें और दायें नासिकाछिद्र से रेचक करें।
दायें नासिकाछिद्र से पूरक करें।
अन्तर्कुम्भक के साथ जालन्धर बन्ध लगायें।
जालन्धर बन्ध खोलें और बायें नासिकाछिद्र से रेचक करें।
यह एक चक्र हुआ। इस प्रकार 5 से 10 चक्र अभ्यास करें।
जब बिना तनाव के बन्ध को लगाए रख सकें तब धीरे-धीरे गिनती को बढ़ायें।

जालन्धर एवं मूल बन्ध के साथ

अभ्यास की गिनती को कम कर दें।
बायें नासिकाछिद्र से पूरक करें।

दोनों नासिकाछिद्रों को बन्द करें और अन्तर्कुम्भक लगायें।
पहले जालन्धर बन्ध लगायें, फिर मूल बन्ध।
श्वास को अन्दर रोके रखें।
पहले मूल बन्ध खोलें, फिर जालन्धर बन्ध खोलें।
दायें नासिकाछिद्र से रेचक करें।
दायें नासिकाछिद्र से पूरक करें और अन्तर्कुम्भक लगायें।
जालन्धर बन्ध और मूल बन्ध लगायें।
पहले मूल बन्ध और फिर जालन्धर बन्ध खोंलें।
बायें नासिकाछिद्र से रेचक करें।
यह एक चक्र हुआ। 5 – 10 चक्र अभ्यास करें।
जब बिना किसी तनाव के बन्धों को लगाये रख सकें तब धीरे-धीरे गिनती को बढ़ायें।

सावधानियाँ – बन्धों के साथ नाड़ीशोधन प्राणायाम का अभ्यास एक योग्य शिक्षक अथवा गुरु के मार्गदर्शन में किया जाना चाहिए।

लाभ – यह अभ्यास प्राण-शक्ति को शुद्ध तथा संतुलित करता है।

उच्च स्तर

इस स्तर पर श्वास पर पूर्ण नियन्त्रण की आवश्यकता होती है, क्योंकि यहाँ बहिर्कुम्भक को सम्मिलित किया जाता है। पूरक बढ़ते हुए अनुपात का आधार होता है। अभ्यासी को अनुपात बढ़ाने की शीघ्रता में पूरक को जल्दी-जल्दी और रेचक एवं कुम्भक को छोटा करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। पूरक में श्वास स्थिर और ध्वनिरहित होनी चाहिए, तथा प्रत्येक चक्र के लिए समान गिनती होनी चाहिए। तब अभ्यास का समय नियत रह पायेगा। अगले चरण का अभ्यास आरम्भ करने के पूर्व अभ्यासी को पहले के प्रत्येक चरण में दक्षता प्राप्त कर लेनी चाहिए। इस स्तर पर श्वास के अनुपात को दृढ़ करने में अधिक समय लग जाता है। अभ्यासी एक चक्र तो सुविधापूर्वक कर सकता है, लेकिन अगले चक्र में वह हाँफने लग सकता है। प्रत्येक चरण में निपुणता प्राप्त करने में हफ़्तों या महीनों लग सकते हैं।

कार्बन-डाइऑक्साइड का स्तर कम करने के लिए पहले ही भस्त्रिका प्राणायाम का अभ्यास कर लेना चाहिए, ताकि अनुपात का विस्तार आराम से हो। अभ्यासी को पहले बिना बन्ध के ही प्रत्येक चरण में दक्ष हो जाना

चाहिए। तत्पश्चात् अगले चरण का अभ्यास आरम्भ करने के पहले बन्ध के साथ अभ्यास किया जा सकता है। अपनी क्षमता के अनुसार गिनती को धीरे-धीरे बढ़ाया जाना चाहिए। अभ्यास के अनुभव के आधार पर अपने स्तर के अनुकूल उचित अनुपात का निर्धारण किया जा सकता है। अभ्यास के इस स्तर का अंतिम परिणाम श्वास का स्वत: अवरुद्ध होना, अर्थात् केवल कुम्भक है, जो मन को गहरे ध्यान की स्थिति में ले आता है। अभ्यास, विश्वास एवं परिश्रम से यह अवस्था निस्संदेह प्राप्त होगी।

विधि 4 – अन्तर् एवं बहिर्कुम्भक के साथ

इस विधि में बहिर्कुम्भक को जोड़ा जाता है। सहज लगने पर भी शुरू में अधिक देर तक श्वास बाहर रोकने का प्रयास न करें।

चरण 1– 1:1:1:1 के अनुपात तथा 5:5:5:5 की गिनती से शुरू करें।

5 तक गिनती करते हुए बायें नासिकाछिद्र से श्वास लें।

5 की गिनती तक अन्तर्कुम्भक करें।

5 तक गिनती करते हुए दाहिने नासिकाछिद्र से श्वास छोड़ें।

श्वास छोड़ने के बाद, दोनों नासिकाछिद्रों को बन्द कर 5 की गिनती तक श्वास को बाहर रोकें।

वायु को बाहर रोकने के लिए कण्ठद्वार को थोड़ा संकुचित करें। श्वास लेने के ठीक पहले दाहिने नासिकाछिद्र से थोड़ी श्वास छोड़ें। इससे फेफड़ों एवं कण्ठद्वार के अवरोध दूर हो जायेंगे और श्वसन प्रणाली पहले की तरह सहजता से अपना कार्य प्रारम्भ कर देगी।

5 की गिनती तक दाहिने नासिकाछिद्र से धीरे-धीरे श्वास लें।

अन्तर्कुम्भक करते हुए 5 की गिनती तक श्वास को भीतर रोकें।

5 तक गिनती करते हुए बायें नासिकाछिद्र से श्वास छोड़ें।

पुन: दोनों नासिकाछिद्रों को बन्द कर बहिर्कुम्भक करते हुए श्वास को 5 की गिनती तक बाहर रोकें।

दूसरा चक्र आरम्भ होने पर श्वास लेने के ठीक पहले यदि आवश्यक हो तो दाहिने नासिकाछिद्र से थोड़ी श्वास बाहर छोड़ें।

यह एक चक्र हुआ। 5 चक्र अभ्यास करें।

अभ्यास टिप्पणी– जब सुगम गिनती के साथ अनुपात बनाए रख सकें, तब धीरे-धीरे 1 इकाई पूरक में, 1 अन्तर्कुम्भक में, 1 रेचक में तथा 1

बहिर्कुम्भक में जोड़ कर इसे बढ़ा दें। गिनती को धीरे-धीरे बढ़ायें, 5 से 6, फिर 6 से 7, इस प्रकार तब तक बढ़ाते जायें जब तक गिनती 10:10:10:10 तक न पहुँच जाये। जब तक रेचक और कुम्भक सुगमता से न होने लगें, तब तक गिनती को न बढ़ायें।

चरण 2 – आगे का अनुपात 1:1:2:1 है। इसे कम गिनती के साथ शुरू करना चाहिए और पहले बतायी गयी विधि के अनुसार धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। 5:5:10:5 की गिनती से शुरू करें।

अभ्यास टिप्पणी– जब यह अनुपात सहजता से होने लगे, गिनती को धीरे-धीरे बढ़ा सकते हैं। एक इकाई पूरक में, एक अन्तर्कुम्भक में, दो रेचक में तथा एक बहिर्कुम्भक में जोड़ दें। इस प्रकार एक चक्र में गिनती 6:6:12:6 हो जायेगी। कुछ समय के पश्चात् गिनती को धीरे-धीरे बढ़ाया जा सकता है। जब तक रेचक तथा कुम्भक सुगमता से न होने लगें, गिनती को न बढ़ायें।

चरण 3 – आगे का अनुपात 1:2:2:1 है। 5:10:10:5 की गिनती से शुरू करें। गिनती को तभी बढ़ायें जब रेचक और कुम्भक सुगमता से होने लगें।

चरण 4 – आगे का अनुपात 1:2:2:2 है। 5:10:10:10 की गिनती से शुरू करें। बिना जोर लगाये गिनती को धीरे-धीरे बढ़ाते जायें।

चरण 5 – आगे का अनुपात 1:3:2:2 है। 5:15:10:10 की गिनती से शुरू करें। बिना जोर लगाये गिनती को धीरे-धीरे बढ़ाते जायें।

चरण 6 – अन्तिम अनुपात 1:4:2:2 है।
5:20:10:10 की गिनती से शुरू करें।
गिनती को बिना किसी तनाव के धीरे-धीरे बढ़ायें।

बन्धों को सम्मिलित करना

जब विधि 4 में दक्षता प्राप्त हो जाये, तब इसे जालन्धर, मूल और उड्डियान बन्धों के साथ किया जा सकता है। पहले केवल जालन्धर बन्ध का अभ्यास अन्तर् और बहिर्कुम्भक के साथ करें। जब इस अभ्यास में निपुणता प्राप्त हो जाये तब जालन्धर और मूल बन्धों को अन्तर् और बहिर्कुम्भक के साथ करें। इसके बाद जालन्धर और मूल बन्धों को अन्तर्कुम्भक के साथ तथा महाबन्ध को बहिर्कुम्भक के साथ करें।

प्रकारान्तर – अनुलोम विलोम

अनुलोम विलोम नाड़ीशोधन प्राणायाम का मानसिक अनुकूलन है, और इसका सूक्ष्म तथा सन्तुलनकारी प्रभाव होता है। सरल नाड़ीशोधन का अभ्यास नासाग्र मुद्रा के साथ नहीं, बल्कि मन और कल्पना की सहायता से किया जाता है। यह विधि सूक्ष्म रूप से मन की शक्ति को दर्शाती है। भले ही प्रारम्भ में एक के बाद दूसरी नासिका में श्वास की कल्पना की जाये, लेकिन कुछ समय के बाद केवल मानसिक आदेश से नासिकाओं में श्वास के वास्तविक प्रवाह का अनुभव होने लगता है। इस विधि का लाभ यह है कि इसका अभ्यास अपनी दैनिक साधना में तो किया ही जा सकता है, साथ ही अन्य समय में भी इसे किया जा सकता है। इसे बैठ कर, लेट कर या चलते हुए भी किया जा सकता है।

अनुलोम विलोम का अभ्यास नाड़ीशोधन के आरम्भिक और मध्यम स्तरों के रूप में किया जा सकता है। जब अभ्यासी उच्च स्तर पर पहुँचता है तब श्वसन अत्यन्त सूक्ष्म हो जाना चाहिए, और ऐसे में अनुलोम विलोम सतही प्रतीत होने लगता है। स्नायु तंत्र पर अनुलोम विलोम का शान्तिप्रद प्रभाव होता है, इसलिए तनावपूर्ण परिस्थितियों में इसे बिना दूसरों की जानकारी के भी किया जा सकता है। यह तत्काल शान्ति प्रदान करता है और बिना किसी प्रतिकूल प्रभाव के मानसिक स्पष्टता तथा सजगता में वृद्धि करता है।

विधि

किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें।

आँखें बन्द करें और सम्पूर्ण शरीर को शिथिल कर लें।

श्वसन प्रक्रिया के प्रति पूरी तरह सजग हो जायें।

अनुभव करें कि श्वास के अतिरिक्त कुछ भी विद्यमान नहीं है।

मानसिक रूप से श्वास को बायीं नासिका के अन्दर और बाहर निर्दिष्ट करें।

प्रारम्भ में कल्पना के उपयोग की आवश्यकता हो सकती है।

एक या दो मिनटों तक मानसिक रूप से बायीं नासिका से श्वसन जारी रखें और फिर इसी प्रक्रिया को दायीं नासिका से दुहरायें।

अनुभव करें कि श्वास का सम्पूर्ण प्रवाह केवल दायीं नासिका से अन्दर और बाहर आ-जा रहा है।

एक या दो मिनटों तक मानसिक रूप से दायीं नासिका से श्वसन जारी रखें और पूरे अभ्यास के दौरान श्वास के प्रति सजग रहें।

अब मानसिक रूप से श्वास को एक के बाद दूसरी नासिका में निर्दिष्ट करें।

मानसिक रूप से बायीं नासिका से पूरक करें और दायीं नासिका से रेचक करें।

उसके बाद मानसिक रूप से दायीं नासिका से पूरक करें और बायीं नासिका से रेचक करें।

यह अनुलोम विलोम का एक चक्र हुआ।

ऐसे 27 चक्रों का या जितना आवश्यक हो, उतने का अभ्यास करें।

प्रकान्तर – प्राण शुद्धि

किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें।

आँखें बन्द करें और सम्पूर्ण शरीर को शिथिल कर लें।

श्वसन प्रक्रिया के प्रति पूरी तरह सजग हो जायें।

अब कल्पना करें कि दोनों नासिकाओं से श्वास का प्रवाह अँगरेजी अक्षर v के उलटे आकार में ऊपर और नीचे आ-जा रहा है।

पूरक के अन्त में श्वास के दो प्रवाह भ्रूमध्य में जाकर मिलते हैं।

रेचक के दौरान दो प्रवाह भ्रूमध्य से निकल कर v के आकार के मार्ग से नीचे जाते हैं।

मानस-दर्शन को जारी रखने के लिए कल्पना और सजगता आवश्यक है।

एक पूरक और रेचक से एक चक्र हुआ। 27 चक्र अभ्यास करें।

अभ्यास टिप्पणी – ये अभ्यास एकाग्र होने और सजगता को बढ़ाने में सहायक होते हैं। अभ्यासी 54 या 27 से आरम्भ कर शून्य तक जाते हुए प्रत्येक चक्र की मानसिक रूप से गिनती कर सकता है। सजगता मानस-दर्शन, नासिकाओं में श्वास के प्रवाह के अनुभव और गिनती पर केन्द्रित रहनी चाहिए।

नाड़ीशोधन का शरीरविज्ञान

नाड़ीशोधन प्राणायाम एक के बाद दूसरे गोलार्द्धों को उद्दीप्त करता हुआ मस्तिष्क के क्षेत्र को प्रभावित करता है। नासिकाओं में श्वास का प्रवाह

नासिकाओं के अन्दर श्लेष्मा स्तरों के ठीक नीचे स्थित स्नायु के छोरों के माध्यम से मस्तिष्क के विपरीत भाग को उत्प्रेरित करता है। शरीर के दाएँ और बाएँ भाग क्रमश: मस्तिष्क के बाएँ और दाएँ गोलार्द्धों से निकलने वाली तंत्रिकाओं द्वारा संचालित होता है। श्वास के प्रवाह के द्वारा नासिकाओं का उत्प्रेरण मस्तिष्क के विपरीत भाग में तंत्रिकाओं की क्रियाशीलता को बढ़ा देता है।

स्वैच्छिक तंत्रिका तंत्र भी इस अभ्यास के द्वारा उत्प्रेरित और विश्रान्त होता है। दायीं नासिका में श्वास के प्रवाह को बढ़ा देने पर अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र उत्प्रेरित होता है। इससे हृदय की गति बढ़ जाती है, हथेलियों में पसीना आने लगता है, आँखों की पुतलियाँ फैल जाती हैं और फेफड़े फैल जाते हैं – अर्थात् संकट के समय में होने वाली प्रतिक्रियायें होने लगती हैं। बायीं नासिका में श्वास का प्रवाह बढ़ाने पर परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र उत्प्रेरित हो जाता है। इससे हृदय की गति धीमी हो जाती है, शरीर शिथिल हो जाता है और पाचन अच्छी तरह होता है।

नाड़ीशोधन के अभ्यास से आयनों के क्षेत्र में समता आ जाती है। इड़ा नाड़ी ऋणात्मक आयनों का और पिंगला नाड़ी धनात्मक आयनों का भण्डार होती है। नाड़ीशोधन के अभ्यास के दौरान जब बायीं नासिका से पूरक किया जाता है तब इड़ा नाड़ी में ऋणात्मक आयनों का संघनन अपनी मूल स्थिति से तुरंत बढ़ जाता है। तत्पश्चात् यह अपनी चरम स्थिति में पहुँच जाता है और वहाँ से धीरे-धीरे नीचे उतरना आरम्भ करता है, क्योंकि निम्न प्राणिक घनत्व वाले क्षेत्रों में (उदाहरण के लिए, प्राण, उदान, समान के क्षेत्रों में आयनों का अधिक और अपान एवं व्यान के क्षेत्रों में कम संघनन होता है) आयनों का संघनन अधिक होता है। इस प्रकार आयनों के संघनन में अब तक समता स्थापित नहीं हो पायी है। जब कुम्भक किया जाता है तब इड़ा नाड़ी के सभी भागों में आयनों का संघनन समान हो जाता है। चक्रों में, जहाँ पर इड़ा और पिंगला आस-पास होती हैं, इड़ा के ऋणात्मक आयन पिंगला के धनात्मक आयनों की ओर आकर्षित होते हैं, और जब वे आपस में मिलते हैं, तब उनमें से अनेक नष्ट हो जाते हैं। इसके प्रभाव से इड़ा एवं पिंगला में आयनों का क्षय होता है, बल्कि पिंगला में अधिक होता है, क्योंकि इड़ा में ऋणात्मक आयनों का संघनन अधिक होता है। इसके कारण ऊर्जा विभिन्न रूपों, जैसे, ताप, प्रकाश और प्राणिक ऊर्जा में

मुक्त होती है, जिनके कुछ भाग अवशोषित या रूपान्तरित हो जाते हैं या हटा दिये जाते हैं।

दायीं नासिका से रेचक के दौरान आयनों के क्षय की उपर्युक्त प्रक्रिया से उत्पन्न हुआ ताप मुक्त हो जाता है। पिंगला नाड़ी में धनात्मक आयनों का कम संघनन होता है, इसलिए वह चक्र के अगले भाग में धनात्मक आयनों के प्रवाह को ग्रहण करने के लिए तैयार हो जाती है। बहिर्कुम्भक के दौरान इड़ा एवं पिंगला, दोनों में आयनों का संघनन समान हो जाता है और सन्तुलन की स्थिति आ जाती है।

दायीं नासिका से पूरक करने पर पिंगला में धनात्मक आयनों का संघनन बढ़ जाता है। यह तुरंत अपनी चरम स्थिति तक पहुँच जाता है और इड़ा के समान धीरे-धीरे नीचे उतरना आरम्भ करता है। कुम्भक के दौरान पिंगला में आयनों का संघनन समता की स्थिति में आ जाता है और आयन इड़ा की ओर जाने लगते हैं, जिसके परिणामस्वरूप वे नष्ट हो जाते हैं। इसलिए नाड़ीशोधन की प्रक्रिया में आयनों में उतार-चढ़ाव आता रहता है।

नाड़ीशोधन के लाभ

नाड़ीशोधन हर प्रकार के असन्तुलन के लिए रामबाण जैसा है। जब स्वैच्छिक तंत्रिका तंत्र को सन्तुलित कर लिया जाता है तब अनेक रोगों के मूल कारण नियन्त्रित हो जाते हैं और कुछ दिनों में उन्हें दूर किया जा सकता है। नाड़ीशोधन के नियमित अभ्यास से पीनियल ग्रन्थि की क्रियाशीलता बनी रहती है, और इसके द्वारा पिट्युटरी ग्रन्थि और रक्त में हॉरमोनों के प्रवाह को प्रभावित किया जा सकता है। नाड़ीशोधन अग्र मस्तिष्क और आज्ञा चक्र को क्रियाशील बनाता है, जिससे शान्ति प्राप्त होती है, विचारों में स्पष्टता एवं एकाग्रता आती है। यह विषादपूर्ण प्रवृत्ति और सिर चकराने की प्रवृत्ति को भी दूर करने में मदद करता है। यह सम्पूर्ण प्राणिक तंत्र, अर्थात् नाड़ियों एवं चक्रों को शुद्ध और नियन्त्रित करता है। चूँकि प्रत्येक प्रणाली से प्राण मुक्त रूप से प्रवाहित होते हैं, इसलिए सभी स्तरों पर प्राणशक्ति में वृद्धि होती है। आध्यात्मिक स्तर पर नाड़ीशोधन का अभ्यास ध्यान की उच्च अवस्थाओं में प्रवेश के लिए तैयार करता है।

प्रशान्तक प्राणायाम

प्रशान्तक प्राणायाम के अभ्यासों के द्वारा शरीर एवं मन को शिथिल किया जाता है, साथ-ही-साथ प्राण की क्षमता और चेतन सजगता में वृद्धि की जाती है। ये प्राणायाम परानुकम्पी स्नायु तंत्र को उत्प्रेरित करते हैं और चेतना को अन्तर्मुखी बनाते हैं। इनमें से कुछ मानसिक सम्वेदनशीलता को बढ़ाते हैं, जबकि अन्य सम्पूर्ण शारीरिक तंत्र को शीतलता प्रदान करते हैं। शान्तिदायक विधियों का अभ्यास प्राय: नाड़ीशोधन के बाद किया जाता है, जो एक के बाद दूसरी नासिका में श्वास के प्रवाह के नियन्त्रण द्वारा अनुकम्पी एवं परानुकम्पी स्नायु तंत्रों को सन्तुलित कर देती हैं। इसलिए प्रशान्तक प्राणायाम के अभ्यास दोनों नासिकाओं से एक साथ किये जाते हैं और कुछ को मुँह से किया जाता है। जो व्यक्ति अत्यधिक अन्तर्मुखी, अतिसम्वेदनशील या मानसिक रूप से असन्तुलित हैं, उन्हें इनका अभ्यास नहीं करना चाहिए, क्योंकि ये इन स्थितियों को बदतर बना सकते हैं।

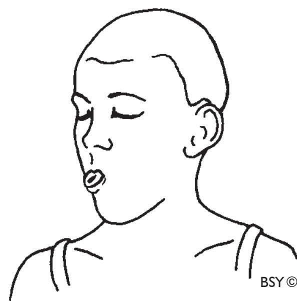
शीतली एवं शीतकारी प्राणायाम

ये दोनों अभ्यास शरीर के ताप को कम करने के लिए बनाये गये थे। गर्मी के मौसम में इनका अच्छा प्रभाव पड़ता है। मूल शब्द 'शीत' का अर्थ होता है 'ठंढा', जबकि 'शीतल' का अर्थ है 'शान्त, अनुरागहीन तथा भावनारहित'। इस प्रकार ये अभ्यास शरीर और मन, दोनों को शीतल करते हैं। शीतली एवं शीतकारी शीतल करने वाले अभ्यास हैं, क्योंकि इनमें नाक से नहीं, बल्कि मुँह से श्वास ली जाती है। जब मुँह के द्वारा श्वास ली जाती है तब जीभ के ऊपर और मुँह के अन्दर की सतह की नमी का वाष्पीकरण होता है इससे मुँह के अन्दर जाने वाली वायु ठंढी हो जाती है। इसके बाद यह ठंढी हवा फेफड़ों

की रक्त वाहिनियों को ठंढा कर देती है, जिससे शरीर का अतिरिक्त ताप धीरे-धीरे दूर हो जाता है। शीतली एवं शीतकारी की विधि तथा इनके प्रभाव एक समान हैं, केवल श्वास लेने की विधि में भिन्नता है।

शीतली प्राणायाम

विधि 1 – मौलिक विधि



ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठें। हाथों को चिन्मुद्रा या ज्ञान-मुद्रा में घुटनों पर रखें।

आँखों को बन्द कर पूरे शरीर को शिथिल करें।

जिह्वा को बिना तनाव के अधिक-से-अधिक मुँह के बाहर ले आयें।

जिह्वा के दोनों किनारों को इस प्रकार मोड़ें कि उसकी आकृति एक नलिका के समान हो जाए।

इस नली के द्वारा लम्बी, सहज, नियन्त्रित श्वास अन्दर खींचें।

पूरक के अन्त में जिह्वा भीतर कर लें, मुँह को बन्द करें और नासिका के द्वारा रेचक करें।

पूरे अभ्यास के दौरान यौगिक श्वसन करें।

अन्दर जाती हुई श्वास से सी-सी करती तीव्र वायु की तरह ध्वनि उत्पन्न होनी चाहिए।

जिह्वा और मुँह के ऊपरी भाग में बर्फीली शीतलता का अनुभव करें।

यह एक चक्र हुआ।

11 चक्र अभ्यास करें और धीरे-धीरे 21 तक बढ़ायें।

अभ्यास टिप्पणी – सजगता गोल की हुई जीभ, ध्वनि और अन्दर ली गयी वायु की शीतल अनुभूति पर केन्द्रित होनी चाहिए। लगभग एक तिहाई जनसंख्या जन्मजात ही जीभ को नली के रूप में मोड़ने में सक्षम नहीं होती है। जो अभ्यासी ऐसा नहीं कर पाते हैं, उनके लिए शीतकारी भी उतना ही लाभप्रद होगा। शीतलता के प्रभाव को बढ़ाने के लिए पूरक की अवधि को धीरे-धीरे बढ़ाते जाना चाहिए। सामान्य उद्देश्य के लिए 11–21 चक्र ही पर्याप्त हैं; हालाँकि भीषण गर्मी के मौसम में 60 चक्र तक किये जा सकते हैं।

क्रम – जिन आसनों और योगाभ्यासों से शरीर के ताप में वृद्धि होती है, उनके बाद तापमान को सन्तुलित करने के लिए इसका अभ्यास करना चाहिए।

विधि 2 – अन्तर्कुम्भक के साथ

पूरक के पश्चात् एक या दो सेकण्ड के लिए श्वास अन्दर रोकें।

जैसे-जैसे अभ्यास में दक्षता प्राप्त होती है, कुम्भक की अवधि को धीरे-धीरे बढ़ाया जा सकता है।

अन्तर्कुम्भक के समय इस अभ्यास के साथ जालन्धर बन्ध जोड़ा जा सकता है।

सावधानियाँ – इसका अभ्यास प्रदूषित वायुमण्डल या ठण्ढे मौसम में नहीं करना चाहिए। नासिका श्वास द्वारा अन्दर ली जाने वाली वायु को फेफड़ों में प्रवेश के पूर्व स्वच्छ तथा शरीर के तापमान के अनुकूल बनाती है। जबकि इस अभ्यास में नासिका के छन्नक तंत्र की स्वाभाविक क्रिया एवं श्लेष्मा झिल्ली की रक्त-शिरानालाभों को उष्णता प्रदान करने की क्रिया नहीं हो पाती। इसलिए इस प्राणायाम का अभ्यास ताजी, स्वच्छ एवं हल्की गर्म वायु में करना चाहिए ताकि ठण्ढी या दूषित वायु का फेफड़ों में प्रवेश न हो। अन्तर्कुम्भक की अवधि बहुत कम होनी चाहिए, क्योंकि लम्बा कुम्भक गर्मी उत्पन्न करता है।

सीमाएँ – निम्न रक्तचाप या श्वसन सम्बन्धी रोगों, जैसे – दमा, ब्रोन्काइटिस और बहुत अधिक कफ से पीड़ित व्यक्तियों को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए। हृदय रोगियों को यह प्राणायाम बिना कुम्भक के करना चाहिए। यह अभ्यास शरीर के निम्न ऊर्जा केन्द्रों के कार्यों को मन्द कर देता है; अतः पुरानी कब्ज के रोगियों को यह प्राणायाम नहीं करना चाहिए। यह प्राणायाम शीत-काल और अधिक ठण्ढी जलवायु में नहीं करना चाहिए।

लाभ – यह अभ्यास शरीर को शीतलता प्रदान करता है तथा कामेच्छा और तापमान–नियमन से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण मस्तिष्कीय केन्द्रों को प्रभावित करता है। यह मानसिक और भावनात्मक उत्तेजनाओं को शान्त करता है और सम्पूर्ण शरीर में प्राण-प्रवाह को निर्बाध बनाता है। यह मांसपेशीय शिथिलीकरण और मानसिक शान्ति लाता है और सोने के पहले प्रशान्तक के रूप में इसका उपयोग किया जा सकता है। जब भी किसी परिस्थिति में रक्तचाप बढ़ने लगे, पुनः सन्तुलन लाने के लिए शीतली का अभ्यास

किया जा सकता है। शीतली भूख और प्यास को नियन्त्रित करता है, तथा सन्तोष की अनुभूति देता है। यह सूजन, बुखार, पित्त और अम्लता को कम करता है, और पेप्टिक तथा मुँह के फोड़ों (अल्सर) को ठीक करता है। शीतली के दौरान जो ध्वनि उत्पन्न की जाती है, वह साँप के श्वसन की नकल है। ऐसा कहा जाता है कि जो व्यक्ति इसका नियमित अभ्यास करता है, उस पर साँप या बिच्छू के काटने का असर नहीं होता है।

शीतकारी प्राणायाम

विधि 1 – मौलिक विधि



ध्यान के किसी सुविधाजनक आसन में बैठ जायें।

आँखों को बन्द कर लें और पूरे शरीर को शिथिल करें।

दाँतों को एक साथ हल्के से कस लें।

होठों को अलग करके फैलायें, जिससे दाँत दिखायी पड़ने लगें।

जिह्वा को सीधा रखें या पीछे की ओर मोड़कर खेचरी मुद्रा (परिशिष्ट 3 देखें) में तालु से लगायें।

दाँतों के बीच से गहरी और धीमी श्वास लें।

पूरक के अन्त में मुँह बन्द कर लें।

नासिका के द्वारा धीरे-धीरे नियन्त्रित ढंग से श्वास छोड़ें।

यह एक चक्र हुआ। 11 चक्र अभ्यास करें, धीरे-धीरे 21 तक बढ़ाएँ।

उच्च अभ्यास – शीतली प्राणायाम की विधि 2 के समान।

सजगता – अन्दर ली गई वायु की सी-सी की ध्वनि तथा शीतलता पर।

सीमाएँ – शीतली प्राणायाम के समान। ऐसे अभ्यासी जिनके दाँत सम्वेदनशील हैं, टूटे हुए हैं या नकली दाँत लगे हुए हैं, उन्हें शीतली प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

सावधानियाँ – शीतली प्राणायाम के समान।

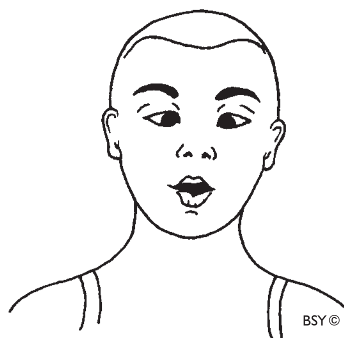
लाभ – शीतली प्राणायाम के समान। साथ-ही यह दाँतों और मसूड़ों को स्वस्थ रखता है।

काकी प्राणायाम

इसे काकी कहा जाता है, क्योंकि इसमें श्वास अन्दर लेने के लिए होठों को कौवे की चोंच के आकार का बना लिया जाता है। जिन्हें शीतली या शीतकारी करने में कठिनाई होती है, उनके लिए इसे करना सरल होगा। यद्यपि काकी एक मुद्रा है, लेकिन शीतली एवं शीतकारी से इसकी समानता के कारण इसे प्राणायाम के अभ्यास के रूप में सम्मिलित कर लिया गया है।

विधि 1 – मौलिक विधि

ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें।
आँखों को बन्द कर लें और पूरे शरीर को शिथिल करें।
होठों को बीच में खाली स्थान छोड़ते हुए सिकोड़ें, जैसे सीटी बजाते समय करते हैं।
आँखों को खोलकर उन्हें नासिकाग्र-दृष्टि में नासिका के अग्र भाग पर केन्द्रित करें।
सिकुड़े हुए होठों से होते हुए गहरी एवं धीमी श्वास अन्दर लें।
श्वास लेने के बाद होठों को आपस में मिला लें और नासिका-मार्ग से धीरे-धीरे श्वास बाहर छोड़ें।



आँखों को नासिका के अग्र भाग पर केन्द्रित रखें।
यदि आँखें थक जायें तो श्वास बाहर छोड़ते समय उन्हें बन्द कर लें।
इस प्रक्रिया को 3–5 मिनट तक दुहरायें।

विधि 2 – जालन्धर एवं मूल बन्ध के साथ

सिद्धासन या सिद्धयोनि आसन में बैठ जायें।
काकी प्राणायाम की मौलिक विधि का अभ्यास करें।
पूरक के बाद कुम्भक करें।
नासिकाग्र दृष्टि का अभ्यास जारी रखते हुए जालन्धर एवं मूल बन्ध लगायें।

कुछ क्षणों तक कुम्भक और बन्धों को लगाये रखें।
पहले मूल बन्ध को और उसके बाद जालन्धर बन्ध को खोल दें।
सिर को धीरे से ऊपर उठायें और नाक से श्वास बाहर निकाल दें।
पुनः मुँह से श्वास अन्दर लें।
पूरे अभ्यास के दौरान दृष्टि नासिकाग्र पर ही केन्द्रित होनी चाहिए।
यदि आँखें थक जायें, तो रेचक के दौरान उन्हें बन्द कर लें।
इसका 5 – 10 बार अभ्यास करें।

सीमाएँ– हृदय रोग से पीड़ित लोगों को बिना कुम्भक के इसका अभ्यास करना चाहिए। विषाद, निम्न रक्तचाप और चिरकालिक कब्ज से पीड़ितों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ – काकी प्राणायाम के अभ्यास के विषय में कहा जाता है कि यह व्यक्ति को कौवे के समान स्वस्थ बना देता है, जो कभी बीमार नहीं पड़ता है। यह एक ऐसी शक्तिप्रद ओषधि के समान है जो शरीर एवं मन को शीतल करती है, थकान तथा बेचैनी को दूर करती है, और उच्च रक्तचाप जैसे रोगों को दूर करती है। साथ-ही इससे नासिकाग्र दृष्टि के लाभ मिलते हैं। यह रक्त को शुद्ध करता है और पाचक रसों के स्राव को उत्प्रेरित करता है, जिससे सामान्य रूप से पाचन प्रक्रिया में सहायता मिलती है।

उज्जायी प्राणायाम

उज्जायी का अर्थ होता है 'विजयी' और इसकी उत्पत्ति 'उज्जि' धातु से हुई है जिसका तात्पर्य है 'जीतना' या 'विजय के द्वारा प्राप्त करना'। उज्जायी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, किन्तु सरलतम प्राणायाम है। कंठ को संकुचित कर गले से श्वसन कर इसका अभ्यास किया जाता है। जब इसे सही ढंग से किया जाता है, तो ऐसा लगता है कि बिल्ली गुर्रा रही है या बच्चा खर्राटे ले रहा है। जब एक स्वस्थ बच्चा सोता है, तो वह हमेशा कंठ को संकुचित कर गले से श्वसन करता है, इसलिए उसके गले से ऐसी ध्वनि निकलती है। उज्जायी में ऐसी ही ध्वनि निकाली जाती है। श्वास तो नासिकाओं के द्वारा ही ली जाती है, लेकिन कंठ के संकुचित हो जाने पर गले में श्वास के द्वारा खर्राटे की ध्वनि निकलती है।

उज्जायी गहरे श्वसन का एक अभ्यास है, जिसमें श्वास को शिथिल कर पूर्णता प्राप्त की जाती है, उस पर बल प्रयोग करके नहीं। यह एक ऐसा प्राणायाम है जिसका अभ्यास किसी भी अवस्था में किया जा सकता है– खड़े

होकर, बैठ कर या लेट कर। उज्जायी को सूक्ष्म श्वास भी कहा जाता है, क्योंकि यह ध्यान की स्थिति उत्पन्न करता है और मन की अत्यन्त सूक्ष्म अवस्थाओं में प्रवेश दिलाता है। यह ध्यान की अनेक विधियों, जैसे, मंत्र जप, अजपा जप, क्रिया योग और प्राण विद्या का एक अनिवार्य अंग है।

विधि 1 – मौलिक विधि

ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें।
आँखों को बन्द कर लें और पूरे शरीर को शिथिल करें।
नासिका में आती-जाती श्वास के प्रति सजग बन जायें और श्वसन को धीमा और लयपूर्ण होने दें।
थोड़ी देर के बाद अपनी सजगता को गले पर ले जायें।
ऐसा अनुभव करें या कल्पना करें कि श्वास नासिका से नहीं, बल्कि गले से आ-जा रही है। मानो यह क्रिया गले के एक छोटे-से छिद्र से हो रही हो।
जब श्वास धीमी और गहरी हो जाए, तब धीरे से कण्ठ-द्वार को संकुचित करें, ताकि गले से सोते हुए बच्चे के खर्राटे जैसी आवाज निकलने लगे।
यदि इसका अभ्यास सही ढंग से किया जाए, तो गले के साथ उदर का भी संकुचन अपने आप होगा।
श्वास और प्रश्वास दोनों लम्बी, गहरी और नियन्त्रित होनी चाहिए।
चेहरे को जितना सम्भव हो शिथिल रखें।
गले को बहुत जोर से संकुचित न करें।
संकुचन हल्का होना चाहिए और पूरे अभ्यास के समय निरन्तर बना रहना चाहिए। गले में श्वास द्वारा उत्पन्न ध्वनि पर एकाग्रता रखते हुए यौगिक श्वसन करें। श्वास की ध्वनि केवल अभ्यासी को सुनायी पड़नी चाहिए।
3 – 5 मिनट तक अभ्यास करें।

अभ्यास टिप्पणी – स्लिप डिस्क या वर्टिब्रल स्पॉन्डिलाइटिस से पीड़ित व्यक्ति उज्जायी को वज्रासन या मकरासन में कर सकते हैं।

विधि – खेचरी मुद्रा के साथ

जब उज्जायी प्राणायाम में निपुणता प्राप्त हो जाये तब जीभ को खेचरी मुद्रा में पीछे की ओर मोड़ लें (परिशिष्ट 3 देखें)।
जब जीभ थक जाये, तो उज्जायी प्राणायाम को जारी रखते हुए उसे सीधा

कर लें। जब जीभ को आराम मिल जाये तब उसे पुन: मोड़ लें।
इस अभ्यास को 3 – 5 मिनट तक करें।

अभ्यास टिप्पणी – 'खेचरी' का अर्थ है, 'वह जो आकाश में विचरण करता है'। यह उन शारीरिक, मानसिक और अन्त:स्रावी प्रक्रियाओं को क्रियाशील बनाता है, जिन पर कोशिकाओं का पुनरुज्जीवन एवं दीर्घायु निर्भर रहती है। यदि उज्जायी के साथ खेचरी मुद्रा का सही ढंग से लम्बे समय तक अभ्यास किया जाये तो बिन्दु और विशुद्धि चक्र उत्प्रेरित हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप बिन्दु में उत्पन्न हुआ एक विशेष स्राव विशुद्धि द्वारा परिष्कृत होकर सम्पूर्ण शरीर को नवजीवन प्रदान करता है। इस प्रक्रिया के विषय में सन्त कबीर कहते हैं – "जब यह अमृत चख लिया जाता है तब सारे भय, रोग, अपराध और अज्ञान भस्म हो जाते हैं। उसके बाद मनुष्य अन्दर से पूर्णिमा की रात्रि के समान चमकने लगता है।" सामान्यत: आँखों को बन्द करने पर अन्धकार दिखाई देता है। लेकिन अमृत प्रवाहित होते समय यदि आँखों को बन्द किया जाये तो केवल प्रकाश दिखाई देगा। सम्पूर्ण मस्तिष्क और चेतना प्रकाशित हो जाती है। उज्जायी के साथ खेचरी के अभ्यास का यही उद्देश्य है।

विधि 3 – अन्तर्कुम्भक के साथ

उज्जायी के साथ खेचरी मुद्रा का अभ्यास करें।
पूरक एवं रेचक निर्विघ्न और नियन्त्रित हों।
उज्जायी श्वास के साथ धीरे-धीरे गहरा पूरक करें।
आज्ञा या बिन्दु की सजगता के साथ अन्तर्कुम्भक करें।
उज्जायी में रेचक आराम से, जितना लम्बा सम्भव हो, करें।

अभ्यास टिप्पणी – कुम्भक करते समय किसी प्रकार का तनाव नहीं हो। प्रारम्भ में एक या दो सैकण्ड ही पर्याप्त हैं। जब अभ्यास में निपुणता आ जाये तब इसकी अवधि को धीरे-धीरे बढ़ाया जा सकता है। अन्तर्कुम्भक अन्तर्मुखता और एकाग्रता का विकास करने में सहायक होता है।

विधि 4 – जालन्धर एवं मूल बन्धों के साथ

उज्जायी श्वास के साथ पूरक करें।
फिर कुम्भक लगायें।

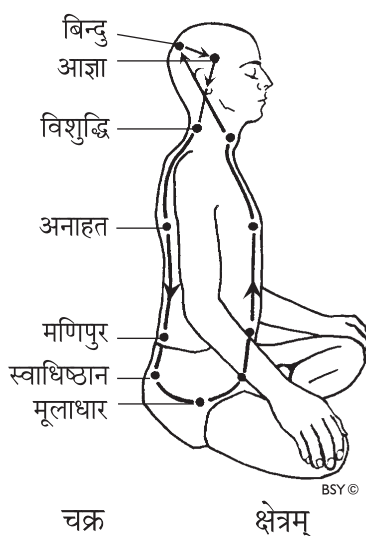
आरामदायक स्थिति तक जालन्धर बन्ध का अभ्यास करें।
जालन्धर बन्ध को खोल दें और उज्जायी के साथ रेचक करें।
उज्जायी श्वास के साथ पूरक करें, फिर कुम्भक लगायें।
आरामदायक स्थिति तक अन्तर्कुम्भक के साथ जालन्धर और मूल बन्धों का अभ्यास करें।
पहले मूल बन्ध और उसके बाद जालन्धर बन्ध को खोल दें।
उज्जायी के साथ रेचक करें।
जब बन्धों को बिना तनाव के रोकना सम्भव हो जाये तब धीरे-धीरे चक्रों की संख्या को बढ़ाया जा सकता है।

सीमाएँ – जो व्यक्ति हृदय रोग से पीड़ित हों, उन्हें उज्जायी के साथ बन्धों या कुम्भक को सम्मिलित नहीं करना चाहिए। जो स्वभाव से अत्यधिक अन्तर्मुखी हैं, उन्हें उज्जायी का अभ्यास नहीं करना चाहिए। निम्न रक्तचाप वालों को पहले इस स्थिति में सुधार लाना चाहिए, उसके बाद इस अभ्यास को करना चाहिए।

लाभ – उज्जायी को प्रशान्तक प्राणायामों की श्रेणी में रखा गया है, लेकिन यह ऑक्सीकरण की प्रक्रिया को उत्प्रेरित करता हुआ ताप भी उत्पन्न करता है। यह अभ्यास स्नायु तंत्र और मन को शान्त करता है, तथा मानसिक संवेदनशीलता में वृद्धि करता है। मानसिक स्तर पर इसका गहरा आरामदायक प्रभाव पड़ता है। यह अनिद्रा दूर करने में मदद करता है; सोने से पहले शवासन में बिना खेचरी मुद्रा के इसका अभ्यास किया जा सकता है। यह हृदय की गति और उच्च रक्तचाप को कम करता है।

विधि 5 – सामने के अतीन्द्रिय पथ में

किसी भी आरामदायक आसन में बैठ जायें।
खेचरी मुद्रा के साथ उज्जायी का अभ्यास करें।
शरीर के अग्रभाग के साथ नाभि से गले को जोड़ने वाली चाँदी की या पारदर्शी पतली नली का मानस-दर्शन करें।
पूरक करते समय कल्पना करें कि श्वास इस मार्ग के द्वारा नाभि से गले तक जा रही है और रेचक करते समय कल्पना करें कि श्वास इस नली के द्वारा गले से नीचे नाभि की ओर जा रही है।
इसी अभ्यास को कुछ समय तक जारी रखें।



चक्र क्षेत्रम्

अब पूरक के साथ मानसिक रूप से मंत्र 'सो' और रेचक के साथ मंत्र 'हम्' का उच्चारण करें।

विकल्प के रूप में गुरुमंत्र को भी श्वास के साथ मिला कर अभ्यास किया जा सकता है।

इस अभ्यास को 5 – 10 बार करें।

अभ्यास टिप्पणी – उज्जायी श्वास को अतीन्द्रिय पथ में घुमाने से मन और शरीर के बीच सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इसलिए उस अतीन्द्रिय पथ में श्वास के साथ सजगता का भी आरोहण और अवरोहण होना चाहिए। 'सोऽहम्' श्वास का मंत्र है। पूरक करते समय 'सो' की ध्वनि उत्पन्न होती है और रेचक करते समय 'हम्' की। पहले मानसिक रूप से इस मंत्र का उच्चारण किया जा सकता है, लेकिन बाद में, जब एकाग्रता गहरी हो जाती है तब श्वास में इसकी ध्वनि सुनायी देने लगती है।

विधि 6 – मेरुदण्डीय अतीन्द्रिय पथ में

उपर्युक्त विधि से अभ्यास के लिए तैयार हो जायें।

मूलाधार एवं आज्ञा चक्रों को मेरुदण्ड के बीच से जोड़ने वाली चाँदी की या पारदर्शी पतली नली का मानस-दर्शन करें।

प्रत्येक पूरक के साथ श्वास और सजगता मूलाधार से आज्ञा चक्र की ओर आरोहण करती हैं और प्रत्येक रेचक के साथ श्वास और सजगता आज्ञा से मूलाधार चक्र की ओर अवरोहण करती हैं।

इसी अभ्यास को कुछ समय तक जारी रखें।

अब पूरक के साथ मानसिक रूप से मंत्र 'सो' का और रेचक के साथ मंत्र 'हम्' का उच्चारण करें।

विकल्प के रूप में गुरुमंत्र को भी श्वास के साथ मिला कर अभ्यास किया जा सकता है।

इस अभ्यास को 5 – 10 बार करें।

अभ्यास टिप्पणी – योग शास्त्रों में कहा गया है कि श्वास के मंत्र का अभ्यास 'स्वर्ग के मार्ग' में होना चाहिए। यह मार्ग सुषुम्ना नाड़ी है, जो मेरुदण्ड में स्थित है। जब यह मार्ग बाधारहित हो जाता है तब अमरता की अनुभूति होती है। इसका प्रारम्भिक बिन्दु मूलाधार चक्र में है, जो पृथ्वी का प्रतीक है। मेरुदण्ड का ऊपरी सिरा भ्रूमध्य के ठीक पीछे, आज्ञा चक्र पर समाप्त होता है, जिसे स्वर्ग का द्वार कहा जाता है। इस मार्ग में उज्जायी श्वास के साथ मंत्र को घुमाना ध्यान की एक शक्तिशाली विधि है।

भ्रामरी प्राणायाम

'भ्रमर' शब्द का अर्थ होता है भँवरा या भौंरा। इस अभ्यास को यह नाम इसलिए दिया गया है कि इसमें अभ्यासी काले भौंरे की गुनगुनाहट की गहरी, भारी ध्वनि की नकल करता है। इसका उपयोग नाद योग में आन्तरिक ध्वनियों की चेतना को जाग्रत करने के लिए किया जाता है।

विधि 1 – मौलिक विधि

ध्यान के किसी सुविधाजनक आसन में बैठ जायें। दोनों हाथ घुटनों पर चिन् या ज्ञान मुद्रा में रहें। आँखें बन्द कर लें और पूरे शरीर को शिथिल करें।

जबड़े शिथिल रहने चाहिए। होठों को हल्के से बन्द रखें और दाँतों की पंक्तियों को एक-दूसरे से थोड़ा अलग रखें। इससे ध्वनि-स्पन्दन अधिक स्पष्टता से सुनाई देता और अनुभव होता है।



भुजाओं को बगल में फैलाकर कोहनियों को मोड़ लें और हाथों को कानों के निकट ले आयें। तर्जनी उँगलियों से कानों के पल्लों को बन्द कर लें।

अपनी सजगता को सिर के बीचों-बीच ले आयें, जहाँ आज्ञा चक्र स्थित है, और शरीर को एकदम स्थिर रखें। नासिका से श्वास लें।

नियन्त्रित ढंग से धीरे-धीरे श्वास छोड़ते हुए भौंरे के गुंजन की तरह गहरी और मन्द ध्वनि उत्पन्न करें।

सिर के भीतर गुंजन की ध्वनि पर लगातार सजगता बनाये रखें।

श्वास छोड़ते समय गुंजन की ध्वनि मधुर और सम होनी चाहिए।

ध्वनि इतनी मृदुल और मधुर हो कि कपाल के अग्र भाग में उसकी प्रतिध्वनि गूंजने लगे।

रेचक पूरा हो जाने पर, हाथों को ऊपर ही रखा जा सकता है अथवा वापस घुटनों पर लाया जा सकता है और फिर दूसरे चक्र के लिए पुनः ऊपर उठाया जा सकता है।

यह एक चक्र हुआ। इसी प्रकार 11 चक्रों का अभ्यास करें और धीरे-धीरे 21 तक बढ़ायें।

प्रकारान्तर – उज्जायी प्राणायाम के साथ

उज्जायी प्राणायाम की तरह गले को संकुचित करके भी पूरक किया जा सकता है।

अभ्यास टिप्पणी – धीरे-धीरे पूरक/रेचक की अवधि और चक्रों की संख्या को बढ़ायें। भ्रामरी का अभ्यास आधे घंटे तक किया जा सकता है, विशेषरूप से उपचारात्मक प्रक्रिया को सुगम बनाने के लिए, या अत्यधिक तनाव या चिन्ता की स्थिति में। भ्रामरी का अभ्यास मानसिक तनाव दूर करने के लिए कभी भी किया जा सकता है। यद्यपि देर रात या प्रात: काल इसके अभ्यास के लिए सर्वोत्तम समय है, क्योंकि उस समय बाहर शोर कम रहने से आन्तरिक बोध में बाधा नहीं आती है। इस समय में अभ्यास करने पर मानसिक संवेदनशीलता जाग्रत हो जाती है।

सीमाएँ – भ्रामरी प्राणायाम लेट कर कभी नहीं करना चाहिए। जिन्हें कान का गम्भीर संक्रमण हो, उन्हें यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ – गुंजन की कम्पनशील ध्वनि का मन और स्नायु तंत्र पर आरामदायक प्रभाव पड़ता है, जिससे मानसिक तनाव, दबाव, चिन्ता और अनिद्रा से मुक्ति मिलती है। यह शरीर के ऊतकों का शीघ्रता से उपचार करता है और शल्यक्रिया के बाद रोगी को इस अभ्यास से बहुत लाभ होता है। गर्भावस्था और प्रसव के दौरान भी यह सहायक होता है। यह गले की तकलीफ़ों को दूर करता है और आवाज़ को सशक्त बना कर उसमें सुधार लाता है। यह स्मरणशक्ति और एकाग्रता में वृद्धि करने की एक प्रभावशाली विधि है। यह मन में सामंजस्य की स्थापना कर सजगता को अन्तर्मुखी बनाते हुए ध्यान की स्थिति उत्पन्न करता है।

विधि – अन्तर्कुम्भक के साथ

नाक से धीमी और गहरी श्वास अन्दर लें।

सजगता को आज्ञा अथवा बिन्दु पर रखते हुए श्वास को अन्दर रोकें।

रेचक को आराम से जितना लम्बा कर सकते हैं, करें, ताकि मन गुंजन की ध्वनि में अन्तर्लीन हो जाए।

अभ्यास टिप्पणी – अन्तर्कुम्भक की अवधि को धीरे-धीरे बढ़ायें, क्योंकि इससे अन्तर्मुखता तथा एकाग्रता बढ़ती है। कुम्भक करते समय जोर न लगायें, प्रारम्भ में एक-दो सैकण्ड पर्याप्त हैं। अभ्यास में दक्षता प्राप्त हो जाने पर धीरे-धीरे अवधि को बढ़ाया जा सकता है। हृदय रोग से पीड़ित व्यक्तियों को बिना कुम्भक के यह अभ्यास करना चाहिए।

विधि 3 – जालन्धर एवं मूल बन्धों के साथ

जब अन्तर्कुम्भक में दक्षता प्राप्त हो जाये तब जालन्धर एवं मूल बन्धों को भी सम्मिलित किया जा सकता है। इन अभ्यासों के विषय में विस्तृत जानकारी के लिए परिशिष्ट 4 देखें।

जालन्धर के पूर्ण अभ्यास के लिए चक्रों के बीच में हाथों को घुटनों पर रखा जा सकता है। यदि हाथ उठे हुए रहते हैं, तो जालन्धर के सरल प्रकारान्तर का अभ्यास किया जा सकता है।

लम्बी, गहरी श्वास लें और अन्तर्कुम्भक लगायें। आरामदायक अवधि तक अन्तर्कुम्भक के साथ जालन्धर और मूल बन्ध लगाये रखें।

फिर पहले मूल बन्ध और उसके बाद जालन्धर बन्ध को खोल दें।

विधि 1 के समान गुंजन की ध्वनि के साथ रेचक करें।

यह एक चक्र हुआ। धीरे-धीरे चक्रों की संख्या बढ़ाते जायें।

पूरक के समय उज्जायी का अभ्यास किया जा सकता है।

विधि 4 – मेरुदण्ड में प्रणव के साथ

भ्रामरी के अभ्यास में रेचक के दौरान गुंजन के स्थान पर ॐ का उच्चारण किया जा सकता है। 'ओ' की ध्वनि छोटी और 'म् म्...' की ध्वनि लम्बी होती है।

उज्जायी श्वास के साथ पूरक करते हुए मेरुदण्ड में मूलाधार से आज्ञा चक्र तक आरोहण करें, और फिर ॐ मंत्र के साथ रेचक करते हुए मेरुदण्ड में आज्ञा से मूलाधार चक्र की ओर अवरोहण करें।

इस अभ्यास को 5 – 10 बार करें।

सीमाएँ – जो व्यक्ति अन्तर्मुखी हैं या उदास रहते हैं, उन्हें इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

विधि 5 – षण्मुखी मुद्रा के साथ

भ्रामरी की सभी विधियों का अभ्यास षण्मुखी मुद्रा के साथ किया जा सकता है (परिशिष्ट 3 देखें)।

विधि 1 में षण्मुखी मुद्रा करते समय नासिकाओं को खुला रखें।

विधि 2 में षण्मुखी मुद्रा करते समय दोनों हाथों की मध्यमा अँगुलियों से दोनों नासिकाओं को बन्द रखें और अन्तर्कुम्भक करें।

सिर के मध्य में सूक्ष्म ध्वनि के कम्पन और बन्द आँखों के सामने आने वाले दृश्यों पर ध्यान को एकाग्र करें।

मूर्च्छा प्राणायाम

मूर्च्छा का अर्थ होता है 'अचेत' होना। इस प्राणायाम का तात्पर्य अचेतावस्था की अनुभूति से है, इसलिए इसका अभ्यास कुशल मार्गदर्शन में करना अच्छा रहेगा। मूर्च्छा का अर्थ विस्तार, व्यापकता और जमा करना भी होता है। यह चेतना का विस्तार करता है, बिन्दु चक्र को जाग्रत करता है और प्राण का भण्डारण करता है।

विधि

ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें। सिर और मेरुदण्ड को सीधा रखें। पूरे शरीर को शिथिल करें। श्वास-प्रश्वास के प्रति सजग बन जायें और उसे धीमा तथा गहरा होने दें।

खेचरी मुद्रा लगायें।

उज्जायी प्राणायाम के साथ धीरे-धीरे दोनों नासिका छिद्रों से श्वास लेते हुए धीरे-धीरे सिर को थोड़ा पीछे की ओर झुकायें।

श्वास को अन्दर रोकें और शाम्भवी मुद्रा लगायें।

घुटनों को हाथों से दबाते हुए कोहनियों को तान कर भुजाओं को सीधा रखें। शाम्भवी मुद्रा में रहते हुए, जितनी देर आराम से सम्भव हो श्वास को अन्दर रोकें।

भुजाओं को ढीला करते हुए श्वास छोड़ें। आँखों को बन्द कर लें और धीरे-धीरे सिर को पुनः सीधा करें।

आँखों को बन्द रखते हुए पूरे शरीर को कुछ क्षणों के लिए शिथिल करें।

शरीर और मन में हल्केपन तथा शान्ति का अनुभव करें।

यह एक चक्र हुआ। जब तक बेहोशी की-सी अवस्था का अनुभव न होने लगे तब तक अभ्यास करते रहें।

सजगता – *शारीरिक* – श्वास, सिर की गति और भ्रू-मध्य पर। *आध्यात्मिक* – भ्रू-मध्य के पीछे शून्य पर।

क्रम – आसनों तथा अन्य प्राणायामों के बाद और ध्यान के पूर्व। सोने के पहले भी यह अभ्यास लाभदायक है।

सीमायें – हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, मिर्गी, मस्तिष्क विकार या कैरोटिड के एथिरोकाठिन्य के रोगियों को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।

सावधानियाँ – जब बेहोशी की-सी अवस्था का अनुभव होने लगे, तब अभ्यास बन्द कर दें। इसका उद्देश्य अर्द्ध-मूर्च्छा की अवस्था को प्राप्त करना है, न कि पूर्ण अचेतावस्था में जाना।

लाभ – मूर्च्छा प्राणायाम ध्यान की तैयारी के लिए एक उत्तम अभ्यास है, क्योंकि यह मन को अन्तर्मुखी बना कर अतीन्द्रिय अवस्था का अनुभव दिलाने में सहायक होता है। यह बाह्य जगत् के विक्षेपों को दूर करता है, शरीर से तादात्म्य स्थापित नहीं करने देता तथा मानसिक शान्ति लाता है। यह तनाव, चिन्ता, क्रोध, स्नायु-रोगों एवं अन्य मानसिक समस्याओं से मुक्ति दिलाता है। यह प्राण में वृद्धि करता है।

अभ्यास टिप्पणी – मूर्च्छा प्राणायाम में सबसे महत्त्वपूर्ण अन्तर्कुम्भक है। श्वास रोकने से प्राणिक शरीर के माध्यम से सीधे मन पर प्रभाव पड़ता है; जिससे शून्यता की अवस्था आती है। बेहोशी और मस्तिष्क में हल्केपन का अनुभव दो कारणों से उत्पन्न होता है। पहला, गले में रक्त वाहिकाओं पर दबाव पड़ने से कपाल-कोटर के अन्दर दबाव घटता-बढ़ता है। दूसरा, शरीर में रक्त-संचरण को नियन्त्रित करने वाले ग्रीवा धमनी के शिरानालों पर निरन्तर दबाव पड़ने के कारण स्वैच्छिक तन्त्रिका-तन्त्र में एक परिवर्तन होता है, जिसके फलस्वरूप बेहोशी या मूर्च्छा की अवस्था आती है। अन्तर्कुम्भक का अभ्यास मस्तिष्क में ऑक्सीजन की आपूर्ति को और कम कर देता है।

चन्द्रभेद प्राणायाम

चन्द्र इड़ा नाड़ी का प्रतीक है। भेदन का अर्थ होता है, छेदना। यह प्राणायाम इड़ा नाड़ी का भेदन करता है, और इसे केवल बायीं नासिका से पूरक तथा केवल दायीं नासिका से रेचक द्वारा शक्ति से परिपूर्ण कर देता है। इस प्रकार परानुकम्पी स्नायु तंत्र तथा मस्तिष्क के दायें गोलार्ध का प्रबल उत्प्रेरण होता है।

इस अभ्यास को कुशल मार्गदर्शन में ही किया जाना चाहिए, क्योंकि मन की जाग्रत शक्तियों को नियन्त्रित करना आसान नहीं होता है। सामान्यतः इस विधि का प्रचार नहीं किया जाता है।

विधि 1 – मौलिक विधि

ध्यान के किसी भी आरामदायक आसन में बैठ जायें।
सिर और मेरुदण्ड को सीधा रखें। सम्पूर्ण शरीर को शिथिल कर लें।
श्वास के धीमा और गहरा होने तक उसे देखते जायें।
नासाग्र मुद्रा का अभ्यास करें। दायीं नासिका को बन्द कर दें और बायीं से धीरे-धीरे गहरा पूरक करें।
पूरक के अन्त में दोनों नासिकाओं को बन्द कर दें और अन्तर्कुम्भक करें। सिर को जालन्धर बन्ध लगाने के लिए नीचे झुकायें और श्वास को आराम से जितनी देर रोक सकते हैं, रोक लें।
सिर को ऊपर उठायें और दायीं नाक से धीरे-धीरे रेचक करें।
यह एक चक्र हुआ।
पूरक और रेचक की लम्बाई को धीरे-धीरे बढ़ाते हुए 10 चक्र अभ्यास करें। श्वसन के लिए 1:1:1, उसके बाद 1:2:2 और अन्त में 1:4:2 अनुपात रखा जा सकता है।

विधि 2 – मूल बन्ध एवं शाम्भवी मुद्रा के साथ

अन्तर्कुम्भक के दौरान मूल बन्ध एवं शाम्भवी मुद्रा को भी अभ्यास में सम्मिलित किया जा सकता है। केवल 10 चक्रों का अभ्यास करें।

विधि 3 – चन्द्र अंग प्राणायाम

चन्द्रभेद के लिए बतायी गयी विधियों एवं चरणों का अभ्यास करें।
यद्यपि पूरक और रेचक, दोनों को केवल बायीं नासिका से किया जाता है।

सीमाएँ – जो व्यक्ति स्वाभाविक रूप से अन्तर्मुखी हैं या जिन्हें कोई मानसिक व्याधि है, उन्हें इस प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिए। जिन लोगों की पाचन प्रक्रिया धीमी है या जिन्हें अत्यधिक आँव आता है, उन्हें भी इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ – यह मानसिक रूप से अन्तर्मुखी बनाता, शान्ति प्रदान करता है और मानसिक क्षमताओं को बढ़ाता है। पूरे शरीर तंत्र को शान्त करता है और इड़ा नाड़ी से सम्बद्ध गुणों के विकास में मदद करता है।

शक्तिवर्द्धक प्राणायाम

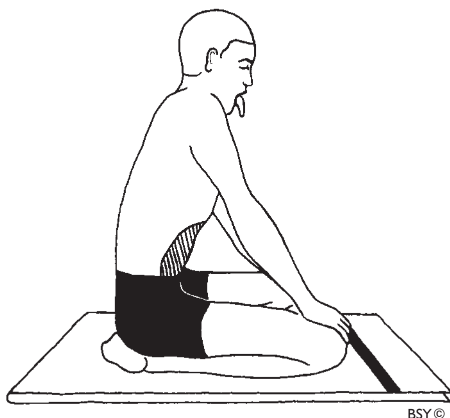
सभी प्राणायाम इस अर्थ में शक्तिवर्धक होते हैं कि वे प्राणिक संरचना को सुव्यवस्थित कर देते हैं। ये विधियाँ शक्ति के साथ-साथ भौतिक एवं सूक्ष्म स्तरों पर सजगता तथा ताप उत्पन्न करती हुईं शरीर और मन को जाग्रत कर देती हैं। प्रशान्तक विधियाँ शीतलता एवं शान्ति प्रदान करती हैं, जबकि स्फूर्तिदायक विधियाँ विपरीत प्रभाव उत्पन्न करती हैं। शक्तिवर्धक प्राणायामों का उपयोग शक्ति बढ़ाने के लिए या विचारमग्नता अथवा मानसिक जड़ता की स्थिति से बाहर निकलने के लिए किया जा सकता है। ये अत्यन्त उन्नत विधियाँ मानी जाती हैं, इसलिए इनका अभ्यास गर्मी के मौसम में या सोने से पहले नहीं करना चाहिए।

चाहे आप शक्तिवर्धक प्राणायाम कर रहे हों या प्रशान्तक प्राणायाम, उनकी विधियों एवं प्रभावों के अतिरिक्त उनके प्रति सजगता में स्थिरता होनी चाहिए। इस दृष्टिकोण से विभिन्न परिस्थितियों में शरीर और मन की क्रियाओं का अध्ययन किया जा सकता है।

श्वान प्राणायाम

भस्त्रिका एवं कपालभाति प्राणायामों की तैयारी के लिए पहले श्वान प्राणायाम का अभ्यास करना उपयोगी होगा। श्वान का अर्थ है, हाँफना। वास्तव में यह अग्निसार क्रिया का सरल रूप है (परिशिष्ट 1 देखें)। श्वान प्राणायाम में उदर की गति को मुँह के श्वसन के साथ संयुक्त कर दिया जाता है। इस संदर्भ में 'अग्निसार' का अर्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह अग्नि तत्त्व की गति का अभ्यास है। अग्नि तत्त्व आँत के क्षेत्र में केन्द्रित होता है, जहाँ से ताप उत्पन्न करने की प्रक्रिया संचालित होती है। उदर को संचालित करते समय अग्निसार

क्रिया में बहिर्कुम्भक किया जाता है, जबकि श्वान प्राणायाम में उसी प्रकार से उदर को संचालित करते हुए शीघ्रता से श्वसन किया जाता है। यह सामान्य उदर श्वसन से, जिसमें मध्यपट का उपयोग किया जाता है, भिन्न क्रिया है। श्वान प्राणायाम में केवल उदर की पेशियों का प्रयोग किया जाता है।



विधि 1– मौलिक विधि

हाथों को घुटनों पर रख कर भद्रासन में बैठें या सिंहासन में बैठ कर हथेलियों को जमीन पर इस प्रकार रखें कि अँगुलियाँ शरीर की ओर हों (परिशिष्ट 2 देखें)।

सिर को सीधा रखें और नाक से धीरे-धीरे गहरी श्वास लें।

जीभ को बाहर निकाल लें और उदर को अन्दर-बाहर करते हुए मुँह से बलपूर्वक 10 बार श्वास लें और छोड़ें।

ध्यान रहे कि गति में समस्वरता और लयबद्धता हो।

श्वास छोड़ते समय उदर अन्दर जाता है और श्वास लेते हुए बाहर जाता है। यह श्वसन बिल्कुल पशुओं के हाँफने जैसा होता है।

धीमी लय से आरम्भ करें; क्रमश: गति और श्वास की संख्या को प्रति चक्र 25 तक बढ़ायें।

एक चक्र के बाद अगला चक्र आरम्भ करने से पूर्व सामान्य श्वसन करें।

पाँच चक्र अभ्यास करें।

सीमाएँ – इसका अभ्यास खाली पेट या भोजन के लगभग चार घंटों के बाद करना चाहिए। इसका अभ्यास उन लोगों को नहीं करना चाहिए

जो आमाशय या आँत के अल्सर, हर्निया, हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, अतिसक्रिय थायरॉयड या चिरकालिक अतिसार से पीड़ित हैं।

लाभ – यह पाचन को सुधारता है, आन्तरिक अंगों, तंत्रिकाओं और रक्त वाहिनियों की मालिश करता है। उदर पर जमी वसा के ऊतकों में कमी आने लगती है और फेफड़ों की अशुद्ध वायु बाहर निकल जाती है। इसके द्वारा उदर-स्फीति (पेट फूलना) भी ठीक हो जाती है। यह कब्ज, पाचन की समस्या और भूख की कमी का भी समाधान करता है।

विधि 2 – जालन्धर और मूल बन्धों के साथ

मौलिक विधि का अभ्यास करें, लेकिन अन्तिम रेचक के बाद मुँह को बन्द कर लें, नाक से गहरा पूरक करें, अन्तर्कुम्भक के साथ जालन्धर एवं मूल बन्ध लगायें।

आराम से जितनी देर सम्भव हो, श्वास को रोकें, पहले मूल बन्ध और उसके बाद जालन्धर बन्ध को खोलें, और फिर नाक से रेचक करें।

अगले चक्र के पूर्व कुछ देर सामान्य श्वसन करें।

पाँच चक्र अभ्यास करें।

भस्त्रिका प्राणायाम

भस्त्र उस धौंकनी को कहते हैं जिसका उपयोग आग को हवा देने के लिए किया जाता है। इस अभ्यास को यह नाम दिया गया है, क्योंकि इसमें मध्यपट की गति धौंकनी के समान होती है, जो आन्तरिक अग्नि को हवा देती है, जिससे शारीरिक, प्राणिक एवं मानसिक उष्णता उत्पन्न होती है।

आसन – इस अभ्यास में शीघ्रता से श्वसन करने के लिए दृढ़ आसन की आवश्यकता होती है। इसके लिए पद्मासन, सिद्धासन या सिद्धयोनि आसन सर्वोत्तम हैं, क्योंकि ये शरीर को एक स्थिर अवस्था में बाँध कर रखते हैं और उदर की गति को स्वतन्त्रतापूर्वक चलने देते हैं। यदि उपर्युक्त आसन सम्भव नहीं हों, तो अन्य आसनों में भी बैठा जा सकता है।

तैयारी – दोनों नासिकायें स्वच्छ रहनी चाहिए और उनमें श्वास का प्रवाह अच्छी तरह होना चाहिए। श्लेष्मा के अवरोधों को नेति के द्वारा साफ कर लेना चाहिए। यदि स्वर पूरी तरह असन्तुलित है, तो किसी सन्तुलनकारी विधि के द्वारा उसे पहले ही सन्तुलित कर लेना चाहिए। इस अभ्यास को

आरम्भ करने के पहले अभ्यासी को उदर श्वसन से परिचित होना चाहिए। अभ्यास के उत्तरवर्ती चरणों के लिए अन्तर्कुम्भक और बहिर्कुम्भक के साथ-साथ जालन्धर, उड्डियान एवं मूल बन्धों में दक्षता आवश्यक है। नासिकाओं का नियन्त्रण नासाग्र मुद्रा के द्वारा होता है; अँगूठा दायीं नासिका को नियन्त्रित करता है और अनामिका बायीं नासिका को।

अभ्यास की विधियाँ– भस्त्रिका को चार विधियों में वर्गीकृत किया गया है। विधि 1 और 2 प्रारम्भिक स्तर की हैं; इनमें प्रारम्भिक अभ्यासों को बताया गया है। विधि 3 मध्यम स्तर की है, इसके प्रत्येक चक्र में श्वास की संख्या बढ़ाई जाती है, अन्तर्कुम्भक के साथ जालन्धर बन्ध और मूल बन्ध लगाये जाते हैं। विधि 4 उच्च स्तर की है, इसमें बहिर्कुम्भक और महाबन्ध को सम्मिलित किया जाता है, और चक्रों की संख्या बढ़ाई जाती है। साधक को धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिए और अपनी क्षमता के प्रति सम्वेदनशील रहना चाहिए। अगली विधि प्रारम्भ करने के पहले पूर्व की प्रत्येक विधि का अभ्यास तब तक करना चाहिए जब तक उसमें निपुणता प्राप्त न हो जाये।

श्वसन की तीव्रता– साधक की क्षमता के अनुरूप भस्त्रिका के अभ्यास को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है– धीमा, मध्यम और त्वरित।

1. धीमे या हल्के भस्त्रिका का अभ्यास लगभग एक श्वास प्रति दो सैकण्ड की दर से पूरक या रेचक में अतिरिक्त जोर लगाए बिना किया जा सकता है। यह सामान्य श्वसन का ही विवर्धित रूप है। धीमे भस्त्रिका का उपयोग नये अभ्यासियों द्वारा तथा उपचारात्मक उद्देश्य से किया जाना चाहिए, यद्यपि इसका अभ्यास उच्च स्तर तक के सभी चरणों में किया जा सकता है।
2. मध्यम भस्त्रिका श्वसन की गति को लगभग एक श्वास प्रति सैकण्ड बढ़ा देता है।
3. त्वरित भस्त्रिका का तात्पर्य यह है कि श्वसन की गति लगभग दो श्वास प्रति सैकण्ड हो। मध्यम एवं त्वरित श्वसन मध्य तथा उच्च साधकों के लिए उपयुक्त हैं।

विधि 1– आरम्भिक अभ्यास

ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें। हाथों को घुटनों के ऊपर ज्ञान या चिन्मुद्रा में रखें।

सिर और मेरुदण्ड को सीधा रखें। आँखों को बन्द कर लें और पूरे शरीर को शिथिल करें। गहरी श्वास लें और नासिका से बलपूर्वक श्वास छोड़ें।इसके तुरन्त बाद उतने ही जोर के साथ श्वास लें।

बलपूर्वक पूरक उदर की पेशियों के पूर्ण फैलाव के परिणामस्वरूप होता है और बलपूर्वक रेचक उदर की पेशियों के पूर्ण संकुचन के परिणामस्वरूप।

अधिक जोर न लगायें। श्वास लेते समय मध्यपट नीचे की ओर तथा उदर बाहर की ओर जाता है।

श्वास छोड़ते समय मध्यपट ऊपर और उदर भीतर की ओर जाता है।

इन गतियों को थोड़ा बढ़ाना चाहिए।

10 श्वास की गिनती तक इस प्रकार अभ्यास जारी रखें।

एक गहरी श्वास लें और धीरे-धीरे श्वास छोड़ें।

यह एक चक्र हुआ। इसी तरह 5 चक्रों तक अभ्यास करें।

अभ्यास टिप्पणी – प्रारम्भ में लगभग एक श्वास प्रति दो सैकण्ड की दर से अभ्यास करें। मध्यपट तथा उदर की पेशियों के अन्दर-बाहर के खिंचाव का ध्यान रखें। नये अभ्यासी दो चक्रों के बीच कई बार सामान्य श्वसन भी कर सकते हैं ताकि उन्हें कोई तनाव नहीं हो। जब अभ्यासी इस श्वसन के अभ्यस्त हो जायें तब उन्हें श्वास को छोटा किये बिना गति को धीरे-धीरे एक श्वास प्रति सैकण्ड, उसके बाद दो श्वास प्रति सैकण्ड तक बढ़ा लेना चाहिए।

मध्यपट तथा उदर की पेशियों की क्रिया एकदम धौंकनी के समान होती है। इसमें पसलियों की न्यूनतम भूमिका रहती है। मध्यपट का उपयोग पूरक पर समान बल लगाने के लिए होता है (रेचक में शिथिलन) और उदर की पेशियों का उपयोग रेचक पर बल लगाने के लिए होता है (पूरक में शिथिलन)। दोनों मिलकर आगे-पीछे खींचने की क्रिया करते हैं। उरोस्थि के ठीक नीचे एकाग्रता से अभ्यास में मदद मिलेगी।

अभ्यास के दौरान केवल उदर अन्दर और बाहर की ओर गति करता है। शरीर में और कोई गति नहीं होनी चाहिए; भस्त्रिका के कारण उत्पन्न होने वाली तीव्र गति के बावजूद शरीर मूर्तिवत् रहना चाहिए। अभ्यास के दौरान आँखों को बन्द रखा जा सकता है। यदि आँखें खुली रहती हैं, तो उन्हें एक बिन्दु पर स्थिर कर देना चाहिए। दोनों ही स्थितियों में सम्पूर्ण अभ्यास के क्रम में पूर्ण स्थिरता होनी चाहिए। पहली बार भस्त्रिका के

अभ्यास के कुछ चक्रों के बाद मध्यपट एवं उदर की पेशियों की शक्ति तथा परस्पर क्रिया में एक अभाव का अनुभव हो सकता है। इन पेशियों में अपर्याप्त शक्ति और नियन्त्रण की कमी के कारण ऐसा होता है। इस विधि के अभ्यास में आगे बढ़ने से पूर्व तैयारी आवश्यक है। भस्त्रिका को जारी रखने के पूर्व 15 एवं 16 अध्यायों, क्रमश: 'मौलिक श्वसन विधियाँ' तथा 'प्रारम्भिक श्वसन अभ्यास' में वर्णित उदर श्वसन का अभ्यास करें। अभ्यासी को अन्य विधियों का अभ्यास प्रारम्भ करने के पहले मौलिक विधि का अभ्यास कुशलतापूर्वक करने में सक्षम होना चाहिए।

यदि भस्त्रिका का अभ्यास गर्मी के मौसम में किया जा रहा है, तो उसके बाद शरीर को शीतल करने के लिए शीतली या शीतकारी प्राणायाम के 5–10 चक्रों का अभ्यास करें।

सजगता – *शारीरिक* – श्वसन प्रक्रिया पर और उदर की गति पर।

आध्यात्मिक – मणिपुर चक्र पर।

सावधानियाँ – भस्त्रिका एक गत्यात्मक अभ्यास है। इसमें अत्यधिक शारीरिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है, इसलिए इसका अभ्यास तनावमुक्त होकर करना चाहिए। श्वसन में उग्रता नहीं होनी चाहिए, चेहरा विकृत नहीं होना चाहिए और शरीर को बहुत अधिक हिलाना भी नहीं चाहिए। मूर्च्छा जैसा अनुभव होना, अत्यधिक पसीना आना या जी मिचलाना – ये सब संकेत देते हैं कि यह अभ्यास आपके लिए अनुचित है या इसे गलत ढंग से किया जा रहा है। इनमें से किसी भी लक्षण के प्रकट होने पर किसी योग्य शिक्षक से परामर्श लेना चाहिए।

यह अभ्यास रक्त को स्वच्छ करता है। यदि सभी चरणों का अभ्यास शीघ्रतापूर्वक किया जायेगा, तो सारी अशुद्धियाँ शरीर से शीघ्रता से निकल जायेंगी, जिससे अचानक विषमुक्तता जैसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इस अभ्यास को धीरे-धीरे सावधानी के साथ करना नितान्त आवश्यक है। भस्त्रिका में पूर्ण और त्वरित श्वसन होता है। यदि प्रत्येक रेचक में फेफड़ों से सारी हवा बाहर नहीं निकल पाती है, तो सम्वातन में कमी आ सकती है, अर्थात् ऑक्सीजन की मात्रा में कमी आ सकती है। इस अभ्यास को सही ढंग से नहीं किये जाने का यह दूसरा संकेत है।

सीमाएँ – उन लोगों को भस्त्रिका का अभ्यास नहीं करना चाहिए जो उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, हर्निया, गैस्ट्रिक अल्सर, मिर्गी, रेटिना की

समस्याओं, ग्लॉकोमा या सिर चकराने की बीमारी से पीड़ित हों। वृद्धों, दमा तथा चिरकालिक ब्रोंकाइटिस से पीड़ितों, यक्षमा से स्वस्थ हो रहे व्यक्तियों या गर्भावस्था के प्रथम तीन महीनों वाली स्त्रियों को एक योग्य शिक्षक के मार्गदर्शन में इसका अभ्यास करने का परामर्श दिया जाता है।

विधि 2 – एक के बाद दूसरी नासिका से

ध्यान के किसी आरामदायक आसन, जैसे, पद्मासन, सिद्धासन/सिद्धयोनि आसन में बैठ जायें।

सिर और मेरुदण्ड को सीधा रखें।

आँखों को बन्द कर लें और पूरे शरीर को शिथिल करें।

दाहिने हाथ को चेहरे के सामने ऊपर उठाकर नासाग्र मुद्रा में रखें।

दाहिने नासिकाछिद्र को अँगूठे से बन्द कर लें।

बिना अधिक जोर लगायें बायें नासिकाछिद्र से 10 बार जल्दी-जल्दी बलपूर्वक श्वास लें और छोड़ें। नासिका में सूँ-सूँ की आवाज होनी चाहिए, किन्तु गले एवं छाती से कोई आवाज नहीं आनी चाहिए।

श्वास के साथ उदर लयपूर्ण ढंग से फैलना और सिकुड़ना चाहिए।

वायु भरने और निकालने की क्रिया उदर द्वारा ही होनी चाहिए।

वक्ष, कन्धे तथा चेहरा शिथिल रहने चाहिए।

10 श्वास के पश्चात् बायें नासिकाछिद्र से गहरी श्वास लें और छोड़ें।

बायें नासिकाछिद्र को बन्द कर लें और दायीं नासिका से श्वास लेते और छोड़ते हुए इस प्रक्रिया को दुहरायें। उठे हुए हाथ को घुटने पर रख दें।

दोनों नासिकाछिद्रों से श्वास लेते और छोड़ते हुए इस प्रक्रिया को दुहरायें।

10 बार बायें, दाहिने और अन्त में दोनों नासिकाछिद्रों से श्वसन करने से एक चक्र पूरा होता है। इसी तरह 5 चक्र तक अभ्यास करें।

अभ्यास टिप्पणी – क्षमता के अनुसार त्वरित श्वसन की संख्या को धीरे-धीरे बढ़ाया जा सकता है।

विधि 3 – अन्तर्कुम्भक के साथ

दाहिने नासिकाछिद्र को अँगूठे से बन्द कर लें।

बायें नासिकाछिद्र से बलपूर्वक श्वास लें और छोड़ें।

श्वास के साथ उदर लयपूर्ण ढंग से फैलना और सिकुड़ना चाहिए।
बलपूर्वक श्वसन पूर्ण करने के पश्चात्, उदर और छाती को फैलाते हुए बायें नासिकाछिद्र से गहरी श्वास लें, दोनों नासिकाछिद्रों को बन्द कर कुछ क्षणों के लिए अन्तर्कुम्भक करें।
बायें नासिकाछिद्र से रेचक करें।
अब बायें नासिकाछिद्र को बन्द करें और इस प्रक्रिया को दायें नासिकाछिद्र से दुहरायें।
बलपूर्वक श्वसन पूर्ण करने के पश्चात् उदर और छाती को फैलाते हुए दायें नासिका छिद्र से गहरी श्वास लें, दोनों नासिकाछिद्रों को बन्द कर कुछ क्षणों के लिए अन्तर्कुम्भक करें।
दायें नासिकाछिद्र से रेचक करें।
ऊपर उठाये हुए हाथ को नीचे घुटने पर रखें।
इस प्रक्रिया को एक साथ दोनों नासिका छिद्रों से दुहरायें।
दोनों नासिकाछिद्रों से एक साथ बलपूर्वक श्वसन पूर्ण करने के पश्चात्, दोनों नासिकाछिद्रों से धीमा गहरा पूरक करें।
दोनों नासिकाछिद्रों को बन्द कर लें, श्वास को कुछ क्षणों के लिए अन्दर रोकें और फिर दोनों नासिकाछिद्रों से एक साथ धीरे-धीरे श्वास छोड़ें।
यह एक चक्र हुआ, 5 चक्र तक अभ्यास करें।

अभ्यास टिप्पणी – बीस श्वासों से आरम्भ करें। अभ्यास में प्रगति होने पर श्वास की संख्या को धीरे-धीरे बढ़ाया जा सकता है। यदि कुम्भक के बाद रेचक में कठिनाई हो, तो रेचक के पहले हल्का पूरक कर लेने से कंठ खुल जाता है और श्वसन-पेशियाँ पुन: सक्रिय हो जाती हैं।

विधि 4 – बहिर्कुम्भक के साथ

अन्तर्कुम्भक में निपुणता प्राप्त हो जाने के बाद बहिर्कुम्भक को अभ्यास के साथ जोड़ा जा सकता है।
प्रत्येक चक्र के बाद दोनों नासिकाओं से गहरी श्वास लें और उसके बाद पूर्ण रेचक करें और श्वास को कुछ सैकण्ड के लिए बाहर रोकें।
पाँच चक्रों तक अभ्यास करें।
बहिर्कुम्भक की अवधि को धीरे-धीरे 30 सैकण्ड तक बढ़ाया जा सकता है। इसमें अधिक बल प्रयोग न करें।

विधि 5 – बन्ध के साथ

अन्तर्कुम्भक और बहिर्कुम्भक में निपुणता प्राप्त हो जाने के बाद बन्ध को अभ्यास के साथ जोड़ा जा सकता है।

प्रत्येक चक्र के बाद गहरी श्वास लें और श्वास को अन्दर रोक लें।

पहले जालन्धर बन्ध और उसके बाद मूल बन्ध लगायें।

अन्तर्कुम्भक की अवधि को धीरे-धीरे 30 सैकण्ड तक बढ़ाया जा सकता है। अन्तर्कुम्भक के बाद पहले मूल बन्ध और उसके बाद जालन्धर बन्ध खोल दें, फिर रेचक करें।

श्वास को बाहर रोकें और महाबन्ध का अभ्यास करें।

महाबन्ध खोलें और पूरक करें। पाँच चक्रों तक अभ्यास करें।

अभ्यास टिप्पणी – श्वास की संख्या को प्रति माह 5 तक और बायीं, दायीं तथा दोनों नासिकाओं से अधिक-से-अधिक 50 श्वसन की गिनती तक बढ़ाया जा सकता है। हालाँकि हर विधि में श्वास की संख्या को बढ़ाना आवश्यक नहीं है। प्रत्येक चक्र में श्वास की संख्या तभी बढ़ानी चाहिए, जब इसे बिना किसी कठिनाई के किया जा सके। प्रत्येक विधि का अभ्यास 20 त्वरित श्वासों के साथ करने पर प्रत्यक्ष लाभ का अनुभव होगा। जो श्वास की संख्या को 50 से अधिक या चक्रों की संख्या को 10 से अधिक बढ़ाना चाहते हैं, उन्हें केवल कुशल मार्गदर्शन में ऐसा करना चाहिए। बहिर्कुम्भक के अभ्यास को बढ़ाने के लिए उसी क्रमबद्ध प्रक्रिया का अनुसरण करना चाहिए जैसा अन्तर्कुम्भक के लिए किया गया था। ऐसा करने पर शरीर, स्नायु तंत्र, मन तथा भावनाएँ धीरे-धीरे अनुकूलित हो जाती हैं। कुछ समय तक सामान्य बहिर्कुम्भक का अभ्यास कर लेने के बाद महाबन्ध की अवस्था आने तक अन्य बन्धों को अभ्यास में जोड़ते जायें। जब तक श्वास स्वत: न रुक जाये तब तक भस्त्रिका जारी रखें। उसके बाद अभ्यास को बन्द कर दें। अभ्यास के साथ भस्त्रिका की आवृत्ति, गहराई और गति अधिक-से-अधिक तीव्र होती जाती है।

लाभ – यदि भस्त्रिका को व्यवस्थित ढंग से निरंतर किया जाये तो इससे अनगिनत लाभ होते हैं।

फेफड़ों में वायु के त्वरित आदान-प्रदान के कारण रक्तप्रवाह के अन्दर और बाहर ऑक्सीजन तथा कार्बन-डाइऑक्साइड के आदान-प्रदान में वृद्धि हो जाती है। इससे पूरे शरीर की कोशिकाओं में चयापचय की गति

उत्प्रेरित होती है, जिससे शरीर में ताप उत्पन्न होता है और अपशिष्ट पदार्थ तथा विषाक्त तत्त्व बाहर निकल जाते हैं। यदि किसी को पर्याप्त गर्म कपड़ों की कमी के कारण ठंढ लग जाये, तो भस्त्रिका के द्वारा शरीर को तुरंत गर्म किया जा सकता है।

भस्त्रिका अतिसंवातन की ऐसी प्रक्रिया है, जिससे श्वसन में क्षारीय प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है और श्वसन केन्द्रों पर उसका शान्तिदायक प्रभाव पड़ता है। रक्त में कार्बन-डाइऑक्साइड का स्तर कम हो जाता है; इस प्रकार अभ्यास के बाद कुम्भक अच्छी तरह होने लगता है। मध्यपट की त्वरित तथा क्रमबद्ध गति पाचन अंगों की मालिश करती और उन्हें उत्प्रेरित करती है। इससे पाचन संस्थान सशक्त होता है और उनमें रक्त संचार सुधर जाता है। यह मालिश आँतों और उदर में स्थित अन्य अंगों की पेशियों को शक्ति प्रदान करती है, जिससे अंगों को सामने से पर्याप्त सहारा मिलता है ताकि मेरुदण्ड के निचले भाग में खिंचाव नहीं हो, जो प्राय: पीठ के निचले हिस्से में दर्द का कारण होता है। यदि पहले से तैयारी हो, तो यह अभ्यास स्त्रियों के लिए प्रसव के समय उपयोगी होता है।

भस्त्रिका कफ़, पित्त और वात दोषों को संतुलित करने में मदद करता है। यह गले की सूजन, जमा हुए कफ़ तथा साइनोसाइटिस को दूर करता है, और सर्दी-खाँसी तथा श्लेष्म झिल्लियों से होने वाले स्राव का प्रतिरोध करने की क्षमता प्रदान करता है, स्नायु तंत्र को सन्तुलित और सशक्त बनाते हुए मन को शान्त और एकाग्र करता है। चिरकालिक अवसाद और विभिन्न मनोरोगों पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है।

भस्त्रिका का अभ्यास ऊर्जा में वृद्धि और प्राणों के सन्तुलन के द्वारा शक्ति को बढ़ाता है और तनाव एवं चिन्ता के स्तर को कम करता है। यह समान वायु की उत्पत्ति को बढ़ाता है, जिससे प्राण का भण्डार भरता रहता है और सम्पूर्ण प्राणिक तंत्र उत्प्रेरित होता है। अभ्यास करते समय शरीर के सभी प्राणों में स्पन्दन होने लगता है, लेकिन अभ्यास के अन्त में मन पूर्णत: शान्त हो जाता है। वास्तव में भस्त्रिका के अभ्यास के द्वारा बिना किसी प्रयास के ही ध्यान की अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। योग शास्त्रों में कहा गया है कि भस्त्रिका सुषुम्ना नाड़ी की तीन ग्रंथियों को खोलने में सहायता करता है, जिससे कुण्डलिनी शक्ति को निर्बाध आरोहण करने का मार्ग मिल जाता है। हठयोग प्रदीपिका (2:66 – 67) में कहा गया है –

कुंडली बोधकं क्षिप्रं पवनं सुखदं हितम् ।
ब्रह्मनाडीमुखे संस्थकफाद्यर्गलनाशनम् ॥

यह (भस्त्रिका) शीघ्र ही कुण्डलिनी को जाग्रत करता है। यह सुखद और लाभदायक है, और ब्रह्म नाड़ी के मुख पर जमे हुए अत्यधिक कफ़ से उत्पन्न बाधा को दूर करता है।

सम्यग्गात्रसमुद्भूतग्रंथित्रयविभेदकम् ।
विशेषेणैव कर्तव्यं भस्त्राख्यं कुंभकंत्विदम् ॥

भस्त्रिका नामक कुम्भक तीन ग्रंथियों को खोलने में सहायता करता है। इस प्रकार यह योगियों का कर्त्तव्य है कि वे भस्त्रिका का अभ्यास करें।

कपालभाति प्राणायाम

संस्कृत शब्द 'कपाल' का अर्थ है सिर के सामने का भाग और 'भाति' का अर्थ है प्रकाश तथा ज्ञान। इसलिए कपालभाति वह अभ्यास है जो मस्तिष्क के सामने वाले क्षेत्र को प्रकाशित करता और स्पष्टता लाता है। यह प्राणायाम सम्पूर्ण मस्तिष्क को और सूक्ष्म ज्ञान तथा अन्तर्ज्ञान के लिए उत्तरदायी केन्द्रों को शक्ति प्रदान करता है। इसे शुद्ध करने वाला अभ्यास भी कहा जाता है और इसीलिए इसे षट्कर्मों की सूची में रखा गया है। इस अभ्यास के लिए 'कपालशोधन' शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। शोधन का अर्थ 'शुद्धिकरण' होता है।

यद्यपि कपालभाति भस्त्रिका के समान ही होता है, फिर भी इन दोनों में महत्त्वपूर्ण भिन्नताएँ भी हैं। भस्त्रिका में अभ्यास के साथ श्वसन की दर बढ़ती जाती है; जबकि कपालभाति में गति धीरे-धीरे कम होती जाती है। भस्त्रिका में प्रगति के साथ श्वास तीव्र और छोटी होती जाती है; जबकि कपालभाति में श्वास आरम्भ में तीव्र रहती है, लेकिन अभ्यास के साथ यह धीमी और लम्बी होती जाती है।

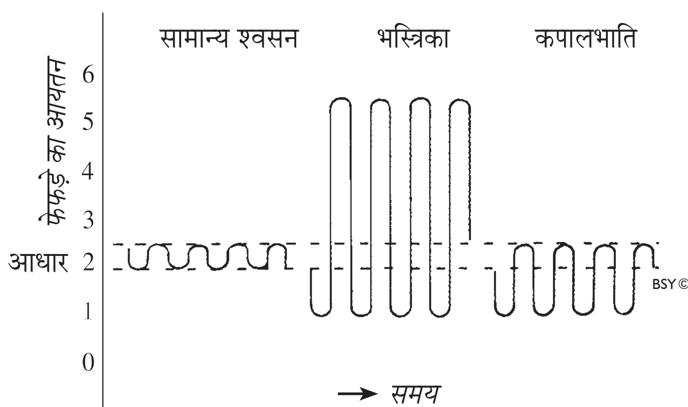
भस्त्रिका के पूरक और रेचक में, आराम की स्थिति के आयतन के ऊपर और नीचे वक्ष क्षेत्र के प्रसार और संकुचन में समान बल का प्रयोग किया जाता है। कपालभाति के रेचक में वक्षीय आयतन को घटाते हुए केवल रेचक के समय बल प्रयोग किया जाता है, जबकि रेचक की चरम अवस्था से आधारीय आयतन के बाद पूरक आराम से होने वाली प्रक्रिया है। सामान्य श्वसन में

पूरक सक्रिय और रेचक निष्क्रिय होता है। कपालभाति में इसके विपरीत प्रक्रिया होती है, रेचक बल-प्रयोग के साथ क्रियाशील प्रक्रिया है, जबकि पूरक आराम से होने वाली प्रक्रिया है।

कपालभाति एवं भस्त्रिका में पूरक/रेचक के प्रकार

श्वसन का प्रकार	पूरक	रेचक	फेफड़े का आयतन
सामान्य	सक्रिय	निष्क्रिय	आधारीय आयतन से बढ़ा और आधारीय आयतन तक घटा हुआ
कपालभाति	निष्क्रिय	सक्रिय	आधारीय आयतन से घटा और आधारीय आयतन तक बढ़ा हुआ
भस्त्रिका	सक्रिय	सक्रिय	आधारीय आयतन से ऊपर बढ़ा और नीचे घटा हुआ

फेफड़े का आयतन



कपालभाति फेफड़ों को आराम के आधारीय आयतन से भी अधिक संकुचित कर सामान्य प्रक्रिया को उलट देता है, जबकि सामान्य श्वसन में पूरक की सक्रिय और रेचक की निष्क्रिय प्रक्रिया के द्वारा फेफड़ों का प्रसार और संकुचन होता है। मस्तिष्क के वे केन्द्र जो सामान्य श्वसन के लिए

प्रशिक्षित रहते हैं, इन विधियों के अभ्यास द्वारा विविध प्रकार की क्रियाओं में निपुण हो जाते हैं।

पंच प्राणों के दृष्टिकोण से प्राण (सक्रिय पूरक) और अपान (निष्क्रिय रेचक) की भूमिका उलट जाती है, जिससे समान में कमी आ जाती है; मानसिक स्तर पर इसका अर्थ होता है वृत्तियों की क्रियाशीलता में कमी आना। कपालभाति के दौरान इसका अनुभव किया जा सकता है। इसके साथ ही सम्पूर्ण श्वसन प्रक्रिया के द्वारा जो शक्तिशाली ऊर्ध्वमुखी प्रवाह उत्पन्न होता है, वह सिर और गर्दन में उदान को उत्प्रेरित करता है; 'कपालभाति' शब्द इसी प्रक्रिया को व्यक्त करता है।

इसकी पाँच विधियाँ हैं; इनमें से प्रत्येक का अभ्यास अगली विधि को करने के पूर्व तब तक करना चाहिए जब तक वह बिना प्रयास के न होने लगे।

विधि 1 – प्रारम्भिक अभ्यास (षट्कर्म विधि)

ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें।

सिर और मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए हाथों को घुटनों पर चिन् या ज्ञान मुद्रा में रखें और आँखें बन्द कर लें।

पूरे शरीर को शिथिल करें।

उदर की पेशियों को बलपूर्वक संकुचित करते हुए दोनों नासिकाछिद्रों से श्वास छोड़ें और अगली श्वास बिना प्रयास के उदर की पेशियों को शिथिल रखते हुए लें।

पूरक सहज होना चाहिए, उसमें किसी प्रकार का प्रयास नहीं लगना चाहिए।

10 बार तेजी से श्वास-प्रश्वास करें।

गहरी श्वास लेकर गहरी श्वास छोड़ें।

श्वास को सामान्य होने दें।

यह एक चक्र हुआ और इसी तरह 5 चक्र तक अभ्यास करें।

अभ्यास टिप्पणी – जब कपालभाति का अभ्यास षट्कर्म के रूप में किया जाता है तब यह नासा मार्ग में जमा हुए कफ़ को साफ करता है। इसलिए प्राणायाम के पूर्व इसका अभ्यास करना चाहिए।

त्वरित श्वसन उदर से होना चाहिए; कन्धों और चेहरे को शिथिल रखना चाहिए। जब उदर की पेशियाँ पुष्ट होने लगें तब श्वसन की संख्या को

10 से 50 तक बढ़ाया जा सकता है। उच्च अभ्यासी इसे प्रति चक्र 100 श्वास तक बढ़ा सकते हैं।

कपालभाति को पेट खाली रहने पर ही करना चाहिए। यदि रात में देर से किया जाये तो नींद नहीं भी आ सकती है। यदि दर्द या सिर चकराने का अनुभव हो, तो अभ्यास बन्द कर देना चाहिए और कुछ देर शान्ति से बैठ जाना चाहिए। उसके बाद अधिक सजगता तथा कम बल-प्रयोग के साथ अभ्यास करना चाहिए। यदि स्थिति में सुधार नहीं आये, तो किसी कुशल शिक्षक से परामर्श लेना चाहिए।

सीमाएँ – हृदय-रोग, उच्च रक्तचाप, चक्कर आना, मिर्गी, दौरे पड़ना, हर्निया या गैस्ट्रिक अल्सर से पीड़ित व्यक्तियों के लिए यह अभ्यास वर्जित है। गर्भवती महिलाओं को भी यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ – कपालभाति ऑक्सीजन एवं कार्बन डाइऑक्साइड के आदान-प्रदान को उत्प्रेरित कर फेफड़ों की कूपिकाओं को स्वच्छ वायु से भर देता है और सम्पूर्ण शरीर को शुद्ध कर देता है, साथ-ही कूपिकाओं में ऑक्सीजन की सान्द्रता को बढ़ा देता है। परिणामत: इसका प्रभाव सम्पूर्ण शरीर के शुद्धिकरण और चयापचय में वृद्धि के रूप में होता है। चयापचय की दर और मस्तिष्क में ऑक्सीजन की आपूर्ति में वृद्धि का मस्तिष्क पर जागरण जैसा प्रभाव पड़ता है, स्नायु तंत्र सन्तुलित और सशक्त हो जाता है। इसका अभ्यास पाचन अंगों को भी शक्ति प्रदान करता है और दमा, एम्फ़िसेमा, ब्रोंकाइटिस तथा यक्ष्मा जैसे श्वास सम्बन्धी रोगों में भी सहायक होता है।

कपालभाति आध्यात्मिक साधकों के लिए विशेष रूप से उपयोगी होता है, क्योंकि यह इन्द्रियों के विक्षेपों, विचारों, दृश्यों तथा मानसिक द्वन्द्वों को अवरुद्ध करता हुआ मन को शान्त कर ध्यान के लिए तैयार करता है। इसके साथ-ही यह मन को ऊर्जान्वित करता है, जिससे ध्यान के लिए बैठने पर नींद नहीं आती है। मानसिक कार्यों में संलग्न लोगों पर भी इसका लाभदायक प्रभाव होता है।

विधि 2 – एक के बाद दूसरी नासिका से

ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें।

दायें हाथ को ऊपर उठा कर नासाग्र मुद्रा में रखें।

दायें नासिकाछिद्र को अँगूठे से बन्द कर लें।

बायें नासिकाछिद्र से 10 बार बलपूर्वक श्वास छोड़ें और सहजता से अन्दर लें।

वायु भरने और निकालने की क्रिया उदर द्वारा ही होनी चाहिए; वक्ष, कन्धे और चेहरा शिथिल रहें।

10 श्वास के पश्चात्, बायें नासिकाछिद्र से एक गहरी श्वास अन्दर लें और बाहर छोड़ें। बायें नासिका छिद्र को बन्द कर दें और यही प्रक्रिया दायें नासिका छिद्र से दुहरायें।

10 श्वास के पश्चात्, दायें नासिका छिद्र से एक गहरी श्वास अन्दर लें और बाहर छोड़ें।

उठे हुए हाथ को पुन: घुटने पर रख दें।

दोनों नासिकाछिद्रों से एक साथ इस प्रक्रिया को दुहरायें।

10 श्वास के पश्चात् दोनों नासिकाछिद्रों से एक साथ एक गहरी श्वास अन्दर लें और बाहर छोड़े।

10 बार बायें, दायें और अन्त में दोनों नासिका छिद्रों से श्वसन करने से एक चक्र पूरा होता है। इस तरह 5 चक्र तक अभ्यास करें।

अभ्यास टिप्पणी – प्रारम्भिक अभ्यासी चक्रों के बीच कुछ सामान्य श्वसन कर सकते हैं। उदर की पेशियों के सशक्त हो जाने पर श्वास की संख्या को धीरे-धीरे 50 तक बढ़ाया जा सकता है।

विधि 3 – अन्तर्कुम्भक के साथ

विधि 2 में दक्षता प्राप्त करने के पश्चात् अन्तर्कुम्भक के साथ अभ्यास किया जा सकता है।

एक चक्र पूरा करने के पश्चात् गहरी श्वास अन्दर लें और बिना किसी तनाव के जितनी देर तक आराम से श्वास को अन्दर रोक सकें, रोकें।

श्वास पर नियन्त्रण रखते हुए धीरे-धीरे रेचक करें।

5 चक्र तक अभ्यास करें।

विधि 4 – बहिर्कुम्भक के साथ

अन्तर्कुम्भक में दक्षता प्राप्त करने के पश्चात् बहिर्कुम्भक को जोड़ा जा सकता है।

चक्र के अन्त में गहरी श्वास अन्दर लें।
धीरे-धीरे पूर्णरूप से श्वास बाहर छोड़ें।
जितनी देर तक आराम से हो सके, श्वास को बाहर रोकें।
5 चक्र तक अभ्यास करें।

विधि 5 – बन्ध के साथ

अन्तर्कुम्भक और बहिर्कुम्भक में निपुण हो जाने के बाद बन्धों को अभ्यास में सम्मिलित किया जा सकता है।
जालन्धर और मूल बन्धों को अन्तर्कुम्भक के साथ और महाबन्ध को बहिर्कुम्भक के साथ किया जा सकता है।
प्रत्येक चक्र के बाद गहरी श्वास लें और बिना तनाव के अन्तर्कुम्भक करें।
अन्तर्कुम्भक के दौरान जालन्धर और मूल बन्धों का अभ्यास करें।
मूल बन्ध और जालन्धर बन्ध को खोल दें और रेचक करें।
बहिर्कुम्भक के साथ महाबन्ध लगायें।
बिना तनाव के आरामदायक समय तक श्वास रोकें और बन्ध को लगाये रखें।
महाबन्ध खोल दें और पूरक करें।
पाँच चक्र अभ्यास करें।

अभ्यास टिप्पणी – अभ्यास के प्रभावों की सजगता के साथ धीरे-धीरे आगे बढ़ें। श्वास की संख्या, चक्रों की संख्या और कुम्भक की लम्बाई को धीरे-धीरे बढ़ाते जायें। अवधि को बढ़ाकर अनावश्यक तनाव उत्पन्न नहीं करें। यदि श्वास की कमी का अनुभव हो या हाँफने लगें तो अभ्यास को रोक दें या चक्रों की संख्या को आरामदायक स्तर तक ही रखें।

सजगता – *शारीरिक* – लयबद्ध, प्रबल रेचक पर।
आध्यात्मिक – भ्रूमध्य में शून्य पर या सर्वव्यापी शान्ति पर।

क्रम – ध्यान की विधियों के ठीक पहले अभ्यास करें।

सूर्यभेद प्राणायाम

संस्कृत का सूर्य शब्द पिंगला नाड़ी का पर्यायवाची है, जबकि भेद का अर्थ भेदन या जाग्रत करना है। सूर्यभेद पिंगला नाड़ी को भेदता है या उसे शुद्ध करता है। यह अभ्यास चन्द्रभेद के समान ही है, लेकिन यह विपरीत ऊर्जा,

प्राण शक्ति को उत्प्रेरित करता है। प्रारम्भिक अभ्यास में दायीं नासिका से पूरक करने पर मस्तिष्क के बायें गोलार्द्ध के साथ पिंगला नाड़ी क्रियाशील हो जाती है। पूरक के बाद अन्तर्कुम्भक करने पर प्राण पिंगला में स्थित हो जाता है। बायीं नासिका से रेचक करने पर इड़ा में शेष अशुद्धियाँ ऊर्जा के साथ बाहर निकल जाती हैं। अन्तिम अभ्यास में पूरक और रेचक, दोनों के लिए मात्र दायीं नासिका का प्रयोग किया जाता है।

सूर्यभेद एक शक्तिशाली अभ्यास है और इसे सुयोग्य मार्गदर्शन में ही सीखा जाना चाहिए, ताकि इसके प्रभावों को नियन्त्रित रखा जा सके। इस अभ्यास को करने के पूर्व अन्तर्कुम्भक और बन्धों में दक्षता प्राप्त कर लेनी चाहिए।

विधि 1 – प्रारम्भिक अभ्यासः एक के बाद दूसरी नासिका से

चरण 1 – ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें।

हाथों को घुटनों पर चिन् या ज्ञान मुद्रा में रखें।

आँखें बन्द कर लें और सम्पूर्ण शरीर को शिथिल करें।

जब शरीर आरामदायक स्थिति में स्थिर हो जाये, तब श्वास पर ध्यान केन्द्रित करें जब तक वह धीमी और गहरी न हो जाये।

हाथ को नासाग्र मुद्रा में रखें।

बायीं नासिका को बन्द कर दें और दायीं नासिका के द्वारा धीमे से गहरी श्वास लें। पूरक के बाद दोनों नासिकाओं को बन्द कर दें और अन्तर्कुम्भक करें।

सिर को नीचे झुकाते हुए जालन्धर बन्ध लगायें।

श्वास रोकें और आरामदायक स्थिति तक बन्ध लगायें।

सिर को ऊपर उठायें और जब सिर सीधा हो जाये तब बायीं नासिका से धीरे-धीरे रेचक करें।

यह एक चक्र हुआ। इसी प्रक्रिया को दुहरायें – दायीं नासिका से पूरक और बायीं नासिका से रेचक करें।

दस चक्र अभ्यास करें, धीरे-धीरे पूरक/कुम्भक/रेचक की अवधि को बढ़ाते जायें।

चरण 2 – ऊपर वर्णित मौलिक विधि का अभ्यास करें और उसमें श्वास के क्रमशः 1:1:1, 1:2:2 और 1:4:2 के अनुपात को जोड़ते जायें।

चरण 3 – दूसरी अवस्था में निपुण हो जाने के बाद कुम्भक के दौरान उसमें मूल बन्ध और शाम्भवी मुद्रा को जोड़ दें।

सावधानियाँ – सूर्यभेद का अभ्यास खाली पेट ही करना चाहिए, क्योंकि यह पाचन सम्बन्धी ऊर्जा के प्रवाह को प्रभावित कर सकता है। यदि इस प्राणायाम को अधिक देर तक किया गया तो इससे असन्तुलन भी उत्पन्न हो सकता है। इसका अभ्यास सामान्य अभ्यासी को नहीं करना चाहिए; जिन लोगों में इड़ा नाड़ी प्रबल है, केवल उन्हें करना चाहिए।

सीमाएँ – हृदयरोग, उच्च रक्तचाप, मिर्गी, थायरायड की अतिक्रियाशीलता, पेप्टिक अल्सर, अम्लता तथा अत्यधिक चिन्ता से पीड़ित व्यक्तियों को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ – सूर्यभेद अनुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र तथा उससे जुड़ी शारीरिक एवं मानसिक अवस्थाओं को क्रियाशील बनाता है। यह शरीर में ताप उत्पन्न करता है और वात तथा पित्त दोषों के असन्तुलन का निवारण करता है। सूर्यभेद प्राणायाम आँख के गोलक पर बढ़े हुए दबाव को जिसके कारण ग्लॉकोमा होता है, कम करता है। इससे साइनोसाइटिस, गठिया, राइनाइटिस तथा तंत्रिकार्ति में राहत मिलती है।

पिंगला-नाड़ी को क्रियाशील बना कर यह प्राण-शक्ति को उद्दीप्त और जाग्रत करता है। बहिर्मुखता और गतिशीलता में वृद्धि कर यह शारीरिक गतिविधियों के सम्पादन में दक्षता लाता और विषाद को दूर करता है। जो लोग मन्द बुद्धि एवं जड़ हैं या बाह्य जगत् के साथ व्यवहार में कठिनाई का अनुभव करते हैं, उन्हें विशेष रूप से यह अभ्यास करने का परामर्श दिया जाता है। यह मन को अधिक सावधान और अनुभूतिक्षम बनाता है, इसलिए ध्यान के पूर्व का यह एक उत्तम अभ्यास है। घेरण्ड संहिता के अनुसार (5:69) –

कुम्भक: सूर्यभेदस्तु जरामृत्युविनाशक: ।
बोधयेत् कुंडलीं शक्तिं देहानलं विवर्धयेत् ॥

सूर्यभेद जरा और मृत्यु का विनाश करता है, शरीर के ताप को बढ़ाता है तथा कुण्डलिनी को जाग्रत करता है।

विधि 2 – दायीं नासिका से

पहली विधि के अभ्यास की एक निश्चित अवधि के पश्चात् इस दूसरी विधि का अभ्यास किया जाता है। इसमें पहली विधि के निर्देशों और

अवस्थाओं का ही अनुसरण करना है। अन्तर केवल यह है कि इसमें पूरक एवं रेचक, दोनों को दायीं नासिका से ही करना है। इस अभ्यास का उद्देश्य मस्तिष्क के केवल बायें गोलार्द्ध पर प्रभाव डालना और कुछ समय के लिए दायें गोलार्द्ध को अवरुद्ध कर देना है। इसमें पिंगला के प्रवाह को सक्रिय बनाया जाता है और इड़ा के प्रवाह को अवरुद्ध किया जाता है।

चरण 1 – ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें।

हाथों को घुटनों पर चिन् या ज्ञान मुद्रा में रखें।

आँखें बन्द कर लें और सम्पूर्ण शरीर को शिथिल करें।

जब शरीर आरामदायक स्थिति में स्थिर हो जाये, तब सजगता को श्वास पर केन्द्रित करें जब तक वह धीमी और गहरी न हो जाये।

हाथ को नासाग्र मुद्रा में रखें।

अनामिका अँगुली से बायीं नासिका को बन्द करें और दायीं नासिका से धीरे से गहरा पूरक करें।

बायीं नासिका को अनामिका अँगुली से बन्द रखते हुए दायीं नासिका से धीरे से रेचक करें। यह एक चक्र हुआ।

चरण 2 – हाथ को नासाग्र मुद्रा में रखें।

अनामिका अँगुली से बायीं नासिका को बन्द करें और दायीं नासिका से धीरे से गहरा पूरक करें।

पूरक के अन्त में दोनों नासिकाओं को बन्द कर दें। आरामदायक अवधि तक अन्तर्कुम्भक लगायें।

बायीं नासिका को अनामिका अँगुली से बन्द रखते हुए दायीं नासिका से धीरे से रेचक करें।

बिना तनाव के धीरे-धीरे पूरक/कुम्भक/रेचक की अवधि को बढ़ाते जायें।

चरण 3 – दूसरे चरण में निपुणता प्राप्त हो जाने के बाद कुम्भक के दौरान जालन्धर और मूल बन्धों का अभ्यास भी करें।

सजगता – दायें नासिकाछिद्र में श्वास पर।

अवधि – सूर्यभेद प्राणायाम का अभ्यास शुरू करते समय 10 चक्र पर्याप्त हैं। समय के साथ जब अभ्यास सहजता से होने लगे, अवधि को 10 मिनट तक बढ़ा सकते हैं। धीरे-धीरे कुम्भक की अवधि को कुछ माह के पश्चात् बढ़ाया जा सकता है। अभ्यास को स्थिर करने के लिये 1:1:1 के

अनुपात से शुरू किया जा सकता है। इसमें दक्षता प्राप्त करने के पश्चात् इसे 1:1:2 और फिर 1:2:2 तक बढ़ाया जा सकता है।

प्लाविनी प्राणायाम

प्लवन का अर्थ होता है तैरना, और प्लाविनी का अभ्यास साधक को पानी पर तैरने की क्षमता प्रदान करता है। यह प्राणायाम का एक असाधारण प्रकार है, जिसका उपयोग सामान्य रूप से नहीं किया जाता है। यह वातसार धौति के समान है, लेकिन इसमें वायु को अन्दर ही रोक कर रखा जाता है। हठ रत्नावली में इसका उल्लेख भुजंगिनी मुद्रा के रूप में किया गया है।

विधि

ध्यान के किसी आसन में बैठ जायें और प्राणायाम के लिए तैयार हो जायें।
नाक से श्वास लें और वायु को गले से इस प्रकार निगल जायें मानो भोजन या पानी निगल रहे हों।
इस बात का ध्यान रखते हुए कि वायु अन्दर ही रह जाती है, इसी प्रकार पाँच बार श्वास को निगलते जायें।
इस प्रकार एक चक्र हुआ।
जब वायु को अन्दर रोकते हैं, उस समय शरीर में कोई गति नहीं होनी चाहिए, अन्यथा वायु बाहर निकल जायेगी।
तीन चक्र अभ्यास करें।

क्रम – प्लाविनी का अभ्यास आसन और प्राणायाम के बाद करना चाहिए। इसके बाद सिर के बल किये जाने वाले आसन करने चाहिए, ताकि वायु आँतों से होती हुई गुदा से बाहर निकल जाये। पाषिणी मुद्रा इस प्रयोजन के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। उपवास की अवधि में भी प्लाविनी का अभ्यास किया जा सकता है।

लाभ – प्लाविनी प्राणायाम वात और पित्त को पेट से बाहर निकालता है। यह उपवास के दौरान भूख और प्यास की अनुभूति से मुक्त करता है। योगी कई दिनों की समाधि में जाने के पूर्व इसका अभ्यास करते हैं, ताकि उपवास के दौरान पेट भरा हुआ रहे।

परिशिष्ट

परिशिष्ट 1

पूरक अभ्यास

जल नेति

जल नेति नासा मार्गों को नमकीन जल से स्वच्छ करने की एक प्रक्रिया है। यह ऐसे अनेक प्राणायामों के अभ्यासों के लिए आवश्यक होती है जिनमें बाधारहित श्वसन की आवश्यकता होती है।

उपकरण– एक विशेष प्रकार के नेति लोटे का उपयोग करना चाहिए। लोटा प्लास्टिक, मिट्टी, पीतल या किसी ऐसी धातु का हो सकता है जिसमें जल अशुद्ध नहीं हो। लोटे की टोंटी का अन्तिम सिरा ऐसा होना चाहिए कि वह नासिका में अच्छी तरह बैठ जाये और पानी बाहर नहीं बहे। यदि चायदानी की टोंटी बहुत बड़ी या धारदार नहीं हो तो उसका उपयोग भी किया जा सकता है।

नमकीन जल– अभ्यास के लिए उपयोग में लाया जाने वाला जल शुद्ध और शरीर के तापमान का होना चाहिए। आधे लीटर जल में चाय का एक चम्मच नमक मिलाना चाहिए। नमक अच्छी तरह जल में घुल जाना चाहिए। जल में नमक मिलाने से जल का परासरण दाब शरीर के द्रव के बराबर हो जाता है, जिससे बारीक रक्त वाहिनियों तथा श्लेष्मा झिल्लियों में होने वाली किसी भी प्रकार की उत्तेजना कम हो जाती है। दर्द या जलन की अनुभूति यह संकेत देती है कि जल में नमक की मात्रा या तो बहुत कम है या बहुत अधिक।

आसन– या तो कागासन में बैठें या कन्धों तथा सिर को सामने की ओर झुका कर खड़े हो जायें। दूसरी स्थिति में नेति का अभ्यास करने के लिए बेसिन या सिंक अधिक उपयुक्त है, जबकि किसी बगीचे या स्नानघर में कागासन में करना अधिक सुविधाजनक होगा।



विधि

चरण 1–नासिकाओं को धोना

नेति लोटे में तैयार किया हुआ नमकीन जल भरें।

सीधे खड़े हो जायें; दोनों पैरों के बीच थोड़ी दूरी रखें, शरीर का भार दोनों पंजों पर समान रूप से डालें। सामने की ओर झुकें। सिर को एक ओर झुकायें।

मुँह से श्वास लेना शुरू करें।

लोटे की टोंटी को धीरे-से ऊपर वाले नासिकाछिद्र में डालें।

इसमें किसी प्रकार बल-प्रयोग नहीं करना है।

टोंटी नासिकाछिद्र में इस प्रकार फँस जानी चाहिए कि पानी उस नासिकाछिद्र से बाहर न गिरे।

नेति लोटे को इस प्रकार ऊपर उठायें कि पानी नासिकाछिद्र में ही प्रवेश करे, बाहर चेहरे पर न गिरे। शरीर की स्थिति को इस प्रकार व्यवस्थित करें कि पानी एक नासिका-छिद्र से प्रवेश कर दूसरे नासिका-छिद्र से बाहर निकले। मुँह खुला रखें। जिस हाथ से नेति लोटा पकड़ा हो उसकी कोहनी को ऊपर उठाने से शरीर की स्थिति व्यवस्थित हो जाती और पानी नीचे वाले नासिकाछिद्र से बाहर निकलता है।

जब लोटे का आधा पानी नासिकाछिद्रों में से बह चुका हो, तब टोंटी को बाहर निकालें, सिर को सीधा करें और पानी को नाक के बाहर निकल जाने दें।

यदि नासिका में थोड़ा कफ जमा हो, तो उसे प्रश्वास के साथ हल्के से छिड़क कर बाहर निकाल दें।

सिर को दूसरी ओर झुकायें और टोंटी को दूसरे नासिकाछिद्र में घुसाकर इस प्रक्रिया को दुहरायें।

इस प्रक्रिया को पूरा करने के बाद नासिकाछिद्रों में रुके पानी को बाहर निकालकर उन्हें अच्छी तरह शुष्क करें।

चरण 2–नासिकाओं को सुखाना

1. सीधे खड़े हो जायें।

   दाहिने नासिकाछिद्र को दाहिने अँगूठे से बन्द करें और बायें नासिकाछिद्र से जल्दी-जल्दी 10 बार श्वास लें और छोड़ें, और कपालभाति प्राणायाम की तरह प्रश्वास पर बल दें।

   बायें नासिकाछिद्र को बन्द कर यही प्रक्रिया दाहिने नासिकाछिद्र से दुहरायें।

   दोनों नासिकाछिद्रों से एक साथ एक और आवृत्ति करें।

2. कमर से इस प्रकार सामने झुकें कि धड़ जमीन के समानान्तर हो जाए। दायें नासिकाछिद्र को बन्द करके, सिर को दायीं ओर झुकाकर ऊपर बतायी गयी प्रक्रिया को दुहरायें। अब सिर को बायीं ओर झुका कर और बायें नासिकाछिद्र को बन्द कर इस प्रक्रिया को एक बार और दुहरायें।

   अन्त में, सिर को बीच में लाकर दोनों नासिकाछिद्रों से श्वास लेते हुए इस प्रक्रिया को दुहरायें।

अभ्यास टिप्पणी– यह चरण नासिका शिरानाल गुहिका में रुके जलकणों को बाहर निकालने में सहायक होता है।

3. दोनों पंजों के बीच थोड़ी दूरी रखकर सीधे खड़े हो जायें। दाहिने नासिकाछिद्र को बन्द कर, शीघ्रतापूर्वक कमर से सामने की ओर झुकते हुए बलपूर्वक श्वास छोड़ें। सीधे खड़े होने की स्थिति में लौटते हुए सामान्य श्वसन करें। इसे 5 बार दुहरायें।

   अब दाहिने नासिकाछिद्र को खोल कर यही प्रक्रिया दुहरायें और फिर दोनों नासिकाछिद्रों को खोल कर दुहरायें।

   नासिका को शुष्क करने के लिए ज्यादा जोर से न छिड़कें, अन्यथा बचा हुआ पानी कान में जा सकता है।

   आवश्यक होने पर शशांकासन में कुछ मिनट रहना चाहिए, इससे नाक में बचा पानी बाहर निकल जाता है।

अवधि–इस अभ्यास में लगभग पाँच मिनट का समय लगता है।

नेति का अभ्यास प्रतिदिन, सप्ताह में एक या दो बार अथवा आवश्यकता के अनुसार किया जा सकता है। कुछ अभ्यास के बाद पूरा भरा नेति लोटा एक नासिकाछिद्र के लिए उपयोग में लाया जा सकता है।

क्रम–जल नेति का अभ्यास आदर्श रूप से प्रात:काल आसन और प्राणायाम के पूर्व किया जाता है। किन्तु आवश्यक होने पर इसका अभ्यास किसी भी समय किया जा सकता है, केवल भोजन के तुरन्त बाद न करें।

सावधानियाँ–पानी का प्रवाह केवल नासिका से होना चाहिए। यदि पानी गले या मुँह में प्रवेश कर जाए, तो यह इस बात का संकेत है कि सिर की स्थिति सही नहीं है और इसे पुन: व्यवस्थित करने की आवश्यकता है। यह सुनिश्चित करें कि अभ्यास के बाद नासिका को अच्छी तरह सुखा लिया गया है। ऐसा नहीं होने पर नासिका-मार्ग में उत्तेजना पैदा हो जाएगी और जुकाम के लक्षण दिखायी देने लगेंगे। नेति का अभ्यास तभी करें जब आवश्यक हो। लम्बी अवधि तक अभ्यास एक योग्य शिक्षक के मार्ग-दर्शन में ही किया जाना चाहिए।

सीमाएँ–जिन्हें लम्बे समय से नासिका से रक्त-स्राव होता हो, उन्हें कुशल मार्गदर्शन के बिना जल-नेति का अभ्यास नहीं करना चाहिए। जिन्हें नासिका-मार्ग से जल को प्रवाहित करने में हमेशा बहुत अधिक कठिनाई महसूस होती हो, उनकी नासिका की संरचना में कोई अवरोध हो सकता है। अत: उन्हें विशेषज्ञ से परामर्श ले लेना चाहिए। जिन लोगों को कान में संक्रमण हो उन्हें नेति को अभ्यास नहीं करना चाहिए। साइनोसाइटिस, सर्दी और जुकाम के समय जब नाक पूरी तरह से बन्द हो, तब नेति का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ–जल-नेति नासिका-मार्ग और साइनस में जमे हुए श्लेष्मा एवं प्रदूषण को बाहर निकालती है, इससे श्वास-प्रवाह अबाध हो जाता है। इस अभ्यास से श्वसन-मार्ग से सम्बन्धित रोगों को रोकने और नियंत्रित करने में सहायता मिलती है। इससे कान, आँखें और गला स्वस्थ रहते हैं।

जल-नेति मुँह के पेशीय तनाव को दूर करती है और अभ्यासी को ताजगी एवं यौवन से परिपूर्ण कर देती है। मस्तिष्क पर इसका शीतल, सौम्य प्रभाव पड़ता है। यह चिन्ता, क्रोध और अवसाद को दूर भगाती है, आलस्य को दूर करती है और सिर में हल्केपन और ताजगी की अनुभूति लाती है।

जल-नेति नासिका में विभिन्न तन्त्रिकाओं के सिरों को उद्दीप्त करती है, जिससे मस्तिष्क के कार्यकलापों और व्यक्ति के सामान्य स्वास्थ्य में सुधार होता है। दाहिने एवं बायें नासिकाछिद्रों में तथा उनसे सम्बन्धित मस्तिष्क के बायें एवं दायें गोलार्द्धों में सन्तुलन स्थापित होता है। इसके फलस्वरूप सम्पूर्ण शरीर और मन में सामंजस्य एवं सन्तुलन आता है। सबसे महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि नेति आज्ञा-चक्र को जाग्रत करने में सहायक होती है।

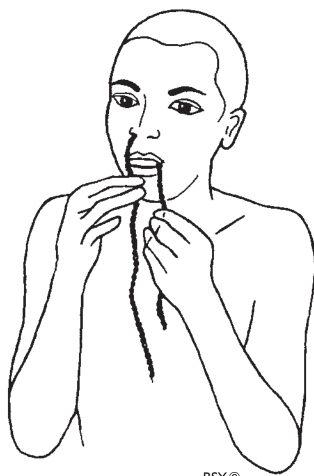
प्रकारान्तर– इसका अभ्यास गिलास या कटोरे से सीधे नासिकाछिद्र में जल ग्रहण करके भी किया जा सकता है। यह इस अभ्यास का मूल स्वरूप है। इसे व्युत्क्रम कपालभाति अथवा उषा-पान कहा जाता है।

नेति के अभ्यास में जल के स्थान पर अन्य द्रव भी उपयोग में लाये जा सकते हैं। इसके अन्तर्गत दुग्ध-नेति (कुनकुने दूध से) और घृत-नेति (कुनकुने घी से) आते हैं। नेति के लिये दही का भी उपयोग किया जा सकता है। यदि घी के बदले तेल का उपयोग किया जाता है, तो तेल प्राकृतिक और बिना रसायन के होना चाहिए। सबसे अधिक प्रभावशाली नेति मूत्र या अमरोली से होती है, इसे अमरोली-नेति कहा जाता है। यह अभ्यास विशेष रूप से नासिका-मार्ग की सूजन में अधिक लाभप्रद होता है। प्रत्येक द्रव से भिन्न प्रकार का लाभ प्राप्त होता है। इन प्रकारान्तरों में से किसी का भी अभ्यास गुरु या योग-शिक्षक के मार्गदर्शन के बिना नहीं करना चाहिए।

सूत्र नेति

सूत्र को नासिका-मार्ग से प्रवेश करा कर बाहर निकालने वाले अभ्यास को सूत्र नेति कहते हैं। पारम्परिक विधि में विशेष प्रकार से तैयार किया गया धागा प्रयोग में लाया जाता था। कई लड़ियों को एक साथ कसकर बँटकर तरल मधु-मोम में डाल दिया जाता था। सूत्र की मोटाई लगभग 4 मिलीमीटर और लम्बाई 36 से 45 सेंटीमीटर होती थी। आजकल एक पतली रबर की नलिका (कैथेटर) को पिघले घी, खाने के तेल, मक्खन या स्वयं की लार से चिकना कर इस अभ्यास को सरलतापूर्वक कर लिया जाता है। नली चिकनी हो जाने पर आसानी से नासिका-मार्ग में फिसलती हुई प्रविष्ट हो जाती है। नलिका का आकार व्यक्ति के नासिका-मार्ग पर निर्भर रहता है। नये अभ्यासियों के लिए 4 नम्बर उपयुक्त हो सकता है, परन्तु धीरे-धीरे 6 नम्बर तक बढ़ाना चाहिए।

विधि 1–प्रारम्भिक विधि



किसी आरामदायक स्थिति में खड़े हों या बैठें या फिर उकड़ू बैठें। पूरे शरीर को शिथिल करें।

सिर को थोड़ा पीछे झुकायें। कैथेटर के पतले सिरे या मोम से चिकने बनाये गये सूत्र के सिरे को हल्के-से और धीरे-से उस नासिकाछिद्र में प्रवेश करायें, जिसमें श्वास का प्रवाह अधिक स्वतंत्र रूप से हो रहा हो।

जैसे-जैसे सूत्र अन्दर जाये, घुमाते जायें, ताकि वह आसानी से नासिका में प्रवेश करे।

सूत्र के सिरे को हमेशा नीचे नाक की सतह की ओर रखें। उसे कभी सीधे ऊपर न ठेलें, क्योंकि नासिका गुहा नासिका के पीछे होती है न कि ऊपर।

जब सूत्र गले के पिछले भाग में पहुँच जाए, तब तर्जनी और अँगूठे या मध्यमा और तर्जनी को मुँह में घुसायें। सूत्र को कोमलता से धीरे-धीरे मुँह से बाहर कर लें, केवल कुछ इंच लम्बा सूत्र नासिका से बाहर लटकता छोड़ दें।

प्रारम्भ में इस क्रिया से उबकाई आ सकती है, परन्तु अभ्यास के बाद यह सरल हो जायेगा।

सूत्र या कैथेटर के दोनों सिरों को उँगलियों से पकड़ लें।

बहुत धीरे-धीरे कोमलतापूर्वक उसे आगे-पीछे सरकायें। प्रथम प्रयास में 15 बार से अधिक न खींचें।

नासिका-मार्ग से सूत्र को धीरे-धीरे बाहर कर लें और दूसरे नासिकाछिद्र में प्रवेश कराकर प्रक्रिया की पुनरावृत्ति करें।

विधि 2–उच्च विधि

विधि 1 को पूरा करने के बाद सूत्र को वहीं छोड़ देना चाहिए, ताकि उसका एक सिरा अभी भी एक नासिका में रहे और दूसरा सिरा मुँह से निकला रहे। एक नासिकाछिद्र से निकल रहे मोमयुक्त सिरे को हल्के से दूसरे नासिकाछिद्र में घुसायें और उस सिरे को मुँह से खींचे।

अन्तिम स्थिति में दोनों मोमयुक्त सिरे मुख-मार्ग से बाहर आते हैं।

दोनों सिरों से कड़े मोम को हटा दें, ताकि धागे फिर से अलग-अलग हो जायें।

दोनों सिरों को एक साथ कस कर मिला दें, ताकि दोनों आपस में फँस जायें। फिर सूत्र को ऐंठ दें, ताकि दोनों सिरे एक-दूसरे से जुड़ जायें।

यदि जोड़ अधिक मोटा हो, तो कुछ धागों को काटकर निकाल दें, जिससे कि जोड़ आसानी से नासिकाछिद्रों से होकर निकल जाए।

अब धागा वृत्ताकार हो गया है।

धागे को धीरे-धीरे नासिका में आगे सरकाते हुए जोड़ को मुँह में खींच लें। अन्त में जोड़ दोनों नासिकाछिद्रों के प्रवेश-द्वार के बीच में आ जाना चाहिए।

जोड़ को अलग कर दें।

अब सूत्र एक नासिकाछिद्र से प्रवेश कर दूसरे नासिकाछिद्र से बाहर निकलता है, यह मुँह से होकर नहीं गुजर रहा है।

प्रारम्भ में सूत्र को हल्के से कुछ बार आगे-पीछे खींचें। थोड़ी भी असुविधा महसूस हो, तो अभ्यास तुरन्त बन्द कर दें।

सूत्र के एक सिरे को खींचें और धीरे-धीरे उसे नासिका से बाहर कर लें।

श्वसन – श्वसन मुँह से किया जाता है।

अवधि – इस अभ्यास में लगभग 10 मिनट का समय लगता है। कुछ दिनों में एक बार या सप्ताह में एक बार अभ्यास कर लेना पर्याप्त है।

क्रम – सूत्र-नेति का अभ्यास जल-नेति के पूर्व करना चाहिए, क्योंकि जल नेति सूत्र-नेति से निष्कासित होने वाली सभी अशुद्धियों को नासिका से बाहर निकाल देगी।

सावधानियाँ – किसी भी परिस्थिति में बल प्रयोग न करें। नासिका का भीतरी हिस्सा बड़ा कोमल होता है और थोड़ी भी जोर-जबरदस्ती उसे हानि पहुँचा सकती है। यदि बार-बार प्रयत्न करने के बावजूद सूत्र या कैथेटर नासिका-मार्ग में प्रवेश न करे, तो किसी अनुभवी योग शिक्षक से परामर्श लें। नासिका में प्रवेश कराने के पूर्व यह सुनिश्चित कर लें कि सूत्र पूरी तरह स्वच्छ है। जब तक जल नेति में निपुणता प्राप्त न हो जाए, तब तक सूत्र-नेति का अभ्यास न करें।

सीमाएँ – जिन्हें लम्बे समय से नाक से रक्त-स्राव होता हो, उन्हें सूत्र-नेति नहीं करनी चाहिए। जिन्हें नासिका में फोड़ा या पोलिप हो, या जिनकी

नासिका-पट की संरचना में दोष हो, उन्हें पहले योग उपचारक या चिकित्सक से परामर्श कर लेना चाहिए।

लाभ– इसके लाभ जल-नेति से होने वाले लाभों के समान ही हैं। इसके अतिरिक्त सूत्र-नेति नासिका-पट के अपने स्थान से हटने की समस्या को ठीक कर सकती है। नासिका की हड्डी के टेढ़े होने या मांस बढ़ने के कारण यदि एक या दोनों नासिकाएँ स्वतंत्र रूप से प्रवाहित नहीं हो रही हैं, तो सूत्र-नेति के नियमित घर्षण से कुछ महीनों में ही ये अवरोध दूर हो जाते हैं।

अभ्यास टिप्पणी– यद्यपि कैथेटर से अभ्यास शीघ्र और सरलतापूर्वक हो जाता है, यह नासिका-पथों को उतने प्रभावी ढंग से स्वच्छ नहीं करता जितना कि सूत्र करता है। विधि 2 केवल कुछ विशेष प्रकार के कैथेटर से ही सम्भव है।

अग्निसार क्रिया या वह्निसार धौति

इसका अभ्यास भस्त्रिका एवं कपालभाति प्राणायामों की तैयारी के लिए किया जा सकता है। अग्नि तथा वह्नि, दोनों शब्दों का तात्पर्य आग से है; सार का अर्थ है तत्त्व। पाचन प्रक्रिया की तुलना अग्नि तत्त्व या उसकी प्रकृति से की गयी है। यदि उदरीय अंग समुचित ढंग से कार्य नहीं कर रहे हों, जठराग्नि मन्द पड़ गयी हो, तो उसे उत्तेजित करने और उसकी शक्ति को बढ़ाने की आवश्यकता है। अग्निसार क्रिया बिल्कुल यही कार्य करती है। इसके साथ-साथ यह पाचन प्रणाली और इसके सहायक अंगों को शुद्ध करती हुई ग्रहण किये गये भोजन के पोषक तत्त्वों का अधिकतम स्वांगीकरण करने में सहायता करती है।

विधि

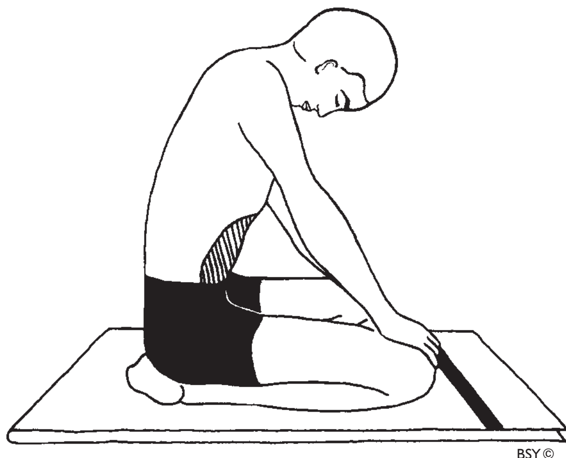
दोनों पैरों को एक साथ रखते हुए भद्रासन में बैठें अथवा पद्मासन में बैठ जायें और गहरी श्वास लें।

श्वास छोड़ते हुए फेफड़ों को अधिक-से-अधिक खाली करें।

कोहनियों को सीधा करते हुए थोड़ा आगे की ओर झुकें।

हाथों से घुटनों को नीचे दबायें और जालन्धर बन्ध लगायें।

श्वास को जितनी देर आराम से बाहर रोकना सम्भव हो, उतनी देर उदर की पेशियों को शीघ्रता से सिकोड़ें और फैलायें ।



अधिक जोर न लगायें।

जालन्धर बन्ध खोल दें।

जब सिर सीधा हो जाए, तब धीमी और गहरी श्वास अन्दर लें।

यह एक चक्र हुआ।

दूसरा चक्र प्रारम्भ करने के पूर्व श्वास के सामान्य होने तक विश्राम करें।

अवधि– उदर की पेशियों पर स्वैच्छिक नियंत्रण के अभाव में नये अभ्यासियों को शीघ्र ही थकान हो जाने के कारण इस अभ्यास में थोड़ी कठिनाई हो सकती हैं। दीर्घकाल तक अभ्यास करते हुए पेशियों को धीरे-धीरे क्रमिक रूप से मजबूत बनाना चाहिए। प्रारम्भ में उदर को 10-10 बार सिकोड़ते और फैलाते हुए 3 चक्र अभ्यास करना पर्याप्त है। नियमित अभ्यास से प्रत्येक चक्र में 50 बार तक उदर का संकुचन और विस्तार किया जा सकता है। श्वास को रोकने की अवधि को अभ्यास के साथ धीरे-धीरे बढ़ायें।

क्रम– आसन के बाद तथा प्राणायाम के पहले इसका अभ्यास करें। अग्निसार क्रिया का अभ्यास खाली पेट, और यदि सम्भव हो तो प्रातःकाल जलपान के पूर्व तथा शौच होने के बाद करना चाहिए।

सावधानियाँ– ग्रीष्म-काल में यह अभ्यास सावधानीपूर्वक करना चाहिए, क्योंकि इससे शरीर का ताप और रक्त-चाप बहुत अधिक बढ़ सकता है। इस काल में हमेशा अग्निसार के बाद शीतलता प्रदान करने वाले प्राणायाम, जैसे– शीतकारी या शीतली का अभ्यास करना चाहिए।

सीमाएँ– उच्च रक्तचाप, हृदय-रोग, ड्यूडेनल या पेप्टिक अल्सर, थायरॉइड ग्रन्थि की अधिक सक्रियता अथवा जीर्ण अतिसार से पीड़ित व्यक्तियों को यह क्रिया नहीं करनी चाहिए। गर्भवती स्त्रियों को भी यह क्रिया नहीं करनी चाहिए।

लाभ– अग्निसार-क्रिया भूख बढ़ाती है और पाचन क्रिया में सुधार लाती है। यह उदर की मालिश करती है, सम्बन्धित स्नायुओं को उत्प्रेरित करती है, पेशियों को मजबूत बनाती है और उदर के अंगों को पूर्ण स्वस्थ बनाती है। यह पंच प्राणों, विशेषकर समान को उत्प्रेरित करती है और ऊर्जा के स्तर को विशेष रूप से बढ़ाती है। यह उदासी, आलस्य और सुस्ती को दूर करती है।

प्राणायाम के लिए उपयुक्त आसन

बैठकर, खड़े होकर या लेटकर किये जाने वाले ऐसे अनेक आसन हैं जिनमें प्राणायाम के अभ्यास किये जा सकते हैं। यद्यपि उन सब में एक घटक समान है–मेरुदण्ड, गरदन और सिर सीधे रहने चाहिए, क्योंकि इसके बिना श्वास एवं प्राण का प्रवाह अनेक प्रकार से अवरुद्ध हो जायेगा।

खड़े होकर

प्राणायाम के अभ्यास के लिए सामान्यत: इस स्थिति को नहीं चुना जाता है, क्योंकि अन्य आसनों की अपेक्षा इसमें दृढ़ता की कमी होती है। यद्यपि इसमें गहरा श्वसन आराम से हो पाता है, क्योंकि इसमें उदर कम बाधा उत्पन्न करता है। यद्यपि शरीर को स्थिर रखने के लिए थोड़ी अधिक एकाग्रता की आवश्यकता होती है, लेकिन जब बैठना या लेटना सम्भव न हो तब इस स्थिति का उपयोग किया जा सकता है।

विधि

दोनों पैरों को कन्धों की चौड़ाई के बराबर दूरी पर समानान्तर रखते हुए खड़े हो जायें। इस स्थिति में सबसे अधिक संतुलन प्राप्त होता है।

कूल्हों को इस प्रकार स्थिर करें कि धड़ न अधिक सामने की ओर झुके न पीछे की ओर, न दायीं ओर न बायीं ओर। मेरुदण्ड को सीधा रखें।

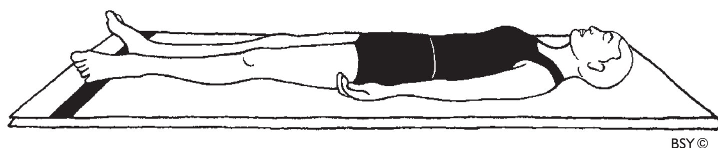
हाथों को नीचे की ओर छोड़ दें, उन्हें या तो जाँघों के सामने रखें या बगल में। कन्धों को न तो सामने की ओर ढीला छोड़ें और न ही पीछे की ओर खींचें। सिर को इस प्रकार स्थिर करें कि वह कन्धों पर सन्तुलित होकर सीधा सामने की ओर रहे।

सन्तुलन बनाये रखने के लिए आँखें खोलकर उन्हें किसी एक बिन्दु पर एकाग्र करें। आँखें बन्द करने पर सन्तुलन के लिए अधिक सूक्ष्म नियन्त्रण की आवश्यकता होती है। यदि शरीर की स्थिति सही है, तो बहुत कम तनाव आवश्यक होता है। शरीर को सीधा रखने के लिए आवश्यकता से अधिक तनाव नहीं होना चाहिए।

कल्पना करने का प्रयास करें कि दीवार की समतलता को नापने के लिए उपयोग में लाया जाने वाला उपकरण आपके शरीर के बीचोंबीच स्थित है, जो यह आकलन कर रहा है कि धड़ के ऊपर सिर, कूल्हों के ऊपर धड़ और पैरों के ऊपर कूल्हे सन्तुलित हैं। जब शरीर तथा श्वास स्थिर हो जायें तब आप प्राणायाम प्रारम्भ कर सकते हैं।

शवासन

शिथिल अवस्था में सही ढंग से श्वास लेना सिखाने के लिए विद्यार्थियों को शवासन का अभ्यास कराया जाता है। यह श्वसन प्रक्रिया के प्रति अधिक सजग बनने में भी मदद करता है। शवासन हाथों, पैरों, पलकों, जीभ, फेफड़ों और उदर की पेशियों से लेकर शरीर के सभी अंगों को पूर्णत: शिथिल कर देता है। इसका अभ्यास सपाट, समतल और कड़ी सतह वाली जमीन पर तह किये हुए कम्बल पर किया जाना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो एक छोटे तकिये या मोड़े हुए कम्बल को गर्दन या सिर के नीचे रखा जा सकता है।



विधि

पीठ के बल जमीन पर लेट जायें। इस बात का ध्यान रखें कि मेरुदण्ड, गर्दन और सिर एक सीध में हों।

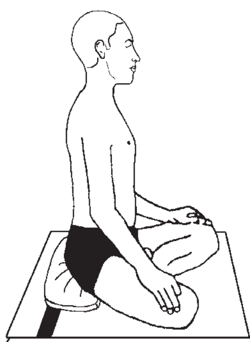
दोनों पैरों के बीच लगभग 45 सेन्टीमीटर की दूरी हो और दोनों अँगूठे बाहर की ओर हों।

हाथों को शरीर की दोनों बगल में रखें। शरीर और हाथ के बीच लगभग 15 सेन्टीमीटर की दूरी हो, हथेलियाँ ऊपर की ओर रहें। अँगुलियों को स्वाभाविक रूप से मुड़ जाने दें। आँखों को बन्द कर लें।

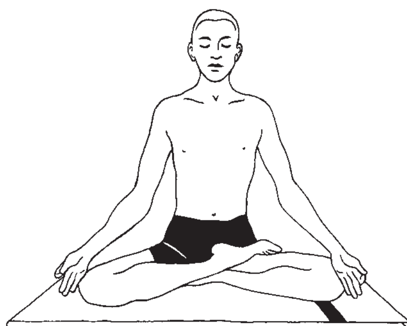
सजगतापूर्वक व्यवस्थित ढंग से सिर से पैर तक शरीर के हर अंग के प्रति क्रम से सजग बनते हुए प्रत्येक पेशी को शिथिल करें। कुछ देर बाद प्रत्याहार का अनुभव होगा, और श्वास नियमित एवं समान हो जायेगी।

एकाग्र होने का प्रयास किये बिना तनावरहित होकर सजग बने रहें।

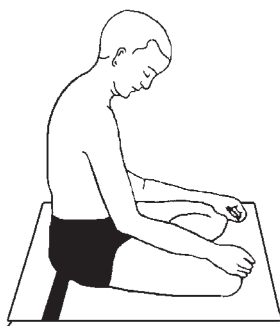
इस अवस्था में प्राणायामों का अभ्यास प्रारम्भ किया जा सकता है।



चित्र 1



चित्र 2



चित्र 3

बैठ कर

स्थिर बैठने के लिए और पीठ, गर्दन तथा सिर को एक सीध में रखने के लिए ध्यान के पारम्परिक आसन, जैसे, पद्मासन, अर्धपद्मासन, सिद्धासन या

सिद्धयोनि आसन तथा वज्रासन सर्वोत्तम हैं। इन आसनों को जब सही ढंग से किया जाता है तब श्वास मुक्त रूप से प्रवाहित होती है। नियमित अभ्यासों तथा उच्च विधियों के लिए इनमें से किसी भी आसन में बैठा जा सकता है, क्योंकि समय और वैज्ञानिक अनुसन्धानों की कसौटी पर इनकी उपयुक्तता सिद्ध हो चुकी है।

यदि इन आसनों में बैठने में कठिनाई हो तो सुखासन में बैठा जा सकता है। हालाँकि आपको धीरे-धीरे इनमें से किसी आसन में बैठने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि सुखासन में शरीर को सामने झुकने की प्रवृत्ति होती है और उदर पर दबाव पड़ने लगता है। सीधी स्थिति में सही ढंग से बैठने पर न केवल श्वसन में सुधार आता है, बल्कि तंत्रिकाओं के आवेग, ऊतक द्रवों और प्राण के प्रवाह में भी सुधार आता है।

बैठकर प्राणायाम करने से धड़ को स्थिरता मिलती है, साथ ही कूल्हों की स्थिति धड़ को सीधा और स्थिर रखती है। कूल्हों के साथ मेरुदण्ड इस प्रकार स्थित होना चाहिए कि सिर और धड़ का भार पैरों द्वारा प्रदान किये गये आधार पर पड़े। यह स्थिति तभी प्राप्त होती है, जब नितम्बों को थोड़ा पीछे की ओर और पीठ के निचले भाग को थोड़ा सामने की ओर निकाल दिया जाता है। ध्यान रहे कि आप नितम्बों के निचले भाग पर बैठे हों। त्रुटिपूर्ण आसन में बैठने पर पीठ झुकने लगती है, क्योंकि पीठ के निचले भाग की पेशियों पर जो अतिरिक्त दबाव पड़ता है, उसे कुछ समय के बाद शिथिल करने की प्रवृत्ति होती है।

सिर को सीधा रखने में पेशियों पर पड़ने वाले तनाव से बचने के लिए और श्वासनलिका में वायु के मुक्त प्रवाह के लिए इसे भी आधार की सीध में होना चाहिए। चित्र 3 में यह दिखाया गया है कि त्रुटिपूर्ण आसन में मेरुदण्ड और गर्दन में कितना अधिक तनाव उत्पन्न हो रहा है, तथा शरीर के सीधा नहीं रहने के कारण फेफड़ों पर उदरीय अंगों का दबाव पड़ रहा है। चित्र 2 में प्रदर्शित किया गया है कि सही आसन में सन्तुलित धड़, गर्दन और सिर पैरों द्वारा प्रदान किये गये आधार पर एक सीध में स्थित हैं। यदि इस आसन में कठिनाई हो तो नितम्बों के नीचे एक छोटा तकिया या तह किया हुआ कम्बल रखा जा सकता है, जैसा कि चित्र 1 में दिखाया गया है। अनेक व्यक्तियों के लिए कुशन आवश्यक होता है और लम्बी अवधि तक बैठने के लिए यह उपयुक्त भी है।

आसन में बैठकर मेरुदण्ड को नीचे से ऊपर की ओर खींचने का प्रयास करें। उसके बाद मेरुदण्ड को सीधा रखते हुए अपने कन्धों और बाँहों को

शिथिल कर दें। यदि शरीर समुचित ढंग से सन्तुलित है तो पीठ सीधी होते हुए भी शिथिल रहेगी। श्वास लेते समय मेरुदण्ड का ऊपर की ओर खींचा जाना तथा श्वास छोड़ते समय कन्धों का शिथिल होना अत्यन्त सहायक और स्वाभाविक क्रिया है।

भुजायें तनिक मुड़ी हुई रहें ताकि पेशियों में तनाव उत्पन्न नहीं हो। उन्हें घुटनों पर या गोद में किसी विशेष मुद्रा में रखा जा सकता है। केहुनी सामान्यत: थोड़ी मुड़ी हुई होती है ताकि भुजा के ऊपरी तथा निचले भाग की पेशियाँ शिथिल रहें। इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि उदर तथा वक्ष सिकुड़े हुए नहीं हों। फेफड़े, मध्यपट और उदर बिना किसी अतिरिक्त बलप्रयोग के आराम से फैलने और सिकुड़ने चाहिए।

नये अभ्यासियों के लिए दीवार का सहारा लेकर जमीन पर बैठना मान्य हो सकता है, लेकिन इसकी आदत नहीं पड़नी चाहिए। मेरुदण्ड (विशेषकर त्रिक-श्रोणिफलक) जोड़ों को मजबूत बनाना है, और यह दीवार का सहारा लेते रहने से नहीं हो पायेगा। जमीन पर बैठकर पीठ को दीवार से सटाकर सीधा रखें। सिर का पिछला भाग भी दीवार से सटा रहे। दोनों पैरों को या तो सीधा रखें या मोड़कर पालथी लगा लें। कुर्सी पर भी बैठा जा सकता है, लेकिन मेरुदण्ड सीधा रहना चाहिए। जिन लोगों को किसी भी आसन में बैठने में आराम नहीं मिल रहा हो और जिन्हें विशेष रूप से पीठ में दर्द होने लगता हो, उन्हें अन्य योगासनों का अभ्यास करना चाहिए।

बिना किसी सहारे के बैठना सीखने की सर्वोत्तम विधि उसका अभ्यास करना है। आप जहाँ भी हों, वहाँ एक मिनट के लिए ही बिना किसी सहारे के बैठें, लेकिन स्थिरता कायम रखते हुए मेरुदण्ड को सीधा और शिथिल कर लें। इस अवधि को प्रतिदिन धीरे-धीरे बढ़ाते जायें। आप जल्दी ही बिना किसी सहारे के तथा विश्वास के साथ आराम से बैठने लगेंगे।

यद्यपि आसन एक भंगिमा है, लेकिन आप जिस पर बैठते हैं वह भी आसन का एक अंग है। जमीन की तरह दृढ़ सपाट सतह और उस पर तह किया हुआ कम्बल आराम की दृष्टि से सर्वोत्तम होता है। पारम्परिक रूप से आध्यात्मिक अभ्यास एक ऐसे स्वच्छ स्थान पर किया जाता था जो न बहुत ऊँचा और न बहुत नीचा होता था। उसे कुश से, कपड़े की तहों से और मृगचर्म (साँप तथा कीड़े-मकोड़ों को दूर रखने के लिए) से ढक कर रखा जाता था।



सुखासन

पैरों को शरीर के सामने फैलाकर बैठ जायें।

दायें पैर को मोड़कर बायीं जाँघ के नीचे रखें; बायें पैर को दायीं जाँघ के नीचे रखें।

हाथों को घुटनों पर चिन् या ज्ञान मुद्रा में रखें।

सिर, गरदन और पीठ को सीधा रखें।

अभ्यास टिप्पणी– अभ्यासी जब ध्यान के किसी अन्य आसन में आरामपूर्वक बैठने लगे तब उसे सुखासन में बैठना बन्द कर देना चाहिए, क्योंकि यह श्वसन के सही अभ्यासों के लिए मेरुदण्ड को आवश्यक सहारा नहीं दे पाता है।

अर्धपद्मासन

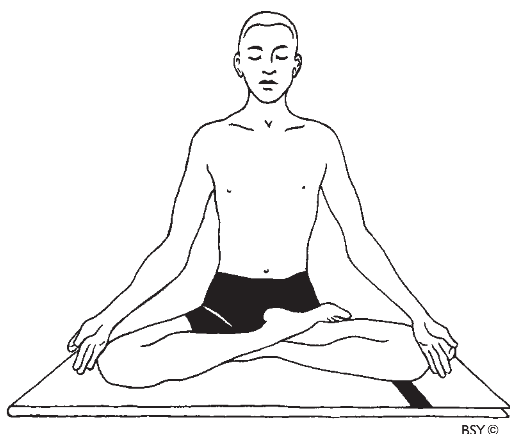
पैरों को शरीर के सामने फैला कर बैठ जाएँ। बायें पैर को मोड़ें और इसके तलवे को दायीं जाँघ के भीतरी भाग पर रखें। दायाँ पैर मोड़ें और उसके पंजें को बायीं जाँघ के ऊपर रखें।

हाथों को चिन् या ज्ञान मुद्रा में घुटनों पर रखें।

पीठ, गर्दन और सिर एक सीध में रहें।

सीमाएँ– साइटिका या मेरुदण्ड के निचले भाग (त्रिकास्थि) के विकार से ग्रस्त रोगियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।

लाभ– पद्मासन की तरह, किन्तु कुछ कम मात्रा में।



अभ्यास टिप्पणी – इसका अभ्यास सुखासन के स्थान पर किया जाना चाहिए। दोनों पैरों को एक-एक कर ऊपर रखकर अभ्यास करने से अभ्यासी पैरों को पद्मासन तथा अन्य पारम्परिक आसनों में बैठने के लिए तैयार कर लेगा। हालाँकि जब पद्मासन, सिद्धासन या सिद्धयोनि आसन में आरामपूर्वक बैठना सम्भव हो जाये तब इस आसन को भी छोड़ देना चाहिए।



पद्मासन

पैरों को शरीर के सामने फैलाकर बैठ जायें।

एक पैर को मोड़कर दूसरे पैर की जाँघ पर रखें। पैर का तलवा ऊपर की

ओर रहे और एड़ी उरोस्थि से सटी रहे। दूसरे पैर को मोड़ लें और पहले पैर की जाँघ के ऊपर रखें।

अन्तिम स्थिति में घुटने जमीन से सटे हुए होने चाहिए।

सिर और मेरुदण्ड स्थिर तथा सीधे, और कन्धे शिथिल रहने चाहिए।

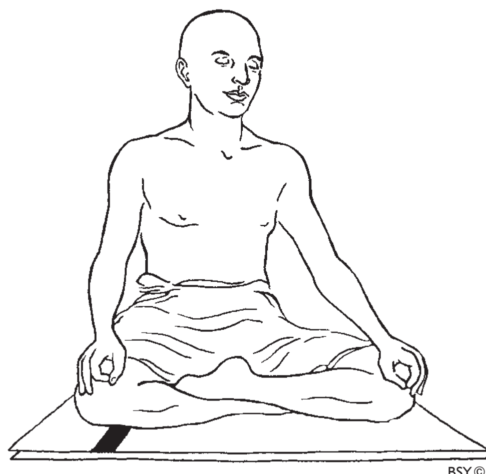
हाथों को घुटनों पर चिन् या ज्ञान मुद्रा में रखें।

हाथों को केहुनी के पास से थोड़ा मोड़कर शिथिल कर लें।

सीमाएँ– जो लोग साइटिका या त्रिकास्थि (मेरुदण्ड के निचले हिस्से) के संक्रमण से पीड़ित हैं अथवा जिनके घुटने कमजोर हैं या उनमें चोट लगी है, उन्हें यह आसन नहीं करना चाहिए। जब तक ध्यान से पूर्व किए जाने वाले अभ्यासों के द्वारा घुटनों में लोच न आ जाए, तब तक पद्मासन प्रारम्भ नहीं करना चाहिए। गर्भावस्था में इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए, क्योंकि इसमें पैरों की तरफ रक्त का प्रवाह कम हो जाता है।

लाभ– पद्मासन द्वारा शरीर को लम्बे समय तक पूर्णत: स्थिर रखा जा सकता है। इसका एक और लाभ यह है कि पैरों में रक्त तथा प्राणों का प्रवाह कम हो जाता है, और इस ऊर्जा को शरीर के ऊपर के भागों तथा मस्तिष्क की ओर अनुप्रेषित किया जाता है, जिससे चेतना के उच्च केन्द्र उत्तेजित होते हैं।

अभ्यास टिप्पणी– घुटनों को जमीन से सटाने के लिए और पीठ को आगे या पीछे झुकने से बचाने के लिए एक छोटे कुशन या तह किये हुए कम्बल को नितम्बों के नीचे रखा जा सकता है। अभ्यासी को यह आसन तब तक नहीं करना चाहिए जब तक ध्यान के पूर्व किये जाने वाले अभ्यासों के द्वारा उसके पैर लचीले न हो गये हों।



सिद्धासन

पैरों को सामने फैलाकर बैठ जाएँ।

दाहिना पैर मोड़ें और लगभग दायीं एड़ी के ऊपर बैठते हुए दाहिने तलवे को बायीं जाँघ के भीतरी भाग से इस प्रकार सटा कर रखें कि एड़ी का दबाव मूलाधार (प्रजनन अंग और गुदा द्वार के मध्य का भाग) पर रहे।

बाएँ पैर को मोड़ें और बाएँ टखने को दाँयीं पिण्डली के ऊपर रखें। इसके लिए यदि आवश्यक हो तो दाहिने पैर को व्यवस्थित किया जा सकता है।

बायीं एड़ी से प्रजनन अंग के ठीक ऊपर स्थित जघनास्थि पर दबाव डालें।

बाएँ पैर की उँगलियों तथा पंजे को दाहिनी पिण्डली और जाँघ के बीच में फँसायें।

दाहिने पैर की उँगलियों को पिण्डली के ऊपर या नीचे से पकड़कर बायीं जाँघ और पिण्डली के बीच के स्थान में ऊपर खींचे।

घुटने जमीन पर तथा बायीं एड़ी ठीक दाहिनी एड़ी के ऊपर रखते हुए आपके पैर एक प्रकार से बँध जाएँगे।

मेरुदण्ड को स्थिर तथा सीधा रखें और ऐसा महसूस करें कि आपका शरीर जमीन में जड़ा हुआ है।

हाथों को घुटनों पर चिन् अथवा ज्ञानमुद्रा में रखें।

कोहनियों को हल्का-सा मोड़ कर भुजाओं को शिथिल रखें।

सीमाएँ– साइटिका और मेरुदण्ड के निचले भाग (त्रिकास्थि) में विकार से ग्रस्त लोगों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ– यह आसन केवल शरीर की स्थिरता के लिए नहीं, बल्कि मानसिक स्थिरता के लिए भी है। सम्पूर्ण स्नायु तंत्र पर इसका शान्तिदायक प्रभाव पड़ता है। मेरुदण्ड सीधी स्थिति में रहता है, जो लम्बे समय तक प्राणायाम के अभ्यास की सफलता के लिए आवश्यक है।

अधिक रक्त और प्राण का प्रवाह ऊपर की ओर होता है, शरीर के निचले भाग पर पड़ने वाले दबाव से आंशिक मूल बन्ध लग जाता है तथा वज्रोली मुद्रा सक्रिय हो जाती है, जिससे यौन तंत्रिका आवेग मेरुदण्ड से होते हुए वापस मस्तिष्क की ओर प्रेषित हो जाते हैं। कुछ लोग इसे ध्यान एवं प्राणायाम के लिए सर्वोत्तम आसन मानते हैं।

अभ्यास टिप्पणी– सिद्धासन में किसी भी पैर को ऊपर रखा जा सकता है। इस आसन का उपयोग लम्बी अवधि के लिए भी किया जा सकता है, विशेष रूप से नितम्बों के नीचे कुशन रखकर।



सिद्धयोनि आसन

दोनों पैरों को शरीर के सामने सीधा फैलाकर बैठ जाएँ।

दाहिना पैर मोड़ें और उसके तलवे को बायीं जाँघ के भीतरी भाग से सटाकर रखें।

दाहिनी एड़ी को योनि के भगोष्ठ के भीतर जमा कर रखें।

शरीर को व्यवस्थित कर आरामदायक स्थिति में ले आएँ और साथ-ही दाहिनी एड़ी के दबाव को महसूस करें।

बाएँ पैर को मोड़ें और बायीं एड़ी को इस प्रकार सीधे दाहिनी एड़ी पर रखें कि वह भग-शिश्न को दबाए। बाएँ पैर की उँगलियों को दाहिनी जाँघ और पिण्डली के बीच घुसायें। दाहिने पैर की उँगलियों को पकड़कर बायीं पिण्डली और जाँघ के बीच के स्थान में ऊपर की ओर खींचें और बायें पैर के उँगलियों को नीचे दायीं तरफ के स्थान में।

मेरुदण्ड को पूरी तरह सीधा और दण्डवत् रखें, मानो उसे दृढ़ता से जमीन में गाड़ दिया गया हो।

हाथों को घुटनों पर चिन्, ज्ञान अथवा चिन्मय मुद्रा में रखें। इसका अभ्यास किसी भी पैर को ऊपर रखकर किया जा सकता है।

सीमाएँ– सिद्धासन के समान।

लाभ– इसके लाभ सिद्धासन के समान ही हैं। स्त्रियों के प्रजनन तंत्र से सम्बन्धित तंत्रिकाओं पर इसका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, और यह स्नायु-मनोवेगों पर थोड़ा नियन्त्रण प्रदान करता है, जो प्राणायाम और ध्यान की सफलता के लिए आवश्यक है। यह स्त्रियों के लिए प्राणायाम के अधिकांश अभ्यासों हेतु सर्वोत्तम आसन है। यह पूर्ण स्थिरता और शान्ति प्रदान करता है।

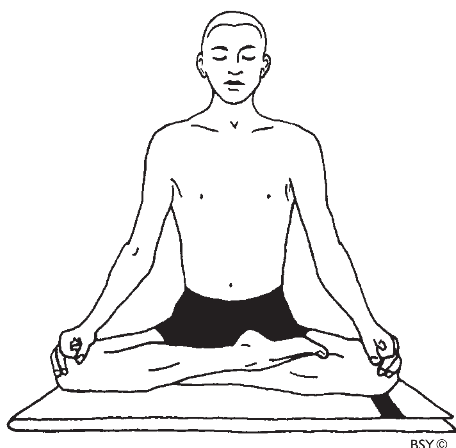
स्वस्तिकासन

पैरों को शरीर के सामने सीधा फैला कर बैठ जाएँ।

बायाँ घुटना मोड़ें और बाएँ पैर के तलवे को दाहिनी जाँघ के भीतरी हिस्से से इस प्रकार सटा कर रखें कि एड़ी और मूलाधार में सम्पर्क न हो। दाहिने घुटने को मोड़ें और दाहिने पंजे को बायीं पिण्डली एवं जाँघ के बीच इस प्रकार रखें कि एड़ी और जघनास्थि के बीच कोई सम्पर्क न रहे। बाएँ पैर की उँगलियों को पकड़ कर दाहिनी पिण्डली और जाँघ के बीच से ऊपर खींचने का प्रयास करें।

शारीरिक स्थिति को व्यवस्थित कर आरामदायक बना लें। घुटने दृढ़तापूर्वक जमीन पर जमे रहें। मेरुदण्ड को सीधा कर लें।

हाथों को चिन्, ज्ञान अथवा चिन्मय मुद्रा में घुटनों पर रखें।



प्रकारान्तर– पैरों को शरीर के सामने सीधा फैला कर बैठ जाएँ। बाएँ पैर को मोड़ें और उसके तलवे को दाहिनी जाँघ के भीतरी भाग से सटा कर रखें। उसी प्रकार दाहिना पैर मोड़ें और दाहिने पंजे की एड़ी को बाएँ पैर के सामने जमीन पर इस प्रकार रखें कि तलवा बायीं पिण्डली पर टिक जाये। अब दोनों एड़ियाँ एक-दूसरे के आमने-सामने हो जायेंगी। हाथों को घुटनों पर चिन्, ज्ञान या चिन्मय मुद्रा में अथवा गोद में रखा जा सकता है। आँखों को बन्द कर पूरे शरीर को शिथिल करें।

सीमाएँ– स्वस्तिकासन उन लोगों को नहीं करना चाहिए, जो साइटिका या मेरुदण्ड के निचले भाग के रोगों से ग्रस्त हैं।

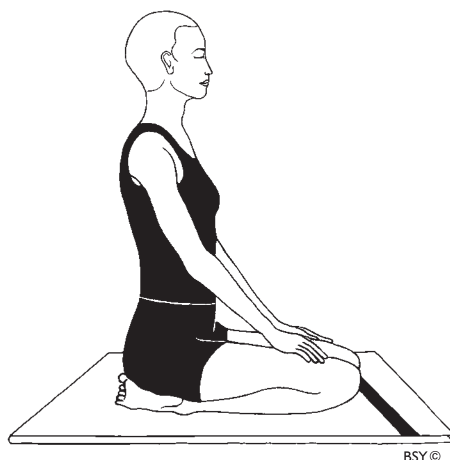
लाभ– स्वस्तिकासन बैठने का एक स्वस्थ आसन है, विशेषकर उन लोगों के लिए जो स्फीत शिरा, पेशीय पीड़ा अथवा पैरों में द्रव अवरोधन से परेशान हों।

अभ्यास टिप्पणी– प्राचीन परम्परागत ध्यान के आसनों में यह सबसे सरल है और सिद्धासन का सरलीकृत रूप है।

वज्रासन

घुटनों के बल जमीन पर बैठ जाएँ।

पैरों के अँगूठों को एक-दूसरे के ऊपर रखें। एड़ियों को अलग-अलग रखें।



घुटने एक साथ रहें और एड़ियाँ अलग रहें।

नितम्बों को नीचे लाकर पंजों के भीतरी भाग के ऊपर रखें, एड़ियाँ कूल्हों का स्पर्श करती हुई रहें।

हाथों को घुटनों पर रखें, हथेलियाँ नीचे की ओर रहें।

पीठ और सिर एक सीध में, किन्तु तनावरहित रहें।

आँखों को बन्द कर लें, भुजाओं और सम्पूर्ण शरीर को शिथिल करें।

लाभ–वज्रासन श्रोणि एवं आँतों के क्षेत्र में रक्त, प्राण तथा स्नायु के आवेगों के प्रवाह को परिवर्तित कर देता है। साइटिका या रीढ़ के निचले भाग के कड़ेपन से पीड़ितों को प्राणायाम के लिए वज्रासन का ही उपयोग करना चाहिए। यह आसन उदर श्वसन के लिए सर्वोत्तम स्थिति प्रदान करता है।

अभ्यास टिप्पणी–नये अभ्यासियों को वज्रासन में थोड़ी देर बैठने के बाद टखनों में दर्द हो सकता है। इस तकलीफ को दूर करने के लिए पैरों को सामने फैलाकर उन्हें तब तक हिलाना चाहिए जब तक उनका कड़ापन समाप्त न हो जाये। उसके बाद पुनः आसन में बैठ जाना चाहिए।

सिंहासन

वज्रासन में बैठकर घुटनों को अलग कर लें।

हाथों को घुटनों के बीच इस प्रकार रखें कि अँगुलियाँ शरीर की ओर रहें।



सामने की ओर झुककर शरीर को सीधे हाथों पर टिका दें।

सिर को पीछे की ओर झुकायें, मुँह खोलें और जीभ को जितना सम्भव हो उतना बाहर निकाल लें।

अभ्यास टिप्पणी–इस आसन का उपयोग श्वान प्राणायाम के लिए किया जाता है।

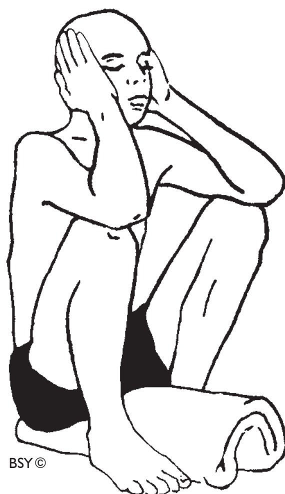
भद्रासन

वज्रासन में बैठ जाएँ। घुटनों को जितना सम्भव हो, दूर-दूर कर लें।

पैरों की उँगलियों का सम्पर्क जमीन से बना रहे।



अब पंजों को एक-दूसरे से इतना अलग कर लें कि नितम्ब और मूलाधार उनके बीच जमीन पर टिक सकें।
घुटनों को और अधिक दूर करने का प्रयास करें, किन्तु जोर न लगायें।
हाथों को घुटनों पर रखें, हथेलियाँ नीचे की ओर रहें।
जब शरीर आराम की स्थिति में आ जाए, तब नासिकाग्र दृष्टि (दृष्टि को नासिका के अग्र भाग पर एकाग्र करना) का अभ्यास करें।



नादानुसन्धान आसन

गोल किये हुए कम्बल या कुशन पर इस प्रकार बैठें कि वह नितम्बों के नीचे और दोनों पैरों के बीच में हो। कुशन इतना ऊँचा रहे कि पीठ मुड़े नहीं। सिर और मेरुदण्ड सीधे रहें।
केहुनियों को घुटनों पर टिका दें, अँगुलियों को सिर पर और अँगूठों को कानों के अन्दर रखें।
कानों को बन्द करने के लिए तर्जनी का प्रयोग भी किया जा सकता है।

परिशिष्ट 3

प्राणायाम के लिए उपयुक्त मुद्राएँ

'मुद्रा' संस्कृत का शब्द है, जिसे भंगिमा कह सकते हैं। मुद्रा के द्वारा मन में शरीर और शरीर में मन परिलक्षित होता है। किसी व्यक्ति के चलने, बैठने, काम करने के ढंग से, उसकी भाव-भंगिमाओं के थोड़े अवलोकन से हम उसकी मानसिक स्थिति का अनुमान लगा सकते हैं। एक भयभीत व्यक्ति और एक क्रुद्ध व्यक्ति के चलने का ढंग बिल्कुल भिन्न होगा। शरीर की भंगिमा, जो शरीर की भाषा है, प्राणमय कोश की नाड़ियों के जाल के माध्यम से अन्नमय तथा अन्य कोशों के सतत् सम्पर्क में रहती है। यहाँ तक कि हाथ या मुख की एक सामान्य मुद्रा के समान मुद्रा सूक्ष्म शरीर में भी उभरती है।

तन्त्र ने इस ज्ञान को मुद्राओं की एक पद्धति के रूप में विकसित किया है, जिसमें शरीर की विशेष मुद्राओं का सम्बन्ध मन की विशेष अवस्था से होता है। मुद्रा सम्पूर्ण शरीर या एक अँगुली की स्थिति के रूप में भी हो सकती है, लेकिन उसका प्रभाव पंच कोश के सभी स्तरों से होता हुआ संचरित होगा, और स्थूल से सूक्ष्म की ओर उसका समुचित संकेत जायेगा।

प्राणमय कोश के माध्यम से सूचनाओं का संचरण एक द्विविध प्रक्रिया है। जिन लोगों को चेतना की परिवर्तित अवस्था की अनुभूति हो चुकी है, वे सहज रूप से मुद्राएँ कर लेते हैं, जो सूक्ष्म से स्थूल की ओर संचार के रूप में प्रकट होती हैं। इसके विपरीत, हम किसी शारीरिक मुद्रा के माध्यम से मन को संदेश और संकेत भेज सकते हैं। उनका प्रभाव अत्यन्त सूक्ष्म होता है। केवल अँगूठे और तर्जनी को मिलाने से चेतना में होने वाले परिवर्तन को समझने के लिए अत्यधिक संवेदनशील होने की आवश्यकता होती है, लेकिन अभ्यास के द्वारा मन इस संकेत को समझने लगता है और जब हाथ इस विशेष मुद्रा में आता है तब ध्यान के लिए संकेत संचरित होता है।

प्राणमय कोश के अन्दर नाड़ियों के जाल में मुद्राओं से सम्बन्धित विभिन्न परिपथ होते हैं, जिनमें प्राण का प्रवाह होता है और इनके स्थूल तथा सूक्ष्म परिणाम होते हैं। मुद्राएँ प्राणों के परिसंचारी तंत्र में परिवर्तन लाती हैं; वे प्राण के बाधारहित प्रवाह को सुनिश्चित करते हुए तथा प्राण को व्यर्थ नष्ट होने से बचाते हुए नाड़ियों को सक्रिय कर देती हैं। इसलिए, जैसा कि मुद्रा विशेष का उद्देश्य होता है, वह प्राण को एक निश्चित अंग की ओर निर्दिष्ट कर सकती है। हाथ की मुद्राएँ ऊर्जा को धीरे-धीरे पुन: व्यवस्थित कर देती हैं, जबकि अन्य मुद्राएँ कुछ विशेष नाड़ियों और अंगों को प्रभावित करती हैं। अनेक मुद्राओं का प्रयोग योग के अभ्यासों के लिए किया जाता है, उनमें से जो प्राणायाम के लिए उपयुक्त हैं उनका वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

नासिकाग्र या नासाग्र मुद्रा

प्राणायाम के अभ्यास में हाथ की इस मुद्रा का सबसे अधिक प्रयोग किया जाता है। इसका उपयोग प्रत्येक नासिका के प्रवाह को नियन्त्रित करने के लिए किया जाता है। इसके कई प्रकारान्तर हैं, लेकिन नीचे जिसका वर्णन किया जा रहा है वह नये अभ्यासियों के लिए आसान, व्यावहारिक है और इसे अच्छी तरह किया जा सकता है। यह प्राण के सूक्ष्म प्रभावों को उपयोगी बना देती है।

इसमें दाहिने हाथ का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि प्राणिक स्तर पर इसका सम्बन्ध 'देने' से होता है; जबकि बायें हाथ का सम्बन्ध अधिकतर 'लेने' से होता है। हालाँकि यदि दाहिने हाथ का प्रयोग करने में कोई कठिनाई हो तो उसके स्थान पर बायें हाथ का प्रयोग किया जा सकता है।

विधि

ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें।

सजगता को हाथों पर ले जायें और दाहिने हाथ को चेहरे के सामने रखें।

तर्जनी और मध्यमा अँगुलियों को भ्रूमध्य पर रखें। दोनों अँगुलियों को शिथिल रखें।

अँगूठे को दायीं नासिका और अनामिका को बायीं नासिका की बगल में रखें।

दायीं नासिका को बन्द करने या खोलने के लिए अँगूठे को आवश्यकतानुसार दबाया या उठाया जा सकता है। इसी प्रकार अनामिका बायीं नासिका में





प्रकारान्तर

वायु के प्रवाह को नियन्त्रित करती है। कनिष्ठिका का प्रयोग नहीं किया जाता है, उसे आराम से मोड़ कर रखा जाता है।

प्रत्येक नासिका को हल्के से दबाना है ताकि नासापट किसी एक ओर झुक नहीं जाये; कोमलता के साथ दृढ़ रहें।

हाथ सामने की ओर वक्ष के बीच में होना चाहिए, लेकिन वक्ष से सटा हुआ नहीं रहना चाहिए ताकि फेफड़ों के प्रसार में बाधा उत्पन्न नहीं हो।

केहुनी नीचे की ओर रहनी चाहिए, क्योंकि यदि यह बगल में उठी हुई रहेगी तो कुछ देर बाद हाथ में दर्द हो सकता है।

हाथों और कन्धों को शिथिल रखें; तनाव जितना कम होगा, आप आराम से बिना किसी बाधा के प्राणायाम के उतने अधिक चक्र कर पायेंगे।

अभ्यास टिप्पणी–दोनों नासिकाओं का अवनत तल (अन्दर धँसा हुआ भाग) अँगूठे और अँगुली को नासिकाओं को नियन्त्रित करने की ऐसी स्थिति प्रदान करता है जिसमें उन्हें बन्द करने के लिए कम दबाव की आवश्यकता पड़ती है। एक नासिका के बाद दूसरी नासिका को दबाने के लिए अधिक दबाव की आवश्यकता नहीं होती है। इससे शरीर और प्राणायाम के अभ्यास, दोनों में ही कोई अवरोध उत्पन्न नहीं होता है।

प्रकारान्तर–नासिकाग्र मुद्रा के अन्य प्रकारान्तर में तर्जनी और मध्यमा को हथेली की ओर मोड़ दिया जाता है। हालाँकि इससे इन दोनों अँगुलियों

के द्वारा भ्रूमध्य, जो आज्ञा चक्र का क्षेत्र है, हल्के से उत्तेजित होने से वंचित हो जाता है। आप उसी स्थिति को चुने जो आपके लिए उचित हो।



ज्ञान मुद्रा

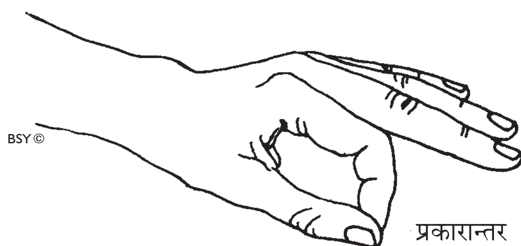
ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें।

दोनों हाथों की तर्जनी अँगुलियों को इस प्रकार मोड़ लें कि वे अँगूठे की जड़ का स्पर्श करें। अन्य तीन अँगुलियों को सीधा, लेकिन शिथिल रखें।

हाथों को घुटनों पर इस प्रकार रखें कि हथेलियाँ नीचे की ओर रहें।

हाथों को शिथिल कर लें।

अभ्यास टिप्पणी– इस मुद्रा का उपयोग ध्यान और प्राणायाम के अभ्यासों के लिए किया जाता है।



प्रकारान्तर– अँगूठे का शीर्ष तर्जनी के शीर्ष से मिल कर वृत्ताकार बन जाता है।



चिन् मुद्रा

यह मुद्रा भी ज्ञान मुद्रा के समान ही होती है, लेकिन इसमें हथेलियाँ ऊपर की ओर होती हैं और हाथों का पृष्ठ भाग घुटनों पर टिका रहता है।

लाभ–ज्ञान मुद्रा और चिन् मुद्रा सरल, किन्तु महत्त्वपूर्ण मनो-स्नायविक अँगुली-बन्ध हैं, जो ध्यान के आसन को अधिक प्रभावशाली बनाते हैं। हथेलियों और उँगलियों के पोरों में अनेक नाड़ियों का अन्त होता है, जिनसे ऊर्जा निरंतर बाहर निकलती रहती है। जब तर्जनी अँगूठे का स्पर्श करती है, तब एक ऊर्जा-पथ का निर्माण होता है, और जो ऊर्जा सामान्य रूप से वातावरण में बिखर कर नष्ट हो जाती, वह शरीर में वापस आकर मस्तिष्क की ओर जाती है।

जब उँगलियों और हाथों को घुटनों पर रखा जाता है, तब घुटने ऊर्जा के प्रति सुग्राही हो जाते हैं, जिसके कारण एक अन्य प्राण-पथ निर्मित होता है, जो शरीर में प्राण के स्तर को बनाये रखता है और उसे वापस शरीर में ले आता है। इसके अतिरिक्त हाथों को घुटनों पर रखने से एक नाड़ी में उद्दीपन उत्पन्न होता है, जो घुटनों से निकल कर जाँघों के भीतर से होते हुए मूलाधार तक पहुँचती है। यह गुप्त नाड़ी कहलाती है। इस नाड़ी को सक्रिय बनाने से मूलाधार चक्र में स्थित ऊर्जाओं में उद्दीपन पैदा होता है।

जब चिन् मुद्रा में हथेलियाँ ऊपर की ओर रहती हैं, तब वक्ष-प्रदेश खुलता है। अभ्यासी को इसका अनुभव हल्केपन एवं ग्रहणशीलता के रूप में होता है, ज्ञान-मुद्रा में ऐसा नहीं होता।

प्राण तथा प्राच्य अक्युपंक्चर की *की ऊर्जा* के बीच के सम्बन्धों की जानकारी से इनमें से कुछ मुद्राओं में कुछ रोचक तत्त्व जुड़ जाते हैं। *की ऊर्जा* में ऐसे मेरीडियन (नाड़ियों में प्राण से सम्बन्धित) होते हैं जिनके अन्तिम बिन्दु (*सेई* या कूप बिन्दु) अँगुलियों के शीर्ष पर होते हैं।

फेफड़ों के मेरीडियन का *सेई* बिन्दु अँगूठों में स्थित होता है; बड़ी आँत का तर्जनी के शीर्ष पर; हृदय को संकुचित करने वाली वाहिनियों का मध्यमा के शीर्ष पर; त्रितापक मेरीडियन अनामिका में और छोटी आँत तथा हृदय का *सेई* बिन्दु कनिष्ठिका में होता है। सामान्यत: अँगुलियों के शीर्ष से ऊर्जा का निस्सरण होता है। ऐसा बताया गया है कि ज्ञान या चिन् मुद्रा करते समय फेफड़ों के मेरीडियन के पास से अँगूठे की ओर प्रवाहित होती हुई ऊर्जा बड़ी आँत के मेरीडियन की ओर चली जाती है। इस प्रकार शरीर को शक्ति प्रदान करने वाली ऊर्जा संरक्षित हो जाती है।

कहा जाता है कि चिन् मुद्रा का प्रभाव उदर श्वसन पर पड़ता है, और यहाँ हम मेरीडियनों के माध्यम से फेफड़ों और उदर के बीच के सम्बन्ध को देख सकते हैं।

टिप्पणी– *ज्ञान मुद्रा का अर्थ है, 'अन्तर्ज्ञान की स्थिति'। चिन् शब्द 'चित्त' से बना है, जिसका अर्थ होता है, 'चेतना' । इस प्रकार चिन् मुद्रा चेतना की अतीन्द्रिय स्थिति है। प्रतीकात्मक रूप से मध्यमा, अनामिका एवं कनिष्ठा उँगलियाँ प्रकृति के तीन गुणों का बोध कराती हैं। मध्यमा उँगली सत्त्व का प्रतीक है (शुद्धता, ज्ञान, सही समझ), अनामिका रजस का प्रतीक है (क्रिया, वासना, गतिशीलता) और कनिष्ठा तमस का प्रतीक है (स्थिरता, आलस्य, अन्धकार)। चेतना को अन्धकार से प्रकाश और अज्ञान से ज्ञान लोक में ले जाने के लिए इन तीन अवस्थाओं को पार करना आवश्यक है। मुड़ी हुई तर्जनी जीवात्मा की प्रतीक है और अँगूठा परम चेतना का। तर्जनी का अँगूठे से स्पर्श दर्शाता है कि यद्यपि दोनों अलग दिखते हैं, पर वास्तव में दोनों एक ही हैं।*

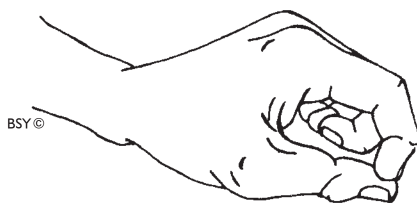
चिन्मय मुद्रा

ध्यान के किसी आसन में बैठ जायें।

इस आसन में पूरे शरीर को शिथिल करें।

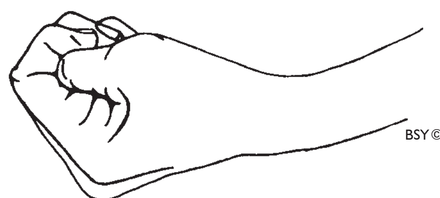
अँगुलियों को ज्ञान मुद्रा के समान स्थिति में लें आयें।

तीन सीधी अँगुलियों को इस प्रकार मोड़ लें कि उनके शीर्ष या तो हथेलियों का स्पर्श करें या उस ओर मुड़े रहें।



तर्जनी को या तो अँगूठे की जड़ से या उसके शीर्ष से सटाकर रखें।
हाथों को घुटनों पर रखें। हथेलियाँ ऊपर या नीचे, किसी भी दिशा में रह सकती हैं।

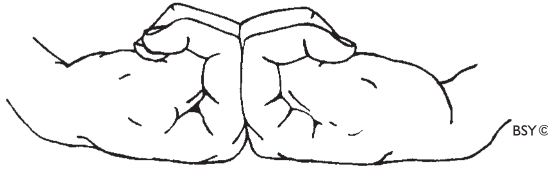
लाभ– यह मुद्रा प्राण को प्रभावित करती है और वक्षीय क्षेत्र में गति उत्प्रेरित करती है। इस मुद्रा में एक्यूपंक्चर के मेरीडियन बिन्दु श्वसन को प्रभावित करते हैं।



आदि मुद्रा

ध्यान के किसी आसन में बैठ जायें और इस आसन में शरीर को शिथिल करें।
अँगूठों को हथेलियों के अन्दर मोड़ लें; उसके बाद धीरे-धीरे अँगुलियों को अँगूठों के ऊपर मोड़कर मुट्ठी बना लें।
हाथों को घुटनों पर रखें। हथेलियाँ ऊपर या नीचे, किसी भी दिशा में रह सकती हैं।

लाभ– यह मुद्रा ऊपरी वक्ष के श्वसन को प्रभावित करती है।



ब्रह्म मुद्रा

ध्यान के किसी आसन में बैठ जायें और इस आसन में शरीर को शिथिल करें।

अँगूठों को हथेलियों की ओर घुमाकर अँगुलियों को उनके ऊपर मोड़ लें।

अब हाथों के पृष्ठ भाग को जाँघों पर रख लें और दोनों मुट्ठियों को आपस में सटा दें।

अँगूठे वाला हिस्सा शरीर के दूसरी ओर रहे; अँगुलियों के नाखून दिखाई देते रहें; हाथों की कनिष्ठिका वाला भाग शरीर के निकट रहे।

दोनों हाथों को श्रोणी प्रदेश के स्तर पर शरीर के निकट रखें।

लाभ– यह मुद्रा पूर्ण यौगिक श्वसन, अर्थात् श्वसन के लिए उदर, वक्ष तथा कॉलरबोन का उपयोग करने के लिए उत्प्रेरित करने में सहायक होती है। हाथों की अँगुलियों के जोड़ जब एक-दूसरे को दबाते हैं तब हाथ के सारे मेरीडियन आपस में जुड़ जाते हैं। अँगुलियों के शीर्ष हथेली से सटकर एक अन्य परिपथ बनाते हैं।

तुलनात्मक अभ्यास

इन चार मुद्राओं (क्रमशः चिन्, चिन्मय, आदि एवं ब्रह्म) का अभ्यास करें और देखें कि क्या अपने श्वसन की तीव्रता और श्वास के प्रकार में आप किसी अन्तर को परिलक्षित कर पाते हैं। जब आप किसी ऐसे प्राणायाम का अभ्यास कर रहे हों जिसमें नासिकाग्र मुद्रा का प्रयोग नहीं किया जाता है तब हाथों को चिन् मुद्रा में रखें और फेफड़ों पर इसके प्रभाव के प्रति सजग हो जायें। क्या यह उदर या मध्यपट श्वसन को प्रभावित करती है? इसका अभ्यास 10 मिनट तक करें और उसके बाद हाथों को चिन्मय मुद्रा में ले आयें। क्या आपके श्वसन के स्वरूप में कोई परिवर्तन आया? क्या आप वक्षीय क्षेत्र और अन्तरापर्शुक पेशियों पर किसी प्रकार का प्रभाव अनुभव कर

रहे हैं? उसके बाद आदि मुद्रा करें और देखें कि वक्ष के ऊपरी क्षेत्र में और कॉलरबोन पर कोई प्रभाव पड़ रहा है या नहीं। अन्तत: हाथों को ब्रह्म मुद्रा में ले आयें और अपनी पूर्ण श्वास पर होने वाले प्रभाव को अनुभव करें। इस प्रकार प्रयोग करें, लेकिन स्मरण रखें कि संवेदनशीलता नियमित अभ्यास से ही विकसित होगी।



भैरव एवं भैरवी मुद्रा

ध्यान के किसी आसन में बैठ जायें।
इस आसन में पूरे शरीर को शिथिल करें।
एक हाथ को दूसरे हाथ के ऊपर रखें, दोनों हथेलियाँ ऊपर की ओर खुली हुई हों।
दोनों हाथ गोद में रखे हुए हों।
जब दाहिना हाथ बायें हाथ के ऊपर होता है तब इसे भैरव मुद्रा कहते हैं।
जब बायाँ हाथ दाहिने हाथ के ऊपर रखा होता है तब इसे भैरवी मुद्रा कहते हैं।

अभ्यास टिप्पणी– जब नासिकाग्र मुद्रा का उपयोग नहीं किया जा रहा हो तब इन मुद्राओं को किसी भी प्राणायाम या ध्यान के अभ्यास के लिए अपनाया जा सकता है।

प्राणवायु मुद्रा एवं तत्त्व

यह तथ्य अत्यंत रोचक प्रतीत होता है कि पंच तत्त्व–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश न केवल विशाल ब्रह्माण्ड के रूप में व्याप्त हैं, बल्कि सूक्ष्म ब्रह्माण्ड के रूप में भी विद्यमान हैं। शरीर के विशेष अंगों में इन पंच भूतों (तत्त्व) की प्रधानता होती है और प्रत्येक अँगुली इनका प्रतिनिधित्व

करती है। इनका महत्त्व यह है कि जब हस्त मुद्राएँ अपनायी जाती हैं तब विभिन्न तत्त्व प्रतीकात्मक रूप से आपस में जुड़ जाते हैं। अँगूठा अग्नि का प्रतिनिधित्व करता है; तर्जनी वायु का; मध्यमा आकाश का; अनामिका पृथ्वी का और कनिष्ठिका जल का प्रतिनिधित्व करती हैं। हालाँकि शास्त्रीय ग्रन्थों में कुछ भेद हैं। प्राणवायु मुद्रा स्थूल पदार्थ और हमारे अस्तित्व के बीच सूक्ष्म सम्बन्ध, तथा अधिक व्यापक तत्त्वों एवं शक्तियों के साथ हमारे सम्बन्ध का प्रतिनिधित्व करती है। ये तत्त्व एवं शक्तियाँ सृष्टि के सभी स्तरों का अन्तर्भेदन करती हैं। ये हमें स्वयं को बाह्य जगत् से पृथक् करने से रोकने का, एक क्षण के लिए स्थिर रहकर प्रत्येक वस्तु में स्पंदनशील और व्याप्त एकत्व का अनुभव करने का स्मरण कराती हैं।

प्राण मुद्रा– अँगूठे (अग्नि), मध्यमा (आकाश) और अनामिका (पृथ्वी) के छोरों को आपस में मिला दिया जाता है। इस मुद्रा के साथ *'ॐ प्राणाय स्वाहा'* मंत्र का प्रयोग किया जाता है। प्राण वायु वक्ष क्षेत्र में केन्द्रित होती है।

अपान मुद्रा– अँगूठे, तर्जनी और मध्यमा के छोरों को आपस में मिला दिया जाता है। इस मुद्रा के साथ *'ॐ अपानाय स्वाहा'* मंत्र का प्रयोग किया जाता है। अपान वायु श्रोणी प्रदेश में केन्द्रित होती है।

समान मुद्रा– अँगूठे, कनिष्ठिका और अनामिका के छोरों को आपस में मिला दिया जाता है। इस मुद्रा के साथ *'ॐ समानाय स्वाहा'* मंत्र का प्रयोग किया जाता है। समान वायु उदर में केन्द्रित होती है।

उदान मुद्रा– अँगूठे, तर्जनी और कनिष्ठिका के छोरों को आपस में मिला दिया जाता है। इस मुद्रा के साथ *'ॐ उदानाय स्वाहा'* मंत्र का प्रयोग किया जाता है। उदान वायु हाथों, पैरों, गरदन और सिर में केन्द्रित होती है।

व्यान मुद्रा– अँगूठे, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका के छोरों को आपस में मिला दिया जाता है। इस मुद्रा के साथ *'ॐ व्यानाय स्वाहा'* मंत्र का प्रयोग किया जाता है। व्यान वायु सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होती है।

विधि

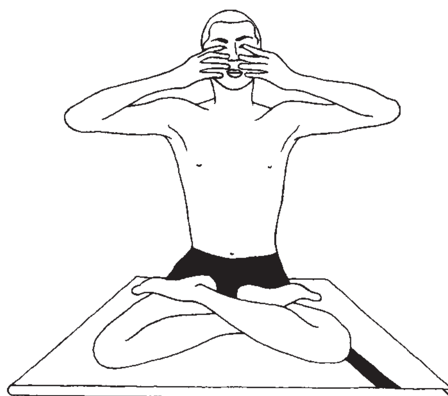
ध्यान के किसी आसन में बैठकर मेरुदण्ड को सीधा, लेकिन शिथिल रखें। हाथों को प्राण मुद्रा में रखें, सजगता को अपनी स्वाभाविक श्वास पर और शरीर के उस भाग पर केन्द्रित रखें जहाँ प्राण वायु स्थित होती है।

कुछ देर इस अभ्यास को जारी रखें, उसके बाद इसके मंत्र का मानसिक जप करना आरम्भ करें।

प्राण वायु की प्रत्येक मुद्रा के साथ इसी प्रक्रिया को 10 मिनट तक करें। धीरे-धीरे इन सूक्ष्म ऊर्जाओं के प्रति सजगता उत्पन्न होने लगेगी।

अभ्यास टिप्पणी – जब नासिकाग्र मुद्रा का उपयोग नहीं किया जा रहा हो तब इन मुद्राओं में से किसी का भी उपयोग प्राणायाम या प्राणायाम के पूर्व के अभ्यास के लिए किया जा सकता है।

टिप्पणी– *पाँच विभिन्न प्रकार की प्राणवायु का प्रतिनिधित्व और उनका आवाहन हाथ की मुद्राओं के द्वारा किया जाता है। इन मुद्राओं को करने का यह अर्थ नहीं कि आप सहज ही उस वायु का अनुभव उसके विशेष क्षेत्र में करने लगेंगे, बल्कि सूक्ष्म प्राणिक स्तर पर वह विशेष ऊर्जा उत्प्रेरित होगी। प्राण एवं इसकी सूक्ष्मताओं से सम्बन्धित अभ्यास करने के पूर्व प्राण वायु और ब्रह्माण्ड में व्याप्त ऊर्जाओं के प्रति गहरी सजगता उत्पन्न होने तक इन मुद्राओं का ज्ञान हो जाना चाहिए।*



षण्मुखी मुद्रा

किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें, सिर और मेरुदण्ड को सीधा रखें, आँखों को बन्द कर लें और हाथों को घुटनों पर रखें।

पूरे शरीर को शिथिल करें।

भुजाओं को उठाकर मुँह के सामने लायें और कोहनियों को बगल की ओर रखें।

कानों को अँगूठों से, आँखों को तर्जनियों से, नासिकाछिद्रों को मध्यमा से और मुँह को होठों के ऊपर और नीचे अनामिका एवं कनिष्ठा ऊँगलियों को लगा कर बन्द कर लें।

मध्यमा उँगलियों का दबाव हटा कर नासिका-छिद्रों को खोलें। पूर्ण यौगिक श्वसन करते हुए धीरे-धीरे गहरी श्वास लें। पूरी श्वास लेने के बाद मध्यमा उँगलियों से नासिकाछिद्रों को बन्द कर लें।

जितनी देर आराम से सम्भव हो, श्वास को भीतर रोकें। कुछ क्षण बाद, मध्यमा उँगलियों का दबाव हटा कर धीरे-धीरे श्वास छोड़ें।

यह एक चक्र हुआ।

फिर तुरन्त दूसरा चक्र प्रारम्भ करने के लिए श्वास अन्दर लें।

अभ्यास को समाप्त करने के लिए, आँखों को बन्द रखते हुए हाथों को नीचे घुटनों पर ले आयें और बाह्य ध्वनियों और भौतिक शरीर के प्रति सजग होकर धीरे-धीरे मन को बहिर्मुख करें।

सीमाएँ– मानसिक अवसाद से पीड़ित व्यक्तियों को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ– शारीरिक स्तर पर, हाथों एवं उँगलियों से निकलने वाली ऊर्जा और गर्मी मुँह की पेशियों और तन्त्रिकाओं को उत्प्रेरित एवं विश्रान्त करती है।

मानसिक स्तर पर, आन्तरिक सजगता को बढ़ाती है। आध्यात्मिक स्तर पर यह प्रत्याहार की स्थिति लाती है।

अभ्यास टिप्पणी– इस मुद्रा का उपयोग विभिन्न प्राणायामों और ध्यान की विधियों, क्रिया योग तथा नाद योग के अभ्यासों के साथ किया जाता है।

खेचरी या नभो मुद्रा

ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें। पद्मासन या सिद्धासन/सिद्धयोनि आसन उत्तम होगा।

सिर और मेरुदण्ड को सीधा रखें और दोनों हाथों को चिन् मुद्रा या ज्ञान-मुद्रा में घुटनों पर रखें।

मुँह बन्द करें, जिह्वा को ऊपर और पीछे की ओर इस प्रकार मोड़ें कि उसका नीचे का हिस्सा तालु के ऊपरी भाग को स्पर्श करे।

जिह्वा के अग्र भाग को आरामपूर्वक जितना हो सके, पीछे ले जायें।

अधिक जोर न लगायें।

उज्जायी प्राणायाम करें।

धीरे-धीरे गहरी श्वास लें। जितनी देर सम्भव हो, श्वास को रोकें।

प्रारम्भ में थोड़ी असुविधा हो सकती है और हो सकता है उज्जायी प्राणायाम से गले में उत्तेजना पैदा हो, किन्तु अभ्यास के साथ यह अधिक सुविधाजनक हो जायेगा।

जब जिह्वा थक जाए, तो उसे विश्राम दें और फिर अभ्यास को दुहरायें।

अभ्यास से जीभ स्वत: तालु गुहा को स्पर्श करने लगेगी, जिससे मस्तिष्क के अनेक महत्त्वपूर्ण तंत्रिका केन्द्रों को उद्दीपन प्राप्त होगा।

सावधानियाँ– यदि मुँह में कड़वा स्वाद आये, तो अभ्यास तुरन्त बन्द कर दें। इस प्रकार का स्राव शरीर में विषाक्त तत्त्वों की उपस्थिति का सूचक है।

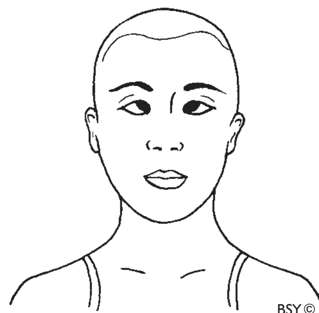
लाभ– खेचरी मुद्रा मुँह के पीछे और नासिकाछिद्रों में स्थित कई दबाव-बिन्दुओं को उद्दीप्त करती है। ये बिन्दु सम्पूर्ण शरीर को प्रभावित करते हैं। कई ग्रन्थियों की मालिश होती है, जिससे कुछ रसों और लार के स्राव में वृद्धि होती है। यह अभ्यास भूख और प्यास को कम करता है और आन्तरिक शान्ति एवं स्थिरता लाता है। यह शरीर की प्राणशक्ति की रक्षा करता है और आन्तरिक उपचार के लिए विशेष रूप से उपयोगी है।

निष्कर्ष रूप में, इस मुद्रा में प्राण को सक्रिय बनाकर कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने की क्षमता है।

शाम्भवी मुद्रा या भ्रूमध्य दृष्टि

ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें। सिर और मेरुदण्ड को सीधा रखें और हाथों को ज्ञान या चिन् मुद्रा में घुटनों पर रखें।

आँखों को बन्द कर लें और पूरे शरीर को शिथिल करें।



ललाट, आँखों और आँखों के पृष्ठ भाग सहित पूरे चेहरे की पेशियों को शिथिल करें।

धीरे-धीरे आँखें खोलें और सिर तथा पूरे शरीर को एकदम स्थिर रखते हुए अपने सामने किसी निश्चित बिन्दु पर दृष्टि केन्द्रित करें।

अब दृष्टि को ऊपर उठाकर अन्दर की ओर लाते हुए भ्रू-मध्य पर केन्द्रित करें। यदि सही ढंग से इस मुद्रा का अभ्यास किया जाए, तो दोनों धनुषाकार भौहें नासिका-मूल पर V की आकृति बनायेंगी। यह बिन्दु भ्रू-मध्य-केन्द्र है। यदि V की आकृति दिखायी न दे तो समझ लें कि आँखों को सही ढंग से भ्रू-मध्य पर केन्द्रित नहीं किया गया है।

प्रारम्भ में कुछ क्षणों के लिए ही दृष्टि केन्द्रित करें।

थोड़ी भी असुविधा महसूस होने पर आँखों को सामान्य स्थिति में लाकर बन्द कर लें और उन्हें विश्राम दें।

विचार-प्रक्रियाओं को रोकने का प्रयास करें और बन्द आँखों के सामने चिदाकाश में निश्चलता पर ध्यान करें।

सावधानियाँ–आँखें बहुत संवेदनशील होती हैं, इसलिए अन्तिम स्थिति में अधिक देर तक नहीं रहना चाहिए। यदि स्नायु दुर्बल हों और उन पर अधिक जोर पड़े, तो दृष्टि-पटल का अलगाव (रेटिनल डिटैचमेंट) हो सकता है। यदि किसी प्रकार का दबाव महसूस हो, तो आँखों को सामान्य स्थिति में वापस ले आयें।

सीमाएँ–ग्लूकोमा या डाइबिटिक रेटिनोपैथी से पीड़ित व्यक्ति या जिनके मोतियाबिन्द की हाल में शल्य-क्रिया हुई है या आँखों की अन्य प्रकार की शल्य-क्रिया हुई है, वे विशेषज्ञ के मार्गदर्शन के बिना शाम्भवी-मुद्रा का अभ्यास न करें।

लाभ–शाम्भवी आँखों की पेशियों को मजबूत बनाती है और उस क्षेत्र के तनाव को दूर करती है। इस प्रकार भावनात्मक तनाव और क्रोध को दूर करते हुए यह मन को शान्त करती है। एकाग्रता, मानसिक स्थिरता और विचारहीनता की अवस्था का विकास होता है।

अगोचरी मुद्रा या नासिकाग्र दृष्टि

ध्यान के किसी आसन में बैठ जायें, सिर और मेरुदण्ड सीधे रहें।

हाथों को चिन् या ज्ञान मुद्रा में घुटनों पर रखें।

आँखों को बन्द करें और सम्पूर्ण शरीर को शिथिल कर लें।

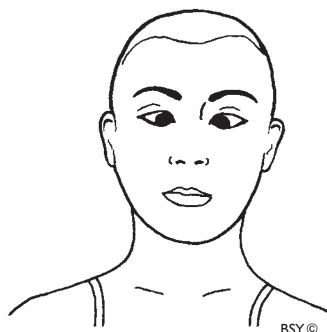
आँखों को खोलें और नासिकाग्र पर दृष्टि केन्द्रित करें।

जब आँखें ठीक से केन्द्रित हो जाती हैं तब नासिकाग्र पर V के आकार का प्रकाश बिम्ब दिखेगा।

V के ऊपरी सिरे पर दृष्टि को केन्द्रित करें।

अभ्यास में इस प्रकार तल्लीन हो जायें कि किसी भी प्रकार का विचार उत्पन्न नहीं हो।

अभ्यास को दुहराने के पूर्व आँखों को बन्द कर उन्हें शिथिल करें। पाँच मिनट तक इसे जारी रखें।



सीमाएँ– शाम्भवी मुद्रा के समान। जो व्यक्ति अवसादग्रस्त हों, उन्हें अन्तर्मुख करने वाले इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।

लाभ– यह अभ्यास क्रोध को और क्षुब्ध मन को शान्त करता है। एकाग्रता का विकास होता है। यदि सजगता के साथ लम्बे समय तक इसका अभ्यास किया जाता है तो यह मूलाधार चक्र को जाग्रत करने में मदद करता है और ध्यान की अवस्था में पहुँचा देता है।

अभ्यास टिप्पणी– नासिकाग्र दृष्टि का अभ्यास सामान्य श्वसन के साथ तब तक किया जाना चाहिए जब तक कि आँखें नीचे की ओर देखने के लिए अनुकूलित न हो जायें। बाद में अभ्यास को अन्तर्कुम्भक के साथ किया जा सकता है, बहिर्कुम्भक के साथ नहीं।

उन्मनी मुद्रा

'उन्मनी' शब्द का अर्थ होता है 'मन के बिना' या 'विचारशून्यता'। ध्यान के क्रम में उन्मनी अवस्था उत्पन्न होती है।

उन्मनी का तात्पर्य उस अवस्था से है जो विचार से परे हो, ऐसी अवस्था जिसमें भौतिक वस्तुओं के प्रति अनासक्ति हो जाती है। इस अवस्था में सजगता विचार और विश्लेषण से बाधित हुए बिना काम करती है। यह अवस्था प्राणायाम, ध्यान और क्रिया के कुछ अभ्यासों में मदद करती है।

विधि

ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें।

आँखों को पूरी तरह खोल लें, किन्तु अनावश्यक जोर न लगायें।

गहरी श्वास लें और उसे भीतर रोकते हुए अपनी सजगता को कुछ क्षणों के लिए सिर के पिछले भाग में बिन्दु पर केन्द्रित करें।

श्वास बाहर छोड़ें और अपनी सजगता को श्वास के साथ बिन्दु से मेरुदण्ड में स्थित चक्रों–आज्ञा, विशुद्धि, अनाहत, मणिपुर, स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार से होते हुए नीचे ले जायें।

साथ-ही-साथ आँखों को भी धीरे-धीरे बन्द करना प्रारम्भ करें और जब तक सजगता मूलाधार में पहुँचे, तब तक उन्हें पूरी तरह बन्द कर लें।

जिस समय आँखें खुली रहती हैं, उस समय भी सजगता अन्दर की ओर ही रहती है।

बहुत अधिक प्रयास न करें, प्रक्रिया को सहज रूप से होने दें।

गहरी श्वास लें और अगला चक्र प्रारम्भ करें।

5–10 मिनट तक अभ्यास करते रहें।

सीमाएँ–शाम्भवी मुद्रा के समान।

लाभ–उन्मनी मुद्रा ध्यान की अवस्था उत्पन्न करती है। यह सामान्य तनाव और व्यग्रता को शान्त करती है।

आकाशी मुद्रा

ध्यान के किसी आरामदायक आसन में बैठ जायें।

खेचरी मुद्रा में जिह्वा को पीछे की ओर मोड़कर तालु से स्पर्श करायें और उज्जायी प्राणायाम तथा शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करें।

साथ-ही सिर को लगभग 45 अंश के कोण पर पीछे की ओर झुकायें।

हाथों से घुटनों को दबाते हुए भुजाओं एवं कोहनियों को सीधा करें।

धीमा और गहरा उज्जायी श्वसन करें।

जब तक आरामपूर्वक हो सके, इस अभ्यास को करते रहें।

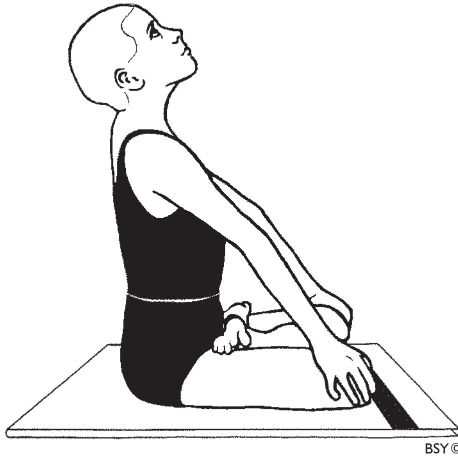
अब कोहनियों को मोड़ें और खेचरी एवं शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास समाप्त करें।

सिर को सीधा कर लें।

कुछ क्षणों के लिए सामान्य श्वसन करें और अगला चक्र प्रारम्भ करने के पूर्व अन्तराकाश के प्रति सजग हो जायें।

1 से 3 चक्र अभ्यास करें।

धीरे-धीरे इसे 5 चक्रों तक बढ़ायें।



सावधानियाँ – यदि चक्कर आने लगे, तो तुरन्त अभ्यास बन्द कर दें। यह अभ्यास धीरे-धीरे और किसी विशेषज्ञ के मार्गदर्शन में सीखना चाहिए।

सीमाएँ – उच्च रक्तचाप, चक्कर आना, मस्तिष्क विकार या मिर्गी के रोगियों को इस मुद्रा का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ – इस अभ्यास के साथ कुम्भक, उज्जायी, शाम्भवी और खेचरी के लाभ जुड़े हुए हैं। इससे मानसिक शान्ति आती है और इन्द्रियों पर नियन्त्रण प्राप्त होता है। इसमें दक्षता प्राप्त कर लेने पर यह विचार-प्रक्रियाओं का निरोध कर चेतना की उच्च स्थिति में पहुँचाती है।

अभ्यास टिप्पणी – यह परामर्श दिया जाता है कि आकाशी-मुद्रा का अभ्यास प्रारम्भ करने के पूर्व अभ्यासी उज्जायी, खेचरी और शाम्भवी के अभ्यासों को पूरी तरह जान ले। प्रारम्भ में सिर को पीछे मोड़ कर उज्जायी करने से गले में उत्तेजना हो सकती है। किन्तु, अभ्यास के द्वारा यह अधिक आरामदायक हो जायेगा। अन्तिम स्थिति में जब तक आरामपूर्वक हो सके, रुकें, मुद्रा की अवधि को धीरे-धीरे बढ़ायें।

परिशिष्ट 4

प्राणायाम के लिए उपयुक्त बन्ध

'बन्ध' शब्द का अर्थ है बाँधना। यह अर्थ बन्ध के अभ्यास में होने वाली शारीरिक क्रियाओं और प्राणिक शरीर पर उनके प्रभाव के संदर्भ में व्यक्त किया गया है। मुद्राएँ प्राण को कुछ परिपथों के माध्यम से प्राणमय कोश की ओर संचालित करती हैं, जबकि बन्ध प्राण को शरीर के विशेष क्षेत्रों में भेजकर वहाँ उसे रोक कर संचित कर लेते हैं। इस प्रकार ये प्राण को विभिन्न क्षेत्रों में प्रवाहित होने के लिए बाध्य करते हैं या संचित कर लेते हैं। अभ्यासों के दौरान शरीर के कुछ भागों को संकुचित किया जाता है। इस क्रिया से क्षेत्र विशेष की पेशियों, अंगों, ग्रंथियों और तंत्रिकाओं की मालिश होती है और वे उससे उत्प्रेरित एवं प्रभावित भी होती हैं।

तीन बन्ध हैं–जालन्धर, उड्डियान और मूल। चौथा है महाबन्ध, जो इन तीनों का मिश्रण है। ये बन्ध क्रमशः गले, उदर और श्रोणी तल के क्षेत्रों को संकुचित करते हैं। जब अन्तर्कुम्भक के साथ प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है तब उसमें जालन्धर और मूल बन्धों को भी संयुक्त कर लेना चाहिए। जब बहिर्कुम्भक के साथ अभ्यास किया जाता है तब उसमें जालन्धर, मूल और उड्डियान, तीनों बन्धों को संयुक्त कर लेना चाहिए।

प्राणायाम का सबसे अधिक लाभ तब होता है जब कुम्भक का अभ्यास बन्धों के साथ किया जाता है। इसके अनेक कारण हैं। प्राणायाम प्राण के प्रवाह को उत्प्रेरित करता है, और जब प्राण उत्प्रेरित हो जाते हैं तब साधक के पास प्राणिक ऊर्जा को उच्चतर केन्द्रों की ओर भेजने के साधन होने चाहिए। इसलिए पानी को पम्प करने जैसा ऋणात्मक दबाव उत्पन्न करने की आवश्यकता होती है, जो ऊर्जा को मेरुदण्ड में ऊपर की ओर ठेलता है। बन्ध इस प्रकार का दबाव उत्पन्न करते हैं। वे प्राण के प्रवाह को नियन्त्रित करते हैं

और इसे आवश्यक क्षेत्रों में निर्दिष्ट करते हैं। जब मूल बन्ध और जालन्धर बन्ध लगाया जाता है तब अपान को ऊपर की ओर प्रवाहित होने को बाध्य किया जाता है ताकि वह प्राण में समाहित हो जाये। जब प्राण और अपान मिलते हैं तब शक्ति उत्पन्न होती है, जो कुण्डलिनी को जाग्रत करने में मदद करती है।

बन्ध उन तीन मुख्य ग्रंथियों अर्थात् गाँठों को खोलने में सहायक होते हैं, जिनसे साधकों का सामना होता है। वे इस प्रकार हैं–

ब्रह्म ग्रंथि–यह मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान चक्रों को नियन्त्रित करती है, और भय तथा असुरक्षा, भौतिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति, यौन सुख की इच्छा तथा स्वार्थपरता उत्पन्न करती है।

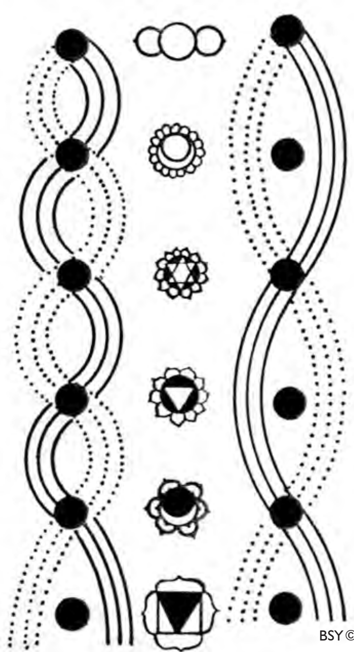
विष्णु ग्रंथि–यह मणिपुर तथा अनाहत चक्रों को नियन्त्रित करती है, और अन्य लोगों के साथ बन्धन, भावनात्मक सम्बन्धों तथा भावनात्मक परिस्थितियों के साथ आसक्ति उत्पन्न करती है।

रुद्र ग्रंथि–यह विशुद्धि और आज्ञा चक्रों को नियन्त्रित करती है, और बौद्धिक शक्ति, सिद्धियों तथा अन्य उच्च आध्यात्मिक अनुभवों के प्रति आसक्ति उत्पन्न करती है।

जब तक ग्रंथियाँ विद्यमान रहती हैं तब तक चक्रों की नकारात्मक वृत्तियाँ प्रकट होती रहती हैं, लेकिन जब वे खुल जाती हैं तब चक्रों की सकारात्मक शक्ति प्रकट होने लगती है। बन्धों के अभ्यास के दौरान संचित प्राण उन बन्धनों को खोल देता है ताकि साधक वह सब प्राप्त कर सके जो बन्धनों के परे स्थित होता है।

बन्ध चक्रों के चारों ओर घनीभूत प्राणिक क्षेत्रों के विस्तार का माध्यम भी होता है। यदि हम इड़ा और पिंगला को तीन आयामों में घूमती हुई रस्सियों के रूप में देखें तो इसे समझ सकते हैं। जब हम जालन्धर बन्ध लगाते हैं तब सिर को झुकाकर ठुड्ढी को गर्दन के नीचे के गड्ढे में स्थित कर देते हैं, कन्धों को ऊपर उठाते हैं और श्वास को अन्दर रोक लेते हैं। ऐसा करने पर विशुद्धि चक्र के क्षेत्र का विस्तार होता है। इसके परिणामस्वरूप उस क्षेत्र में प्राणिक क्षेत्र की शक्ति में वृद्धि होती है। इससे उसकी क्रियाओं की सीमा भी बढ़ जाती है। अब अनाहत से आज्ञा तक प्राण के घनत्व में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है।

इसी प्रकार उदर के क्षेत्र को अन्दर की ओर संकुचित करते हुए बहिर्कुम्भक करने पर उड्डियान बन्ध के प्रभाव से मणिपुर चक्र के आस-पास के क्षेत्र



चित्र 1 चित्र 2

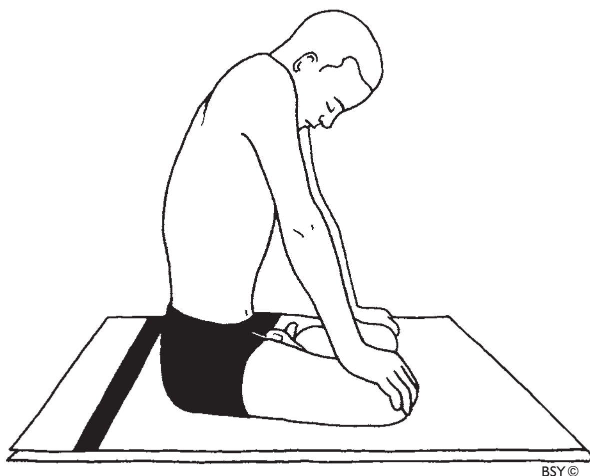
चित्र 1 – मूल बन्ध के अभ्यास से तरंगों का रूपान्तरित स्वरूप

चित्र 2 – तीनों बन्धों को एक साथ किए जाने पर तरंगों का स्वरूप

का विस्तार होता है। जब केवल इसी बन्ध का अभ्यास किया जाता है तब स्वाधिष्ठान से अनाहत तक यह आयोनोप्लाज़्मिक क्षेत्र के घनत्व में अत्यधिक वृद्धि कर देता है और जब इसे जालन्धर बन्ध के साथ किया जाता है तब उस क्षेत्र का विस्तार स्वाधिष्ठान से आज्ञा तक हो जाता है।

तीसरे बन्ध, मूल बन्ध का अभ्यास मूल क्षेत्र को संकुचित कर किया जाता है। जब केवल इसी का अभ्यास किया जाता है तब मूलाधार के आस-पास के आयोनोप्लाज़्मिक क्षेत्र का विस्तार होता है और जब उड्डियान तथा जालन्धर बन्धों के साथ मिलाकर इसका अभ्यास किया जाता है तब उस क्षेत्र का विस्तार मूलाधार से आज्ञा तक होता है।

जब जालन्धर, उड्डियान और मूल बन्धों का अभ्यास महाबन्ध के साथ किया जाता है, जो उच्च यौगिक साधनाओं की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विधि है, तब यह सम्पूर्ण शरीर में आयोनोप्लाज़्मिक तथा प्राणिक ऊर्जाओं में वृद्धि करता है, और मस्तिष्क की अनेक निष्क्रिय कोशिकाओं को सक्रिय करता है तथा उनका विकास करता है।



जालन्धर बन्ध

पद्मासन या सिद्धासन/सिद्धयोनि आसन में बैठ जायें। सिर और मेरुदण्ड को सीधा रखें। घुटने जमीन से सटे रहने चाहिए।

हथेलियों को घुटनों के ऊपर रखें।

आँखों को बन्द कर लें और पूरे शरीर को शिथिल करें।

धीमी और गहरी श्वास लेकर श्वास को अन्दर रोकें।

श्वास को अन्दर रोके रखते हुए सिर को सामने झुकायें और ठुड्ढी से वक्ष को जोर से दबायें।

भुजाओं को सीधा करें और हाथों से घुटनों को दबाते हुए उन्हें इस स्थिति में दृढ़ता से जमाए रखें। साथ-ही कन्धों को ऊपर उठाकर सामने की ओर झुकायें।

जब तक श्वास को आरामपूर्वक रोकना सम्भव हो, तब तक अन्तिम स्थिति में रुकें। अधिक जोर न लगायें।

कन्धों को शिथिल करें, भुजाओं को मोड़ें, धीरे-धीरे बन्ध को ढीला करें, सिर को ऊपर उठायें और तब श्वास छोड़ें।

जब श्वास सामान्य हो जाए, तब इस अभ्यास को दुहरायें।

अभ्यास टिप्पणी – पूरक एवं रेचक तभी किये जाने चाहिए जब ठुड्ढी और भुजाओं के बन्ध खोल दिये गये हों और सिर पूरी तरह सीधा हो गया हो। जालन्धर बन्ध का अभ्यास बहिर्कुम्भक के साथ भी किया जा सकता है।

प्रकारान्तर– जालन्धर बन्ध के एक सरल एवं सूक्ष्म अभ्यास में केवल सिर को आगे की ओर झुकाया जाता है ताकि ठुड्ढी गर्दन को दबाये। कन्धों और भुजाओं में गति नहीं होती। इस प्रकारान्तर का उपयोग सामान्य रूप से प्राणायाम के अभ्यास के साथ किया जाता है ताकि बाह्य गतिशीलता बहुत कम हो और प्राणायाम मुद्रा, जैसे, नासाग्र मुद्रा में कोई रुकावट न आए।

सावधानी– यद्यपि गर्दन का बन्ध रक्तचाप को कम करता है, लेकिन लम्बे कुम्भक से हृदय पर दबाव पड़ता है। यदि किसी भी प्रकार सिर में चक्कर आता हो, तो अभ्यास को बन्द कर दें।

सीमाएँ– जो व्यक्ति सरवाईकल, स्पॉन्डिलोसिस, आन्तर्कपालीय उच्च दबाव, सिर चकराने, उच्च रक्तचाप या हृदय रोग से पीड़ित हों, उन्हें जालन्धर बन्ध का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ– पूर्ण जालन्धर बन्ध कैरोटिड साइनस को दबाता है, जो गर्दन की मुख्य धमनियों, कैरोटिड धमनियों पर स्थित है। सरल प्रकारान्तर सूक्ष्म दाब डालता है। ये साइनस रक्त-परिसंचरण और श्वसन-संस्थान के कार्यों को नियमित बनाने में सहायक होते हैं। सामान्य रूप से शरीर में ऑक्सीजन की कमी और कार्बन-डाइऑक्साइड की अधिकता होने से हृदय-गति बढ़ती है और श्वास बोझिल हो जाती है। इस प्रक्रिया का सूत्रपात कैरोटिड साइनस द्वारा होता है। इस साइनस पर कृत्रिम दबाव डालकर इस प्रवृत्ति को रोका जाता है, जिससे हृदय-गति मन्द होती और श्वास रोकने की क्षमता बढ़ती है।

इस अभ्यास से मानसिक विश्राम प्राप्त होता है; तनाव, चिन्ता और क्रोध में कमी आती है। इससे ध्यानात्मक अन्तर्मुखता और एकाग्रता का विकास होता है। कण्ठ में उद्दीपन थायरॉइड-ग्रन्थि के कार्य को संतुलित करने और चयापचय की क्रिया को नियमित बनाने में सहायक होता है।

उड्डियान बन्ध

ध्यान के किसी ऐसे आसन में बैठ जायें जिसमें घुटनों का स्पर्श जमीन से हो पाये।

हथेलियों को घुटनों पर सपाट रखें।

आँखों को बन्द कर लें और सम्पूर्ण शरीर को शिथिल करें।

नासिकाओं से गहरी श्वास लें, उसके बाद उदर की पेशियों को संकुचित कर पूरी तरह रेचक करते हुए जितना अधिक सम्भव हो, फेफड़ों को खाली करें।

बहिर्कुम्भक के साथ जालन्धर बन्ध लगायें और उदर की पेशियों को अन्दर और ऊपर की ओर खींचते हुए उदर को नतोदर बना लें।

बहिर्कुम्भक के साथ इस बन्ध को आराम से जितनी देर लगाये रख सकें, लगाये रखें। तत्पश्चात् उड्डियान को खोलते हुए जालन्धर को भी खोलें और श्वास लेते हुए सिर को पूरी तरह ऊपर उठा लें। अगला चक्र आरम्भ करने के पूर्व श्वास को सामान्य हो जाने दें।

सीमाएँ– आमाशय या आन्त्र व्रण (फोड़ा), हर्निया, डायफ्रॉम का हर्निया, उच्च रक्तचाप, हृदय-रोग, ग्लूकोमा और बढ़े हुए अन्तः कपालीय दबाव से पीड़ित व्यक्तियों को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए। गर्भवती महिलाओं के लिए भी यह वर्जित है। यद्यपि बच्चा पैदा होने के पश्चात् उदर तथा योनि की पेशियों को पुनः स्वस्थ अवस्था में लाने के लिए यह उपयोगी है।

लाभ– पेट के सभी अंगों की मालिश होती है, वे सुचारू रूप से कार्य करने लगते हैं और उनकी क्षमता बढ़ती है। यह पित्ताशय और लीवर की क्रिया को उत्प्रेरित कर आंतरिक अंगों को सशक्त बनाता है। जठराग्नि को उद्दीप्त करता है और एड्रीनल ग्रन्थि को सन्तुलित बनाता है, जिससे आलस्य दूर होता और चिन्ता एवं तनाव का निवारण होता है। यह पूरे धड़ में रक्त परिसंचरण में सुधार लाता है।

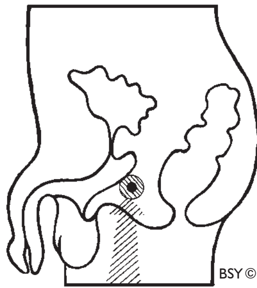
उड्डियान बन्ध मणिपुर चक्र को उद्दीप्त करता है, जिसका सम्पूर्ण शरीर में ऊर्जा के वितरण पर अनेक प्रकार से सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है।

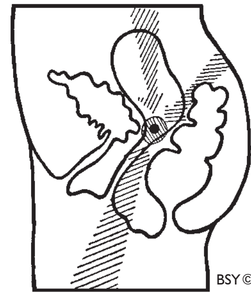
यह चूषण दबाव उत्पन्न करता है, जिससे अपान एवं प्राण के ऊर्जा-प्रवाह की दिशा विपरीत हो जाती है और उनका योग समान से होता है, जिससे मणिपुर चक्र उद्दीप्त होता है।

अभ्यास टिप्पणी– उड्डियान बन्ध का अभ्यास खाली पेट करना चाहिए। इसका अभ्यास केवल बहिर्कुम्भक के साथ करना चाहिए।

मूल बन्ध

सिद्धासन या सिद्धयोनि आसन में बैठें ताकि मूलाधार/योनि क्षेत्र पर दबाव पड़े।





इस अभ्यास में मूलाधार चक्र के क्षेत्र को संकुचित किया जाता है। पुरुषों में यह क्षेत्र मूलाधार क्षेत्र में गुदा और जननांगों के बीच स्थित होता है और स्त्रियों में प्रेरक-बिन्दु योनि मुख के पीछे होता है, जहाँ गर्भाशय तथा योनि आपस में मिलते हैं।

आँखों को बन्द कर सम्पूर्ण शरीर को शिथिल कर लें।

गहरा पूरक करें, श्वास को अन्दर रोक लें और मूलाधार/योनि की पेशियों को बिना किसी तनाव के अधिक-से-अधिक कसकर संकुचित करें। इस क्षेत्र की सजगता बनाये रखें। पाँच बार संकुचन करें और फिर रेचक करें।

प्रारम्भ में अल्प अवधि के लिए संकुचन करें और ज्यों-ज्यों नियन्त्रण बढ़ता जाये, संकुचन की अवधि को बढ़ाते जायें।

सीमाएँ–जालन्धर बन्ध के समान। इस अभ्यास को अनुभवी निर्देशों के अन्तर्गत ही किया जाना चाहिए, क्योंकि यह अत्यन्त शीघ्रता से ऊर्जा में वृद्धि करता है और यदि इसका गलत अभ्यास किया गया तो उसके परिणामस्वरूप अतिसक्रियता के लक्षण प्रकट हो सकते हैं। मासिक स्राव के दौरान इसका अभ्यास नहीं किया जाना चाहिए।

लाभ–मूलबन्ध से अनेक प्रकार के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक लाभ होते हैं। यह श्रोणि प्रदेश के स्नायुओं को उद्दीप्त करता है और मूत्र-प्रजनन तथा उत्सर्जन तंत्रों की मालिश करता है। यह यौन नियन्त्रण प्राप्त करने का एक साधन है और अनेक यौन रोगों को दूर करता है।

अभ्यास टिप्पणी–मूलाधार क्षेत्र की कुछ पेशियों के संकुचन से मूल बन्ध का अभ्यास किया जाता है। प्रारम्भ में गुदा और मूत्र संस्थान की पेशियाँ भी संकुचित होती हैं, लेकिन जब अधिक सजगता और नियन्त्रण का विकास हो जाता है तब इस संकुचन को कम करते हुए धीरे-धीरे

बिल्कुल बन्द कर दिया जा सकता है ताकि इस क्षेत्र के संकुचन के बिना मूल बन्ध लगाया जा सके। बहिर्कुम्भक के साथ भी मूल बन्ध लगाया जा सकता है।

महाबन्ध

महाबन्ध जालन्धर, उड्डियान एवं मूल बन्धों का एक शक्तिशाली मिश्रण है, जिसे बहिर्कुम्भक के साथ किया जाता है। यह अभ्यास आन्तरिक रूप से प्राणों को केन्द्रित करता है और आन्तरिक सजगता के दौरान ऊर्जा के स्तर को बढ़ाता है।

विधि

ध्यान के किसी आसन में बैठ जायें। हाथों को घुटनों पर रखें। मेरुदण्ड और सिर एक सीध में रहें। आँखों को बन्द कर लें और सम्पूर्ण शरीर को शिथिल करें।
नासिका से धीरे-धीरे गहरी श्वास लें।
जोर लगाकर पूरी तरह श्वास को बाहर निकालें और बाहर ही रोके रखें।
क्रमश: जालन्धर, उड्डियान एवं मूल बन्ध इसी क्रम में लगायें।
बिना जोर लगाये जितनी देर तक आराम से हो सके बन्धों को लगाये रखें और श्वास को रोकें।
महाबन्ध लगाये रखते हुए कुछ क्षणों तक सजगता को मूलाधार से मणिपुर, मणिपुर से विशुद्धि में ले जायें। इसकी कुछ आवृत्तियाँ करें।
हर बार मूलाधार से शुरू करें।
अब मूल, उड्डियान और जालन्धर बन्धों को एक-एक कर इसी क्रम से शिथिल करें।
जब सिर सीधा हो जाए, तब धीरे-धीरे श्वास अन्दर लें।
यह एक चक्र हुआ।
श्वास-प्रश्वास के सामान्य हो जाने के बाद ही दूसरा चक्र प्रारम्भ करें।
पाँच चक्र तक अभ्यास करें।

सीमाएँ– अन्य तीन बन्धों के समान।

लाभ– महाबन्ध से तीनों बन्धों के लाभ प्राप्त होते हैं। इससे पीयूष ग्रन्थि का हार्मोन-स्राव प्रभावित होता है और सम्पूर्ण अन्त:स्रावी तंत्र की कार्यप्रणाली

नियमित होती है। शरीर के क्षय, ह्रास और बुढ़ापे की प्रक्रियायें थम जाती हैं और शरीर की प्रत्येक कोशिका पुनर्जीवन प्राप्त करती है। यह ध्यान के पूर्व मन को अन्तर्मुखी बनाता है। यदि अभ्यास में पूर्णता प्राप्त हो जाए, तो यह मुख्य चक्रों में प्राणों को पूरी तरह जाग्रत कर सकता है। यह मणिपुर चक्र में प्राण, अपान और समान का विलय कराता है, जो सभी प्राणायामों की अन्तिम परिणति है।

अभ्यास टिप्पणी– महाबन्ध करने के पूर्व अन्य तीनों बन्धों में दक्षता प्राप्त कर लेनी चाहिए।

परिशिष्ट 5

'हठयोग प्रदीपिका'

प्राणायाम सूत्र

हठयोग प्रदीपिका स्वात्माराम द्वारा रचित एक तांत्रिक ग्रंथ है, जिसमें व्यवस्थित ढंग से विकास के विज्ञान की विवेचना की गई है। गोरक्ष संहिता, घेरण्ड संहिता तथा हठरत्नावली के साथ-साथ हठयोग प्रदीपिका हठयोग पर परम विश्वसनीय ग्रन्थ है। इस अध्याय में हम हठयोग प्रदीपिका के अध्याय 2 के प्रासंगिक संस्कृत श्लोकों का क्रमवार हिन्दी रूपांतर प्रस्तुत कर रहे हैं।

इस प्रकार आसन में स्थिर होकर, शरीर पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर तथा लंबे समय तक संतुलित आहार लेने के पश्चात् साधक को गुरु के निर्देशानुसार प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। (2:1)

जब प्राण गतिशील होता है तब चित्त भी गतिमान होता है तथा इसके विपरीत जब प्राण स्थिर होता है तब चित्त भी स्थिर होता है। प्राण की इस स्थिरता द्वारा योगी स्थिरता प्राप्त करता है, इसलिए उसे वायु को नियंत्रित करना चाहिये। (2:2)

जब तक वायु (हवा तथा प्राण) शरीर में रहती है, उसे हम जीवन कहते हैं। ये शरीर का परित्याग करते हैं तो उसे मृत्यु कहते हैं। अत: वायु को सुरक्षित रखें। (2:3)

प्राणवायु मध्य-मार्ग में प्रविष्ट नहीं होती, क्योंकि नाड़ियों में अशुद्धियाँ भरी पड़ी हैं, तो ऐसी स्थिति में उन्मनी अवस्था कैसे आयेगी तथा पूर्णता और सिद्धियाँ कैसे प्राप्त होंगी? (2:4)

जब समस्त नाड़ियों और चक्रों से अशुद्धियाँ दूर होंगी, केवल तभी योगी प्राण संचित कर पाएगा। (2:5)

इसलिए, सात्त्विक मन से रोज प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये ताकि सुषुम्ना नाड़ी से सभी प्रकार की अशुद्धियाँ दूर की जा सकें और पवित्रता की अवस्था प्राप्त हो। (2:6)

बद्ध पद्मासन में बैठकर योगी को बायें नासारंध्र से पूरक कर उसे यथाशक्ति भीतर रोकना चाहिए, तत्पश्चात् दाहिने नासारंध्र से धीरे-धीरे रेचक करना चाहिए। (2:7)

पुन: दाहिने रंध्र से पूरक कर पेट को हवा से आपूरित कर अन्तर्कुम्भक कीजिए तथा बायें नासारंध्र से रेचक कीजिए। (2:8)

जिस नासारंध्र से आपने रेचक किया पुन: उसी से पूरक कीजिये, अधिक-से-अधिक, किन्तु आरामदायक अवधि तक अन्तर्कुम्भक कीजिये तथा दूसरे नासारंध्र से धीरे-धीरे रेचक कीजिये, किन्तु बलात् नहीं। (2:9)

जब प्राण को बायें नासारंध्र से भीतर लेते हैं तो उसे दूसरे से बाहर निकालना चाहिये। जब आप दाहिने रंध्र से पूरक करते हैं तब उसे भीतर रोकिये तथा बायें रंध्र से धीरे-धीरे बाहर निकाल दीजिये। जो व्यक्ति इस प्रकार बायें रंध्र से पूरक तथा दाहिने से रेचक का एकांतर क्रम से तीन माह तक अभ्यास करता है उसकी समस्त नाड़ियाँ मल रहित, शुद्ध हो जाती हैं। (2:10)

कुम्भक दिन में चार बार करना चाहिये–प्रात:काल, दोपहर, संध्या और मध्यरात्रि में, ताकि क्रमश: बढ़ते-बढ़ते एक बैठक में अस्सी मात्राओं तक का कुम्भक हो सके। (2:11)

इसमें प्रारंभ में पसीना, बीच में शरीर कम्पन, किन्तु उच्चतम अवस्था में कायास्थैर्यम् की स्थिति आती है। इसलिए, श्वास को भीतर अवश्य रोकना चाहिए। (2:12)

जब शरीर में प्राणायाम के श्रम से पसीना आए तो उसे शरीर में ही मल दीजिये। इससे शरीर को दृढ़ता तथा स्थिरता प्राप्त होती है। (2:13)

अभ्यास के प्रारंभिक चरणों में घी, दूध युक्त आहार ग्रहण करें। एक बार अभ्यास में भली-भाँति स्थिर हो जाने पर चाहे जो खा-पी सकते हैं। (2:14)

जिस प्रकार सिंह, हाथी और बाघ को धीरे-धीरे नियंत्रण में लाया जाता है, उसी प्रकार प्राण को भी अभ्यास से नियंत्रित किया जाता है। अन्यथा अभ्यासी का सर्वनाश हो जाता है। (2:15)

प्राणायाम के सही अभ्यास द्वारा सभी प्रकार की व्याधियों का उन्मूलन होता है। इसके विपरीत त्रुटिपूर्ण आधे-अधूरे अभ्यास द्वारा बीमारियों को निमंत्रण दिया जाता है। (2:16)

प्राणों में अशान्ति के फलस्वरूप हिचकी, दमा, खाँसी, सरदर्द, कान और आँखों की पीड़ा तथा ऐसी ही अनगिनत बीमारियाँ बिन बुलाए आ सकती हैं। (2:17)

वायु को दक्षतापूर्वक श्वास द्वारा भीतर लेना, बाहर निकालना तथा रोकना आना चाहिये ताकि पूर्णता और सिद्धियों की उपलब्धि हो सके। (2:18)

नाड़ियों की शुद्धि हो जाती है तो उसके बाहरी लक्षण देखे जा सकते हैं। जब शरीर दुबला और कान्तिवान हो जाता है तब सफलता निश्चित है। (2:19)

जब साधक इच्छानुसार श्वास को भीतर धारण करने में सक्षम होता है तब उसकी पाचन शक्ति बढ़ जाती है। नाड़ियों की पूर्ण शुद्धि के उपरांत अन्तर्नाद उत्पन्न होता है तथा व्याधियों से छुटकारा मिल जाता है। (2:20)

जब चर्बी या कफ की अधिकता होती है तब षट्कर्मों की तकनीकों का अभ्यास प्राणायाम के पूर्व करना चाहिये। जिनमें वात, पित्त और कफ के दोष विद्यमान हों, उन्हें इनसे मुक्ति तक प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिये। (2:21)

लोहार की धौंकनी की तरह तेजी से पूरक-रेचक कीजिये। इसे कपालभाती कहते हैं। इससे कफ सम्बन्धी सभी गड़बड़ियाँ दूर होती हैं। (2:35)

कुछ विद्वानों के मतानुसार अकेले प्राणायाम से अशुद्धियाँ दूर होती हैं। इसलिये वे अन्य तकनीकों की जगह प्राणायाम को बड़ा सम्मानजनक स्थान देते हैं। (2:37)

ब्रह्मा और अन्य देवतागण स्वयं भी प्राणायाम का अभ्यास करते हैं, जिससे मृत्यु का भय समाप्त होता है। अत:, सभी को इसका (प्राणायाम) अभ्यास करना चाहिये। (2:39)

जब तक श्वास शरीर में रोकी जाए, मन विचार शून्य हो तथा दृष्टि भ्रूमध्य पर स्थिर हो, मृत्यु का भय कैसा? (2:40)

व्यवस्थित ढंग से प्राण (श्वास) का नियंत्रण कर नाड़ियों तथा चक्रों की शुद्धि की जाती है। और इस प्रकार प्राण सुषुम्ना का द्वार एकाएक खोल देता है और सरलता से प्रविष्ट हो जाता है। (2:41)

मध्य पथ में श्वास (प्राण) का संचार मन को स्थिरता प्रदान करता है। मन की इस स्थिरता को ही 'मनोमनि' अर्थात् विचार शून्यता की स्थिति कहा जाता है। (2:42)

विभिन्न प्रकार के कुम्भकों का अभ्यास करने से आश्चर्यजनक सिद्धियाँ उपलब्ध होती हैं। जानकार व्यक्ति विभिन्न कुम्भकों का अभ्यास इन्हें प्राप्त करने हेतु करते हैं। (2:43)

आठ प्रकार के कुम्भक– सूर्यभेद, उज्जायी, शीतकारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लाविनी होते हैं। (2:44)

पूरक के अन्त में जालंधर बंध लगाया जाता है। कुंभक के अन्त में और रेचक के प्रारंभ में उड्डियान बंध लगाया जाता है। (2:45)

मूलाधार क्षेत्र (मल एवं मूत्र द्वारों के बीच) के संकुचन, कण्ठ के संकुचन तथा पेट को ऊपर की ओर खींच कर रखने से प्राण का प्रवाह ब्रह्मनाड़ी में होता है। (2:46)

अपान को ऊपर की ओर खींचने तथा प्राण को कण्ठ के नीचे लाने से योगी वृद्धावस्था से मुक्ति पा सोलह वर्ष की अवस्था का लगता है। (2:47)

आरामपूर्वक बैठ कर योगी को आसन में एकदम स्थिर होना चाहिए तथा दाहिने नासारंध्र से धीरे-धीरे श्वास भीतर लेनी चाहिए। (2:48)

अंतर्कुम्भक तब तक करें जब तक कि अवरुद्ध वायु बिखरकर रोम-रोम तथा नाखूनों तक न फैल जाए। पुनः वाम नासारंध्र से धीरे-धीरे पूरी श्वास बाहर निकाल दें। (2:49)

सूर्यभेद प्राणायाम खोपड़ी की पूर्ण भीतरी सफाई, वायुदोष का शमन तथा कृमियों का उन्मूलन करता है। अतः, इसे पुनः पुनः करना चाहिए। (2:50)

मुँह बंद कर एकाग्रता और नियंत्रण के साथ इड़ा और पिंगला से पूरक कीजिये, जिससे कि गले से हृदय तक श्वास का अनुभव हो तथा गुंजायमान ध्वनि उत्पन्न हो। (2:51)

पूर्व की भाँति अंतर्कुम्भक कीजिये और इड़ा से श्वास बाहर निकालिये। इससे गले में जमा कफ हटता है और जठराग्नि प्रबल होती है। (2:52)

उज्जायी प्राणायाम बैठ कर, चलते हुए अथवा खड़े होकर किया जा सकता है। इससे जलोदर, नाड़ी तथा धातुदोष दूर होते हैं। (2:53)

सिसकारी की ध्वनि करते हुए मुख से धीरे-धीरे पूरी श्वास भरिए। मुँह को बिना पूरा खोले, नाक से प्रश्वास कीजिए। इसके अभ्यास से साधक दूसरा कामदेव बन जाता है। (2:54)

जिसे न भूख सताती है न प्यास, न निद्रा, न आलस्य, वह योगिनियों के समूह द्वारा प्रशंसित होता है और सृष्टि एवं संहार का विधाता बन जाता है। (2:55)

इस अभ्यास से शरीर में सतोगुण सर्व विघ्न-बाधारहित हो जाता है। सच है, उपर्युक्त विधि से साधक इस धरती पर योगियों का स्वामी बन जाता है। (2:56)

बुद्धिमान् जीभ से श्वास लेकर अन्तर्कुम्भक करते हैं, जैसा कि ऊपर समझाया गया है। फिर धीरे-धीरे नाक से श्वास बाहर निकाल देते हैं। (2:57)

इस कुम्भक को शीतली कहा जाता है। इससे बढ़ा हुआ पेट या प्लीहा एवं अन्य सम्बन्धित बीमारियों, जैसे, ज्वर, पित्ताधिक्य, भूख, प्यास से मुक्ति मिलती है तथा विष का शमन होता है। (2:58)

दोनों पैरों के तलुवों को विपरीत जांघों पर रखने को पद्मासन कहते हैं, जो पापों तथा दुष्कर्मों का विनाश करता है। (2:59)

गर्दन और पेट को सीधी रेखा में रखते हुए अच्छी तरह पद्मासन में बैठकर नाक से प्राण का रेचक कीजिये। (2:60)

पुन: शीघ्रता से श्वास लेकर हृदय कमल तक भरिये, जिसकी गूंज का हृदय, कण्ठ तथा खोपड़ी तक अनुभव हो। (2:61)

इस प्रकार बार-बार श्वास लेते और छोड़ते हैं, उसकी गति लोहार की धौंकनी की तरह होती है। (2:62)

इस प्रकार शरीर को स्थिर रखते हुए सजगतापूर्वक श्वास का आवागमन जारी रखिये। जब शरीर थकान का अनुभव करे तो दाहिने नासारंध्र से श्वास लीजिये। (2:63)

इस प्रकार जब पेट पूरी तरह वायु पूरित हो जाए तो दोनों नासारंध्रों को (और श्वास को) शीघ्रता से मजबूती से पकड़ लीजिये। इसके लिए तर्जनी और मध्यमा का उपयोग न करें (अँगूठे और अनामिका का नासिकाग्र मुद्रा की तरह उपयोग कीजिये।) (2:64)

प्राणायाम और कुम्भक व्यवस्थित ढंग से करने के बाद अब बायें नासारंध्र से रेचक कीजिये। इससे वात, पित्त, कफ के असंतुलन का नाश होता है तथा जठराग्नि प्रबल होती है। (2:65)

भस्त्रिका से कुण्डलिनी शीघ्र जाग्रत होती है। इसके लाभ बड़े रोचक और उपकारी होते हैं तथा ब्रह्मनाड़ी के प्रवेश द्वार में जमा कफ हटता है। (2:66)

भस्त्रिका कुम्भक तीनों ग्रंथियों को खोलता है, अत: भस्त्रिका करना योगी का कर्तव्य बनता है। (2:67)

नर भ्रमर की तरह ध्वनि उत्पन्न करते हुए शीघ्रता से श्वास लीजिये, पुन: धीरे-धीरे भ्रामरी की तरह गुंजन उत्पन्न करते हुए श्वास छोड़िए। इस यौगिक अभ्यास द्वारा साधक योगियों का स्वामी बनता है तथा उसका मन आनन्द में डूब जाता है। (2:68)

पूरक के अन्त में धीरे-धीरे जालन्धर बंध में जम जाइये और तब धीरे-धीरे श्वास छोड़िए। इसे बेहोशी या मूर्च्छा प्राणायाम कहते हैं। इससे मन निष्क्रिय होता है और इस प्रकार आनन्द प्रदान करता है। (2:69)

पेट के भीतरी भाग को पूरी तरह वायु पूरित कर साधक कमलपत्र की तरह पानी में तैर सकता है। (2:70)

प्राणायाम के तीन प्रकार बताए जाते हैं–श्वास (पूरक), प्रश्वास (रेचक) तथा श्वास रोकना (कुम्भक)। पुनः कुम्भक भी दो प्रकार का होता है–सहित और केवल। (2:71)

जब तक केवल कुम्भक सिद्ध न हो, सहित कुम्भक का अभ्यास करना है। जब आप पूरक और रेचक से मुक्त हो जायें तब श्वास और प्राण को आसानी से इच्छानुसार रोका जा सकता है। (2:72)

केवल कुम्भक में पूर्ण दक्षता होने के फलस्वरूप पूरक और रेचक से मुक्ति मिल जाती है। इस प्राणायाम को केवल कुम्भक कहते हैं। (2:73)

जिसे केवल कुम्भक सिद्ध हो जाता है और जो इच्छानुसार अपने श्वसन को रोक सकता है, उसके लिये तीनों लोकों में कुछ भी अप्राप्य नहीं होता। (2:74)

केवल कुम्भक द्वारा निःसंदेह राजयोग की अवस्था उपलब्ध होती है। इस कुम्भक से कुण्डलिनी जागती है, सुषुम्ना के अवरोध दूर होते हैं और हठयोग में पूर्णता की प्राप्ति होती है। (2:75)

कुम्भक द्वारा प्राण को रोकने से मन सभी वृत्तियों से मुक्त होता है। अतः, इस योग के अभ्यास द्वारा राजयोग (परम एकत्व) की स्थिति प्राप्त होती है। (2:76)

नोट

नोट



स्वामी निरंजनानन्द का जन्म छत्तीसगढ़ के राजनाँदगाँव में सन् 1960 में हुआ। जन्म से ही उनकी जीवन-दिशा उनके गुरु, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती द्वारा निर्देशित रही। चार वर्ष की अवस्था में वे गुरु-सान्निध्य में रहने बिहार योग विद्यालय आये, जहाँ उनके गुरु ने योग निद्रा के माध्यम से उन्हें योग एवं अध्यात्म का गहन प्रशिक्षण प्रदान किया। सन् 1971 में वे दशनामी संन्यास परम्परा में दीक्षित हुए, तत्पश्चात् 11 वर्षों तक विभिन्न देशों की यात्राएँ कर उन्होंने अनेक कलाओं में दक्षता अर्जित की और विभिन्न संस्कृतियों के सम्पर्क में रहकर उनकी गहरी समझ प्राप्त की तथा यूरोप, ऑस्ट्रेलिया, उत्तर एवं दक्षिण अमरीका में अनेक सत्यानन्द योग केन्द्रों एवं आश्रमों की स्थापना की।

सन् 1983 में गुरु-आज्ञानुसार भारत लौटकर वे बिहार योग विद्यालय, शिवानन्द मठ तथा योग शोध संस्थान की गतिविधियों के संचालन में संलग्न हो गए। सन् 1990 में वे परमहंस-परम्परा में दीक्षित हुए और 1995 में स्वामी सत्यानन्द के उत्तराधिकारी के रूप में उनका अभिषेक किया गया। सन् 1994 में उन्होंने विश्व के प्रथम योग विश्वविद्यालय, बिहार योग भारती की तथा 2000 में योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की स्थापना की। सन् 1995 में उन्होंने बच्चों के एक बृहत् योग आन्दोलन, बाल योग मित्र मण्डल का शुभारम्भ किया। मुंगेर में विभिन्न गतिविधियों का संचालन करने के अलावा उन्होंने दुनियाभर के साधकों का मार्गदर्शन करने हेतु व्यापक रूप से यात्राएँ कीं। सन् 2009 में उन्हें अपने गुरु से संन्यास जीवन का एक नया अध्याय शुरू करने का आदेश प्राप्त हुआ।

स्वामी निरंजनानन्द योग दर्शन, अभ्यास एवं जीवनशैली की गहन जानकारी और समझ रखते हैं तथा योग, तंत्र एवं उपनिषदों पर अनेक प्रमाणिक पुस्तकों के प्रणेता भी हैं। प्राचीन तथा अर्वाचीन परम्पराओं का सुन्दर सम्मिश्रण करते हुए वे इस समय मुंगेर में अपने गुरु के मिशन को आगे बढ़ाने के कार्य में संलग्न हैं।



SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

प्राण और प्राणायाम पुस्तक में इन विषयों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है। यह हमें प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित एवं बिहार योग विद्यालय द्वारा सत्यानन्द योग परम्परा के अन्तर्गत सिखाए जाने वाले प्राणायाम विज्ञान के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्रदान करती है।

इस पुस्तक के प्रथम भाग में प्राण के सिद्धान्त एवं इससे सम्बन्धित यौगिक विचारधाराओं (कोश, चक्र, नाड़ी एवं मंत्र) का वर्णन है। दूसरे भाग में श्वसन-तन्त्र एवं विभिन्न प्राणायामों पर विज्ञान द्वारा किए गये आधुनिक प्रयोगों के बारे में बताया गया है। अभ्यास खण्ड में साधकों का विशेष मार्गदर्शन करते हुए प्राणायाम से सम्बन्धित विभिन्न अभ्यासों का सविस्तार सचित्र वर्णन किया गया है। सम्पूर्ण पुस्तक में शास्त्रों से उद्धृत अंश पाठकों के लिए ज्ञानवर्द्धक तो हैं हीं, साथ-ही उनमें शास्त्रों का सार और मूल उद्देश्य भी निहित है।



[bar code here]

ISBN : 978-93-81620-34-2